कुशललाभ : व्यक्तित्व और कृतित्व

कुशललाभ : व्यक्तित्व और कृतित्व

डॉ० मनमोहन स्वरूप माथुर
हिन्दी-विभाग
आई० बी० कॉलेज, पानीपत

मंथन पब्लिकेशन्स, रोहतक

कुशललाभ : व्यक्तित्व और कृतित्व

(आलोचनात्मक शोध-प्रबन्ध)

प्रथम संस्करण : 1982

मूल्य : सत्तर रुपये

Rs. : 70·00

प्रकाशक : मथन पब्लिकेशन्स, रोहतक द्वारा प्रकाशित एवं रघु कपोजिंग एजेंसी द्वारा आर० के० भारद्वाज प्रिंटर्स, 5/6, शिवाजी पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032 में मुद्रित। आवरण · चेतन दास

KUSHALLABH . VYAKTITIV AUR KRITITAV
Critical Research Work by Dr. ManMohan Swaroop Mathur.

स्वर्गीय पूज्य पिताश्री एवं प्रातः स्मरणीया माता जी
को सादर समर्पित, जिनकी प्रेरणा से साहित्यिक क्षेत्र
में सतत् अग्रसर होने का सुअवसर मिला।

आत्मकथ्य

भारतीय साहित्य में मध्यकालीन साहित्य का सर्वोपरि महत्त्व है। इसलिए भारतीय साहित्य को समझने और उस पर चिन्तन के लिए तत्सम्बधी ज्ञान आवश्यक है। मध्यकालीन भारतीय साहित्य विभिन्न प्रादेशिक बोलियों मे रचित है। ब्रज, राजस्थानी, मैथिली, बिहारी, पंजाबी, गुजराती आदि प्रादेशिक बोलियों (भाषाओं) का लोक एवं संस्कृत साहित्य ही आज का विकसित भारतीय साहित्य है। पाठक इन बोलियों की रचनाओं में माधुर्य का अहसास करता है। प्रादेशिक बोलियों की इस सरसता ने ही मुझे मध्यकालीन कवि कुशललाभ के साहित्य से परिचित कराया। कुशललाभ राजस्थान की जैसलमेर रियासत के रावल हरराज के आश्रित कवि थे। उनकी भाषा जूनी गुजराती अथवा मध्यकालीन राजस्थानी है। उन्होंने अपने जीवनकाल मे छोटी-बडी लगभग अठारह रचनाओं का निर्माण किया। इनमे कुछ प्रेमाख्यान है तो कुछ फुटकल स्तोत्र। किन्तु काव्य-शैली की दृष्टि से सभी कृतियों का निजी वैशिष्ट्य है। कवि की रीति विवेचक रचना 'पिंगलशिरोमणि' राजस्थानी का प्रथम छन्द ग्रन्थ है।

विभिन्न ग्रन्थागारों मे उपलब्ध सामग्री के आधार पर किया गया यह कार्य कुशललाभ के व्यक्तित्व और कृतित्व को प्रकाशित करने वाला प्रथम प्रयास है। इस रचना से लगभग ५६ वर्ष पूर्व स्वर्गीय श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने इस कवि की सात रचनाओं का नामोल्लेख करते हुए ढोला मारवणी चौपई, माधवानल कामकदला चौपई एव स्तभन पार्श्वनाथ स्तवन का श्री आनन्द काव्य महोदधि, मौक्तिक ७ (सस्करण १९२६) मे सपादन किया। तदुपरान्त एम० आर० मजुमदार द्वारा सपादित माधवानल कामकदला प्रबन्ध तथा सर्वश्री रामसिंह ठाकुर, सूर्यकरण पारीक एव प्रो० नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सपादित 'ढोला मारू रा दूहा' के माध्यम से भी इस कवि के विषय मे जानकारी मिलती है। श्री देसाई का उद्देश्य मात्र उक्त कृतियो का प्रकाशन करना था—अध्ययन नही। श्री मजुमदार भी माधवानल कामकंदला प्रबन्ध के पाठ-सपादन मात्र का उद्देश्य लेकर चले तथा 'ढोला मारू रा दूहा' के सम्पादक त्रय का उद्देश्य इस काव्य के मूल दूहा सस्करण के साथ तुलना रूप मे या परिचय रूप मे चौपई का 'परिशिष्ट' प्रकाशन मात्र था। अत ये कार्य भी कवि के जीवन और कृतित्व का समग्र परिचय न दे सके। मैंने कवि के आश्रय स्थल जैसलमेर, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, दिल्ली आदि प्रदेशो के ग्रन्थागारो में जाकर कुशललाभ की लगभग अठारह रचनाओं का पता लगाकर उनका प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

सम्पूर्ण अध्ययन आठ अध्यायो मे विभक्त है। तथ्यो को ऐतिहासिक प्रमाणों पर सिद्ध करने की कोशिश की गई है। इस दृष्टि से कवि की प्रामाणिकता, उसके रचनाकाल का निर्णय, रचनाओ का काल निर्णय, पात्रो की प्रामाणिकता, रचनाओ का मूल स्रोत, कथानक रूढियाँ, रचनाओं का भाषा-सम्बन्धी अध्ययन एव 'पिंगलशिरोमणि' सम्बन्धी विवेचन नितान्त मौलिक है।

लोक विश्रुत गवेषक, अपभ्रंश, राजस्थानी, सस्कृत के अधिकृत विद्वान गुरु प्रवर श्रद्धेय स्व० प्रो० नरोत्तम दास स्वामी की ही सतत् प्रेरणा, सजग मार्गदर्शन एव स्नेह का ही फल यदि इस कृति को मानूँ तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

डॉ० ब्रजमोहन जावलिया, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर के प्रति तो मैं किन शब्दो मे अपनी कृतज्ञता व्यक्त करूँ ? आपके अमूल्य समय के एक-एक पल का उपयोग करके ही मैं इस पुस्तक को आकार देने मे समर्थ हुआ हूँ।

पुस्तक-लेखन मे पग-पग पर अनुभूत कठिनाइयो के समाधान के लिए गुरुजनो के महत्त्वपूर्ण निर्देशों के लिए मैं आभारी हूँ। साथ ही, उन सभी विद्वानो का ऋणी हूँ, जिनकी पुस्तकों से मैंने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से लाभ उठाया है।

प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशन-अवस्था तक पहुँचाने की प्रेरणा के लिए डॉ० नरेश मिश्र, डॉ० वेदप्रकाश जुनेजा, डॉ० मोहनलाल दशोरा जैसे विद्वान मित्रो के प्रति कृतज्ञ हूँ। और इस प्रेरणा को रूपायित करने का श्रेय है हरियाणा के साहित्यकार श्री कृष्ण 'मानव' को, जिन्होने पुस्तक का प्रकाशन भार लेकर उसे शीघ्र प्रकाशित करने की उदारता दर्शायी।

रक्षाबन्धन —मनमोहन स्वरूप माथुर
४ अगस्त, १९८२

संकेताक्षर

अप्र०	अप्रकाशित
अनु०	अनुवादक
अ० रा०, अग० रास	अगड़दत्त रास
अ० जै० ग्रं०	अभय जैन ग्रन्थालय (बीकानेर)
अनू० सस्कृ० लाय०	अनूप सस्कृत लायब्रेरी (बीकानेर)
आ० का० म०, मौ० ७	आनन्द काव्य महोदधि, मौक्तिक ७
एल० डी० इंस्टी०	एल० डी० इस्टीट्यूट (अहमदाबाद)
गा०	गाथा
गा० सी०	गायकवाड सीरीज
ग्र०	ग्रन्थांक
चौ०	चौपई
छ०	छन्द
ज० छ०	जगदम्बा छन्द
जि० जि० स० गा०	जिनपालित जिनरक्षित सधि गाथा
डॉ० भ० ला० शर्मा	डॉ० भगवतीलाल शर्मा
ढो० मा० चौ०	ढोला मारवणी चौपई
ढो० मा० रा दू० मे का० सौ०,	ढोला मारू रा दूहा मे काव्य-सौष्ठव,
सस्कृत० एव इति०	सस्कृति एव इतिहास
ते० रा० चौ०	तेजसार रास चौपई
न० छ०	नवकार छन्द
ना० प्र० स०	नागरी प्रचारिणी सभा
दू०	दूहा
पृ०	पृष्ठ
प्रा० वि० म०	प्राच्य विद्या मंदिर (बड़ौदा)
प्रा० जै० क० सा०	प्राकृत जैन कथा साहित्य
पार्श्व० दश० स्त०	पार्श्वनाथ दशभव स्तवन
पिं० शि०	पिंगलशिरोमणि
पू० वा० गी०	पूज्य वाहण गीत

भं० प्रा० वि० मं०	भण्डारकर प्राच्य विद्या मंदिर (पूना)
भी० हं० चौ०	भीमसेन हंसराज चौपई
म० दु० सा०	महामाई दुर्गा सातसी
मा० ला० क० चौ०	माधवानल कामकंदला चौपई
मा० का० क० प्र०	माधवानल कामकंदला प्रबन्ध
मो० द० देसाई	मोहनलाल दलीचन्द देसाई
रा० प्रा० वि० प्र०	राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, (उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, चित्तौड)
श० या० स्त०	शत्रुंजय यात्रा स्तवन
श्लो०	श्लोक
सं०, संपा	संपादक
स्तं० पार्श्व० स्त०	स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन
ह० लि०	हस्तलिखित

विषय-अनुक्रम

१
प्रस्तावना

(क) तत्कालीन पृष्ठभूमि

"किसी कवि के काव्य का सम्बन्ध उनके पूर्व और समकालीन युग से बहुत होता है। प्रत्येक कवि अपने युग के प्रभावों को किसी न किसी अश में लेता हुआ ही अपनी कृति से अपने युग को अथवा आगामी युगों को प्रभावित करता है। इसलिए उस कवि या उस युग के कवियों के अध्ययन के लिए उसके पूर्व और समकालीन युग का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। ऐसी दशा में ही हम उस कवि या युग के कवियों की सहानुभूति-पूर्ण आलोचना कर सकते हैं।"[1]

अतः कुशललाभ और उनके साहित्य के अध्ययन करने से पूर्व आवश्यक है कि कुशललाभ के पूर्व एवं समकालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों का हम परिचय प्राप्त कर लें। यहाँ समस्त देश की तत्कालीन स्थिति का अध्ययन न कर केवल पश्चिमी राजस्थान और गुजरात प्रदेशो की परि-स्थितियो का ही अध्ययन करेंगे, जिनसे कवि के जीवन का सम्बन्ध रहा है और जहाँ की परिस्थितियो का प्रभाव उसके साहित्य में लक्षित होता है—

(१) राजनीतिक अवस्था

कुशललाभ का जीवनकाल १६वी शती के अन्तिम चरण तथा १७वी शती के पूर्वार्द्ध का रहा है और उसमे भी १७वी शती का पूर्वार्द्ध ही अधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसमें बाल्यावस्था को पार कर लोक की परिस्थितियों के प्रभाव को ग्रहण करने की अवस्था मे वह आ पाया। इसी काल ने कवि को उसके साहित्य मे अपना प्रभाव अकित करने को बाध्य किया होगा। अत इससे पूर्व हम कुशललाभ के साहित्य मे दिखाई दे रही राज-नीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक या अन्य प्रकार की परिस्थितियों पर प्रकाश डालने वाले अन्यान्य साहित्य के आधार पर सक्षेप मे कुछ सामग्री प्रस्तुत कर देना उचित समझते हैं —

(अ) पश्चिमी राजस्थान

जोधपुर, बीकानेर, बाड़मेर, जैसलमेर, मारवाड़, उदयपुर आदि प्रदेशों से

सन्निहित राज्य पश्चिमी राजस्थान है।[२] कुशललाभ के काल में इस प्रदेश की राजनीतिक व्यवस्था अत्यन्त उथल-पुथल पूर्ण और अस्त-व्यस्त थी। इस काल में जैसलमेर में मालदेवभाटी, जोधपुर मे मालदेव राठौड़, बीकानेर मे कल्याणमल तथा मेवाड़ में उदयसिंह राज्य कर रहे थे। इन सभी राज्यों मे पारस्परिक और आन्तरिक कलह व्याप्त था। मालदेव राठौड जैसलमेर पर अधिकार करना चाहता था। अतः उसने स० १६०६ में पंचोली नेतसी के नेतृत्व में सेना भेजी और जैसलमेर को अपने अधीन कर लिया। मारवाड़ में आन्तरिक कलह जोरों पर था। मुग़ल बादशाह इन राजपूत राज्यों को अपने वश में करने के लिए प्रयत्नशील थे। इसी से हाजी खाँ, अकबर आदि के साथ इनका निरंतर संघर्ष रहा। जैसलमेर में मालदेव की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र हरराज स० १६१८ वि० के पौष सुदि ६ शुक्रवार को सिहासन पर बैठा। उसने अपने जीवन के अन्त में पोकरण पर पुनः अधिकार कर लिया।

राजपूत और मुगलों मे विवाह सम्बन्ध होने लगे। अकबर ने जयपुर और जैसलमेर के राजघरानों की राजकुमारियों से विवाह किये। और भी कई इस प्रकार के सम्बन्ध उनमें हुए। सं० १६४३ वि० में मोटे राजा उदयसिंह ने अपनी पुत्री का विवाह शहज़ादे सलीम के साथ किया। मुग़लों के साथ सम्बन्धों से अब इस प्रदेश मे प्रायः शान्ति स्थापित हो गई। किन्तु यहाँ के सभी शासक अनुपस्थित शासक (एब्सेन्टी रूलर्स) हो गये। जैसलमेर मारवाड के अधीन एक जागीर मात्र बनकर रह गया था। जैसलमेर का स्वाभिमानी शासक इसे सहन नही कर सकता था। अतः उसने भी अपनी स्वाधीनता के लिए मुगलों से विवाह-सम्बन्ध स्थापित करना आरम्भ कर दिया। जैसलमेर की राजकुमारी नाथी बाई का अकबर के साथ विवाह शायद इसी का परिणाम था।[3]

(आ) गुजरात

'स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवन' मे कुशललाभ ने लिखा है कि सारा गुजरात म्लेच्छों के आतक एवं आक्रमणों से अस्त-व्यस्त था, अतः राजनीतिक और सामरिक गतिविधियो से शान्त खभात नगर मे पार्श्वनाथ जी की प्रतिमा (बिम्ब) को स्थापित की गई।[४] कवि ने इस स्तवन की रचना सवत् १६३८ वि० में की।[५] इस समय इतिहासकारों ने भी खभात को शान्तिमय स्थल माना है, जहाँ जैन यति अपने धर्म-प्रचार एवं साहित्य-सृजन में सलग्न थे।[६] इस प्रकार कुशललाभ के काल में समस्त गुजरात की राजनीतिक दशा अस्त-व्यस्त थी।

सवत् १६११ वि० में शहज़ादे महमूद तृतीय की मृत्यु के पश्चात् सारे गुजरात मे गृह-युद्ध आरम्भ हो गये। सैयद मुबारक़, एतमाद खाँ और इमादुलमुल्क जैसे अमीर सुलतानो ने अपने हितो के अनुसार पूरे गुजरात को टुकड़े कर बाँट लिया। एतमाद खाँ ने अहमदाबाद, साबरमती और माही के बीच के प्रदेश अपने अधिकार में कर लिए। इमादुलमुल्क का पुत्र चिगीज़ खाँ चंपानेर, सूरत, भडौच और बड़ौदा का शासक बन बैठा। मूसाखाँ और शेर खाँ फौलादी ने पट्टन ज़िले और क़ादी तक के प्रदेशों को हस्तगत कर लिया। जूनागढ़ और सौराष्ट्र अमीन खाँ गुरी के हाथ पड़ गये तथा धंधूका, धोलका

और पार्श्ववर्ती प्रदेश सैयद मुबारक के पौत्र सैयद अहमद के अधिकार में आ गये। शेर खाँ ने एतमाद खाँ को अहमदाबाद में घेर लिया। इस प्रकार गृह-युद्ध आरम्भ हुआ। एतमाद खाँ ने अकबर से सहायता मांगी। उसने अवसर का लाभ उठाकर सेना भिजवायी और अपनी शक्ति एवं नीति के आसरे पूरे गुजरात पर प्राय: मुग़ल-साम्राज्य की स्थापना कर ली। अकबर ने यहाँ अपने नाम के सिक्के भी आरम्भ कर दिये। उसने गुजरात के दो भाग किये—अहमदाबाद सहित पूर्वी भाग का शासन उसने मिर्ज़ा अजीज़ को तथा दूसरे भाग जिसमें बड़ौदा, चम्पानेर, सूरत और विद्रोही मिर्ज़ाओं के अधिकार वाले ज़िले थे, का शासक एतमाद खाँ को बना दिया।

इस प्रकार अब सं० १६४६ वि० से ही गुजरात में अकबर की एक छत्रता के परिणाम स्वरूप शान्ति की शुरुआत हो गई जो सं० १६४६ वि० में काठियावाड़ की प्राप्ति के पश्चात् पूरी तरह से सम्पन्न हो गई।[७]

अत: ऐसे उत्पाती वातावरण में कवि का, जो विशेष रूप से जैन कवि था, शान्त रस की ओर प्रवृत्त होना स्वाभाविक ही है। कुशललाभ की स्तोत्र एवं जैन-चरित-संबंधी कृतियाँ इसी मनोवृत्ति के परिणाम है।

(२) धार्मिक स्थिति

कुशललाभ के काल में गुजरात और राजस्थान में मुस्लिम बादशाहों के शासन के परिणाम स्वरूप इस्लाम धर्म को जबरदस्ती मनवाया जा रहा था। किन्तु अधिकांश हिन्दू-राजाओं ने उसे स्वीकार नहीं किया। अत: इस युग में हिन्दू और जैन धर्मों को यथेष्ट प्रश्रय मिला। शिव, गौरी, सूर्य, रोहिणी, मरु देवी आदि की पूजाएं कुलाचार के रूप में स्वीकृत थी। नवरात्रि के दिनों मे एवं मनोतियों की पूर्ति निमित्त परिवारों में देवी को पशु-बलि देने का सामान्य रिवाज था। किन्तु पश्चिमी राजस्थान एवं गुजरात में जैनियों के प्रभाव के कारण, यह प्रथा लगभग बन्द हो गई।

हिन्दू राजाओ की धर्म निरपेक्ष नीति के कारण राजस्थान और गुजरात में यों तो शैव, शाक्त, इस्लाम आदि सभी धर्मों और सम्प्रदायों को आश्रय मिला, किन्तु सर्वाधिक प्रश्रय जैन-धर्म को मिला। इसके अनेक कारण थे। प्रथमत:, प्राय: राजा-महाराजाओं के मत्री एवं दीवान-पद अथवा उच्च पदों पर वैश्य-समाज के ही व्यक्ति आसीन थे। द्वितीय, अन्य धर्मों की अपेक्षा हिन्दू जाति में जैन मत अधिक कट्टर था। यही कारण थे कि समय-समय पर तत्कालीन राजा-महाराजाओं ने अनेक जैन-मन्दिर बनवाने में सहयोग दिया, मूर्तियाँ स्थापित करवायी तथा जैन-साधुओं के विहार बनवाये।[८]

उस युग में राजस्थान में जैन-धर्म को प्रसारित करने का प्रमुख श्रेय खरतर गच्छ के आचार्यों, मुनियों एवं श्रावकों को है। जिनदत्त सूरि, जिनहंस सूरि, जिणमाणिक्य सूरि, जिनसिंह सूरि, सोमशाह आदि अनेक जैन विद्वानों एवं मुनियों ने जैसलमेर, अर्बुद, सिरोही, पाटण, अहमदाबाद, बीकानेर, जालोर, पालीताणा आदि नगरों में संघों सहित यात्रा करके जैन-धर्म का व्यापक प्रचार किया।[९] इन यात्राओं के समुचित आयोजनों के लिए भी अनेक राजाओं ने मुक्त हस्त से दान दिया।

हिन्दू-राजाओं की भाँति ही मुस्लिम-सम्राटों ने भी इन जैन-साधुओं का आदर किया। कहा जाता है कि एक बार काश्मीर विजय के निमित्त जाते हुए सम्राट अकबर ने युगप्रधान जिनचन्द्र सूरि को बुलाकर आशीर्वाद प्राप्त किया और आषाढ़ शुक्ला ९ से पूर्णिमा तक बारह सूबों में जीवों को अभय दान देने के लिए फरमान लिख भेजा।[१०]

(३) सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति

तत्कालीन पश्चिमी राजस्थानी और गुजराती समाज में सामन्ती-समाज की प्रधानता थी। निम्न स्तरीय जातियों का इन सामन्तों द्वारा अत्यधिक शोषण हो रहा था। इस स्थिति का मुस्लिम समाज ने पूरा लाभ उठाया। मुसलमानों ने निम्न जाति के हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया।

अन्तर्जातीय विवाह का प्राय: प्रचलन हो चला था। अनेक राजाओं एवं सामंतों ने अपनी बहन-बेटियो का विवाह सम्राट अकबर के साथ सत्ता लोलुपता के कारण कर दिया। ऐसे राजा-सामन्त स्वतन्त्रता-प्रिय सामन्तों की दृष्टि मे निम्न श्रेणी के समझे जाते थे।

विवाह अल्पायु मे हो जाया करता था। बहु-पत्नी प्रथा से विधवाओं का बाहुल्य भी था।

पाटन, जालौर, आबू, खंभात, पालनपुर, जैसलमेर आदि उस समय के प्रमुख जैन शिक्षापीठ थे। शिक्षा का पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में कम प्रचलन था।

तत्कालीन समाज में आचार एवं नीति पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता था। बड़ों को 'मुजरा' एव 'शुभराज' करना अनिवार्य था। सामन्त आदि सम्भ्रान्त वर्ग विशिष्ट पर्वों एव अवसरों पर अपने चाकरों और विशिष्ट व्यक्तियों को 'पसाव' देकर सम्मानित करते थे। राजा को भी भेट देने का रिवाज था।

सामन्तीय वातावरण के कारण इस युग मे कलाओं को भी प्रश्रय मिला। इसका प्रमाण इस युग के सिक्के, छपे हुए वस्त्र, मंदिर एव हस्तलिखित ग्रन्थों की जिल्दो और उनमे चित्रित चित्र आदि हैं।[११]

(४) साहित्यिक अवस्था

कुशललाभ का अस्तित्वकाल १६वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से १७वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। इस युग मे मुख्य रूप से अपभ्रंश मिश्रित लोक भाषा का प्रचलन था, जिसमें इस युग के चारण और जैन कवि विभिन्न रचनाओं का प्रणयन कर रहे थे। कवि प्राय: राजाओं के आश्रित थे। अत: आश्रित चारण अथवा जैन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की रुचि के अनुसार साहित्य की रचना की। शेष जैन-मुनियों, साधुओं और श्रावकों ने अपने धर्म-प्रचार, गुरु और तीर्थंकरों की स्तुति के लिए बोलचाल की भाषा का आश्रय लिया, जिसे अपनी विशिष्ट शैली में साहित्यिक रूप देकर लोक से जैन-आचार्यों ने अपनाया था। इस युग मे विशेष रूप से जैन भक्ति काव्य का ही प्रणयन हुआ जो पूर्णत: जैन कथानकों पर ही आधारित था।[१२]

(ख) कुशललाभ को साहित्य-सृजन की प्रेरणा

कवि का उक्त परिस्थितियों से प्रभावित होना स्वाभाविक है। इन परिस्थितियों में कुशललाभ को अनेक ऐसी प्रेरणाएँ मिली हैं, जिनसे प्रेरित होकर उसने जैसलमेर, पाटन, खंभात, वीरमपुर के राज्याश्रय एवं उपासरों में बैठकर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचनाओं का प्रणयन किया। ये प्रेरणाएँ हैं—

(१) **राज्याश्रय**—माधवानल कामकन्दला चौपई, ढोला मारवणी चौपई और पिंगल-शिरोमणि की पुष्पिकाओं से ज्ञात होता है कि कवि इनके प्रणयन काल में राज्याश्रित रहा है और उसने कथित ग्रंथों की रचना जैसलमेर के यदुवंशी राजा रावल हरराज के कुतूहलार्थ की हैं।[१३] इस प्रकार अपने आश्रयदाता का मनोरंजन करना भी कुशललाभ के साहित्य की मूल प्रेरणा रही है।

(२) **धर्म भावना एवं भक्ति**—राज्याश्रय के पश्चात् जब कवि उपासरों में ही रहने लगा तो उसने अपने धर्म को व्यापक और लोकप्रिय बनाने तथा आत्म-कल्याण की की भावना से प्रेरित होकर जिनपालित जिनरक्षित सन्धि गाथा, पार्श्वनाथ दशभव स्तवन, अगड़दत्त रास, भीमसेन हंसराज चौपई स्थूलिभद्र-छत्तीसी, नवकार छन्द, महामाई दुर्गा सातसी, जगदम्बा छन्द आदि जैन-चरितो एवं देवियों से सम्बन्धित ग्रन्थ रचे। जैन-साधुओ का लक्ष्य समाज की धार्मिक चेतना को उद्‌बुद्ध करना, जैन धर्म के उपदेशों को, जिनमे नैतिकता और सदाचारों पर अधिक बल दिया गया है, जनसाधारण तक पहुचाना तथा स्वान्तः सुखाय अपने आराध्य का स्मरण करना था।[१४] उक्त ग्रन्थ प्रायः इन सभी उद्देश्यो की पूर्ति करते है।

(३) **गुरु और तीर्थंकरों अथवा गुरुओं की भावोत्कर्षक मूर्तियां**—कुशललाभ ने भीमसेन हसराज चौपई की रचना गुरु के उपदेश को सुनकर की। स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन, श्री पूज्यवाहन गीत, गौड़ी पार्श्वनाथ छन्द आदि स्तोत्रो की सृजना उनकी भावोत्कर्षक मूर्तियो की छटा पर और शास्त्रो मे प्राप्त वर्णनो से मुग्ध होकर की है, जो उनकी निम्नलिखित पक्तियों से स्पष्ट है—

जात्र करेवा मुज हुंति रली, प्रभु तुम्ह भेंट्‌या आस सहू फली

× × ×

जिम सगुरु श्री मुखि सुणी वाणी, शास्त्र आगम समतइ ॥[१५]
श्री गुरु ना गुण ज्ञान हर्ष भवियणउ रे ॥
'कुशललाभ' कर जोडि श्री गुरु पय नमइ रे।
श्री पूज्य वाहण गीत सुणतां मन रमइ रे ॥[१६]
प्रभु प्रणमु रे पासजिणेसर थंभणउ,
गुण गावा रे मुज मनि उलट अति घणउ,
ग्यानी विणरे अंहनी आदि न को लहइ,
तेऊ पण रे गीतारथ गुरु हम कहइ ॥[१७]

(ग) जीवन-वृत्त

(१) जन्म एवं वंश—कुशललाभ की अद्यावधि प्राप्त १७ रचनाएँ हैं। किन्तु इनमे किसी मे भी कवि ने अपने जन्म-तिथि, जन्म-स्थान, माता-पिता, भाई-बन्धु, सन्तान आदि का कोई उल्लेख नही किया है। बहिर्साक्ष्य के आधार पर भी इन सन्दर्भो की ओर किसी भांति के संकेत नही मिलते। 'पिगल शिरोमणि' के आधार पर श्री अगरचन्द नाहटा कुशललाभ का जन्म वि० स० १५८० के लगभग स्वीकारते हैं। वे इस सन्दर्भ में लिखते हैं —"यदि उसका रचना समय ठीक यही है तो आपका जन्म-संवत् १५५० के लगभग अनुमान किया जा सकता है। आपकी रचना सं० १६४४ वि० तक की प्राप्त है। उस समय आपकी आयु ६५ वर्ष की सिद्ध हो जाती है जो कम सम्भव है। अत: जहाँ तक 'पिगल शिरोमणि' के निर्माण काल स० १५७५ होने की शकाएँ दूर न हो जाए मुझे आपका जन्म स० १५८० के लगभग का ही उचित लगता है।"[१८] डॉ० हीरालाल माहेश्वरी भी कवि का जन्म-सवत् यही मानते हैं।[१६]

डॉ० ब्रजमोहन जावलिया ने पिंगल शिरोमणि का रचना काल वि० सं० १६३५ सिद्ध किया है। इसमे उनकी यह मान्यता रही है कि कवि ने ग्रथ का प्रारूप हरराज की कुमारावस्था मे ही कर लिया था, किन्तु उसे व्यवस्थित एव सम्पादित रूप बाद मे दिया। डॉ० जावलिया ने यह समय 'सर' के स्थान पर 'रस' पाठान्तर को ग्रहण करके तथा मुनि का अर्थ तीन संख्या से लेकर किया है जो उचित भी है।[२०] भारतीय तिथि-पत्रक के आधार पर पिंगल शिरोमणि पुष्पिका की तिथि इस निर्धारण के आधार पर बिना किसी अटकल के प्रमाणित हो जाती है। इस प्रकार कुशललाभ की अन्य रचनाओं की तिथियाँ भी उक्त शका-निवारण से तर्क-सगत हो जाती है।

अत: माधवानल कामकन्दला चौपई को कवि की प्रथम रचना एवं शत्रुंजय यात्रा स्तवन को अन्तिम कृति स्वीकारते हुए कुशललाभ का जन्म वि० स० १५६० से १५६५ के आसपास होना सम्भव कहा जा सकता है। २०-२५ वर्ष की आयु मे माधवानल कामकन्दला जैसी सुन्दर अभिव्यजना कवि मे सम्भव है। इसके अतिरिक्त कुशललाभ द्वारा रचनाओ मे प्रयुक्त भाषा का स्वरूप भी इसी काल की ओर सकेत करता है।

(२) शिक्षा-दीक्षा, गुरु-परम्परा एवं सम्प्रदाय—कुशललाभ की कृतियों से उनकी शिक्षा-दीक्षा के बारे मे भी कोई सूचना नहीं मिलती। किन्तु रचनाओ की विषय-वस्तु, वर्णित राग-रागिनियों आदि से कवि की बहुज्ञता का अनुमान अवश्य होता है।

कवि ने अपनी रचनाओ मे स्वय को वाचक कहा है[२१] और मोहनलाल दलीचंद देसाई ने कवि को 'कुशललाभ उपाध्याय' नाम से सम्बोधित किया है।[२२] जैन साधु-समाज मे शिक्षा की दृष्टि से ये दोनों ही विशेषण महत्त्वपूर्ण है। दीक्षा लेने के पश्चात् श्रावक अपनी योग्यता के आधार पर ही उक्त उपाधियों से विभूषित होता है। इसके अति-रिक्त खरतर गच्छ मे यह मर्यादा रही है कि जो ज्ञान मे सबसे बड़ा हो उसे महोपाध्याय कहते है।[२३] इस दृष्टि से उपाध्याय भी उच्च सम्मानीय उपाधि है। अत: कुशललाभ का शैक्षिक स्तर काफी ऊँचा रहा है।

कुशललाभ ने स्वयं को खरतरगच्छीय उपाध्याय अभयधर्म का शिष्य कहा है।

कवि की गुरु-परम्परा का परिचय देने वाले ग्रंथ तेजसार रास चोपई, अगड़दत्त रास, जिनपालित जिनरक्षित सन्धि गाथा, भीमसेन हंसराज चौपई, पार्श्वनाथ दशभव स्तवन, आदि जैन-चरित काव्य है। इनमे गुरु-परम्परा की ओर सकेत करने वाली पक्तियाँ क्रमशः यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

(१) श्री खरतर गच्छि सह गुर राय, गुर श्री अभय धर्म उवझाय।[२४]
(२) श्री जिनचंद्र सूरि गुरु राय, गुरु श्री अभयधर्म उवझाय।[२५]
(३) पास नाह स्वामी सुपसाय, गुरु श्री अभय धर्म उवझाय।
तासु सीस न हरषइ घुणीयह, वाचक कुशललाभ ए भणियु॥[२६]
(४) गिरुया श्री षरतर गच्छ राइ, श्री जिनचद्र सूरि सुपसाइ।
श्री खंभाइत नगर निवेस, कीधउ राम सगुरु उपदेस॥६२१
श्री जिन भद्र सूरि सतान, अभयधर्म उवझाय प्रधान।
तास सीसऊलट दति घणइ, वाचक कुसललाभ इम भणइ॥६२२[२७]
(५) उवझाय श्री उभयधर्म, सीसह स्तव्यु प्रभु सेवा भणी।
श्री कुशललाभ सुभत्ति बोल बोल सदा घउ सपति घलि॥[२८]

इस प्रकार कवि कुशललाभ खरतर गच्छ[२९] सम्प्रदाय के अधिष्ठाता जिनचन्द्र के शिष्य जिनभद्र सूरि की शिष्य परम्परा मे अभयधर्म के पास दीक्षित हुए। दीक्षा की तिथि आदि का कही उल्लेख नही किया है। अतः जन्म-तिथि की भाँति ही उनकी दीक्षा तिथि के सम्बन्ध मे भी कुछ नही कहा जा सकता।

(३) **शिष्य परम्परा एवं मृत्यु**—अन्य जैन एवं वैष्णव कवियों की भाँति कुशललाभ ने भी अपनी किसी रचना मे विशिष्ट और लम्बी शिष्यावली का प्रस्तुत नही किया है। किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कुशललाभ के अनेक शिष्य रहे हैं। इसके दो आधार हैं। प्रथमतः वह स्वय व्यवसाय से शिक्षक था। द्वितीय, पिंगल-शिरोमणि में आश्रयदाता हरराज द्वारा कवि को अपना गुरु मानना। यहाँ हरराज ने अपनी काव्य सम्बन्धी शंकाओं का समाधान कुशललाभ द्वारा ही किया है। इस प्रकार कुशललाभ की शिष्य-परम्परा मे ज्ञात नामा शिष्य केवल कुँवर हरराज को ही स्वीकार सकते है।

यों तो यथेष्ट प्रमाणों के अभाव मे कुशललाभ के मृत्यु काल के विषय मे कुछ भी कहना अनुपयुक्त होगा, किन्तु सवतोलिखित रचनाओं के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि कुशललाभ वि० सं० १६५५ तक जीवित थे। श्री अगरचन्द नाहटा संवतोलिखित कृति भीमसेन हसराज चौपई का रचनाकाल वि० स० १६४७ स्वीकारते हैं।[३०] डॉ० के० सी० कासलीवाल ने कुशललाभ की एक अन्य सवतोलिखित रचना गुणवती सुन्दरी चौपई का उल्लेख किया है। उन्होंने इसका रचना काल वि० सं० १६४८ कहा है।[३१] इसी भाँति डॉ० प्रेमसागर जैन लूण करण मदिर, जयपुर और बड़ोदरा की प्रतियों के आधार पर 'स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवन' का रचनाकाल वि० स० १६५३ मानते है।[३२] यद्यपि उक्त मान्यताओं मे कोई सार नही है फिर भी शत्रुंजय यात्रा स्तवन आदि ग्रन्थों के रचना काल १६४५ के आधार पर हम यही निश्चय कर सकते है

कि वह संवत् १६४५ तक तो जीवित था ही। उसके बाद भी ५-१० वर्ष उसकी आयु और मानकर हम उसे स० १६५५ तक खींच सकते है। इसके पश्चात् कवि की सवतोलिखित कोई रचना दृष्टिगत नही होती। अत: इस समय तक उसकी आयु ६० से ६५ वर्ष की प्रमाणित होती है, जो तत्कालीन औसत आयु के निकट है। इस प्रकार कुशललाभ का मृत्युकाल वि० स० १६५५ तक माना जा सकता है।

(४) **कवि की बहुज्ञता**—कुशललाभ के साहित्य में वर्णित अनेक स्थलों से उसके ज्ञान का भी परिचय मिलता है। 'पिंगल-शिरोमणि-ग्रन्थ' से जहाँ उसके काव्य शास्त्रीय मनिषा से साक्षात्कार होता है, वही ढोला-मारू चौपई और शत्रुजय-यात्रा-स्तवन से भौगोलिक-प्रदेशो एव भागों के प्रति परिचय। कवि को सामन्ती-लोकाचार एव ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का भी यथेष्ट ज्ञान था। इसके प्रमाण हैं माधवानल कामकंदला चौपई, ढोला-मारू चौपई, अगड़दत्त रास, भीमसेन हसराज चौपई आदि रचनाएँ। विभिन्न रचनाओं मे आए शकुनो, तीज-त्यौहारो आदि के चित्रणो से कुशललाभ की सांस्कृतिक रुचि और उनके प्रति ज्ञान का भी परिचय मिलता है।

कवि को शास्त्रीय सगीत का भी अच्छा ज्ञान था। स्तोत्र, छद, गीत नामधारी लघु रचनाओ तथा भीमसेन हसराज चौपई में कुशललाभ ने अनेक ढालों को शास्त्रीय रागों में निबद्धित किया है, जो सगीत-शास्त्रों में वर्णित लक्षणो पर प्रमाणित उतरते हैं। इन रागो का विस्तृत अध्ययन इस शोध-प्रबन्ध के अध्याय ६ मे किया गया है।

(५) **समकालीन कवियो में कुशललाभ का स्थान**—कुशललाभ की संवतोलिखित रचनाओं के आधार पर उनका सृजन-काल वि० स० १६१६ मे वि० स० १६४५ (तथाकथित गुण सुन्दरी चौपई के आधार पर वि० स० १६४८) सिद्ध होता है। इस युग मे कुशललाभ के समकालीन कवियो की दो कोटियाँ थी। प्रथम प्रकार के कवि चारण अथवा शासन से सम्बन्धित थे जो शुद्धत. डिंगल भाषा मे रचना कर रहे थे। पृथ्वीराज राठौड़, माधोदास दधिवाड़िया, साया जी झूला आदि इसी वर्ग के कवि थे। दूसरी प्रकार के वे कवि थे जो बोलचाल की भाषा मे लौकिक प्रेमाख्यानों पर अथवा जैन-धर्म और भक्ति से सम्बन्धित रचनाओं का प्रणयन कर रहे थे। इस वर्ग के प्रमुख कवियों मे मालदेव, हीरकलश, हेमरत्न सूरि, गुण विनय आदि का नाम लिया जा सकता है।

साहित्य की विपुलता की दृष्टि से उक्त दोनों ही कोटि के कवियो ने पर्याप्त मात्रा मे सृजन किया, किन्तु काव्य की गुणात्मकता मे कोई कवि कुशललाभ की समता मे खड़ा नही हो सकता। प्राय. कुशललाभ की 'ढोला-मारवणी चौपई' और पृथ्वीराज राठौड़ कृत 'वेलि क्रिसण रुकमणि री' की तुलना करते हैं और साहित्यिक दृष्टि से वेलि को सर्वोच्चता प्रदान की जाती है। निश्चित रूप से शास्त्रीय दृष्टि से वेलि एक स्तुत्य ग्रन्थ है, किन्तु मार्मिकता की दृष्टि से कुशललाभ की 'ढोला-मारवणी चौपई' ही अग्रणी कही जाएगी। कहा जाता है कि एक बार सम्राट अकबर ने 'ढोला-मारवणी चौपई' को सुनकर पृथ्वीराज को कहा कि तुम्हारी वेलि को तो ढोला का करहला (ऊँट) चर गया है।[33] इस कथन से भी कवि के काव्यत्व की सराहना होती है।

उक्त दोनों ही प्रकार के कवियो ने भक्ति एवं शृगार पर लिखा। पृथ्वीराज

राठौड़, माधोदास दधिवाड़िया आदि कवियों ने जहाँ अपने भक्ति और श्रृंगार का आधार पौराणिक आख्यानों को रखा और हेमरत्न, हीरकलश आदि कवियों ने इसकी अन्विति के लिए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ग्रहण की। वहीं कुशललाभ ने शुद्धत. लौकिक अनुभूति को ही अपनी विषय-सामग्री का आधार बनाया है। माधव, कामकंदला, ढोला, मारवणी (मारू), भीमसेन, मदनमंजरी, हसराज, तेजसार आदि पूर्णत: लौकिक नायक-नायिकाएँ हैं। इनमे अन्य कवियो की भाँति ऐतिहासिकता का प्राय: अभाव है। यही कारण है कि ये पात्र एव वर्णन अन्य कवियों की कृतियों की अपेक्षा पाठक को अधिक आकर्षित करते हैं।

अपने समकालीन कवियों से कुशललाभ में एक और अन्तर है। जहाँ डिंगल-काव्य-सर्जक कवि राज्याश्रित है, अन्य जैन कवि पूर्णत: परिव्राजक और भक्त हैं, वहीं आलोच्य कवि इन दोनो ही प्रवृत्तियों का अनुभवी है। माधवानल कामकंदला चौपई, ढोला मारवणी चौपई और पिंगल शिरोमणि ग्रन्थो की रचना उसने मात्र अपने आश्रय-दाता के कुतूहलार्थ ही लिखी जबकि अन्य प्रेमाख्यानों एवं स्तोत्रों की रचना उसने स्वतन्त्र रूप से की। कवि के इन दोनों अनुभवों से उसमे साहित्यिक ईमानदारी का प्रादुर्भाव हुआ है। उसमें क्लिष्टता की अपेक्षा सहजता एव सरलता का अनुभव किया जा सकता है।

इन सभी के साथ कवि का काव्य-शास्त्रीय ज्ञान भी उसे अन्य समकालीन कवियों की अपेक्षा अग्रणीय घोषित करता है। साहित्य और संस्कृति की प्रसूता राजस्थानी को इसी कवि ने सर्वप्रथम 'पिंगल शिरोमणि' नाम से रीति विवेचक ग्रन्थ दिया। इसमे कवि ने 'उडिंगल नाममाला' प्रकरण लिखकर राजस्थानी के डिंगल नाम को भी प्रामाणिकता प्रदान की है।

इस प्रकार आलोच्य कवि का अपने समकालीन कवियों मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि कुशललाभ से इनमे कोई बराबरी करने योग्य कवि है तो वह मात्र पृथ्वीराज राठौड़ को उनकी 'वेलि और उदयवत्स सावलिगा री वात' के आधार पर कहा जा सकता है। अन्यथा कोई कवि कुशललाभ का सानी नही रखता।

सन्दर्भ

१. डॉ० दीनदयाल गुप्त, अष्ट छाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० १६, वि० स० २००४

२. टेसिटरी, प्राचीन राजस्थानी, पृ० ४, वि० स० २०१२

३. (क) प० व्यास हरिदत्त गोविंद, जैसलमेर का इतिहास।

(ख) बी० एस० भार्गव, राजस्थान का इतिहास, १९६६ ई०

(ग) जगदीश सिंह गहलोत, राजपुताने का इतिहास, १९६६ ई०

४. केतले वरिसे देस गुज्जर, सकल म्लेच्छायन थयु।
भल ठाम जाणि बिब आणी, नयर खभाइत ठव्यु॥
मो० द० देसाई, आनन्द काव्य महोदधि, मौ० ७, पृ० १९२, छन्द १७

५. मनमोहन स्वरूप माथुर, वाचक कुशललाभ—रचनाएं और रचना काल, शोध

पत्रिका, वर्ष २२, अंक ३, पृ० १२-१३
६. डॉ० भगवानदास गुप्त, अकबर महान् (हिन्दी अनुवाद), पृ० ३७२, १६६७ ई०
७. (क) डॉ० भगवानदास गुप्त, अकबर महान्, (हिन्दी अनुवाद)
 (ख) दुर्गाशकर केवल राम शास्त्री, गुजरात नो मध्यकालीन राजपूत इतिहास।
८. श्री के० सी० जैन, जैनिज्म इन राजस्थान, पृ० ३६-४८, १६६३ ई०
६. (क) श्री विनय सागर, खरतरगच्छ का इतिहास, प्रथम खंड (उत्तरार्द्ध), पृ० १८१-१६७, वि० स० २०१६
 (ख) कुशललाभ, शत्रुंजय यात्रा स्तवन (अप्रकाशित)—अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, ग्रन्थांक ७७४४
१०. श्री अगरचन्द, भंवरलाल नाहटा, मणिधारी जिनचन्द्र सूरि, अष्ठम शताब्दी स्मृति ग्रन्थ, पृ० ४४, १६७१ ई०
११. (क) डॉ० जी० एन० शर्मा, सोशल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑफ मेडाइवल राजस्थान, १६७१ ई०
 (ख) रत्नमणि राव भीम राव, बी० ए०, गुजरात नो सांस्कृतिक इतिहास, प्रथम संस्करण
१२. (क) डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य, (सं० १५००—१६५० वि०), १६६० ई०
 (ख) मो० द० देसाई, आ० का० म०, मो० ७, १६२६ ई०
१३. (क) राउल भाल सुपाटघर, कुंमर श्री हरिराजि।
 विरची अ सिणगार रस, तास कुतूहल काजि ।।६६५
 मो० द० देसाई, मा० का० कं० चौ० (आ० का० म० मो० ७)।
 (ख) जादव रावल श्री हरिराज, जोड़ी तास कतुहल काज ।।७३६
 डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०
 (ग) रावल माल सुपाटपति, जैसल हरियंदवास।
 कुसललाभ कवि वरणव्यौ, जास कुतूहल काज ।।२
 —परम्परा, भाग १३, पृ० १८०
१४. डॉ० श्याम शंकर दीक्षित, १३-१४वीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य, पृ० ८६, १६६६ ई०
१५. भीमसेन हंसराज चौपई (अप्र०), ग्रन्थ १२१७
१६. अगरचन्द नाहटा, ऐतिहासिक काव्य संग्रह, पृ० ११७
१७. मो० द० देसाई, आनन्द काव्य महोदधि, मो० ७, (स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवन), पृ० १८७
१८. राजस्थान भारती, भाग १, अंक ४, पृ० २३
१६. राजस्थानी भाषा और साहित्य (वि० सं० १५००-१६५०), पृ० २५६
२०. पिंगल शिरोमणि और उसका रचना काल (अप्रकाशित लेख)।
२१. (क) ते० रा० चौ०—वाचक कुशललाभ इम भणइ ।।४११, ग्रन्थ २६५४६

(ख) अ० रा०—वाचक कुशललाभ इम भणइ ।।३१९, ग्रन्थ ६०५
(ग) जि० जि० सं० गा०—वाचक कुशललाभ ए भणीयु ।।८५, ग्रन्थ २७२६६
(घ) मा० का० कं० चौ०—कुशललाभ वाचक कहइ ।।६६३, आ० का० म० मौ० ७
(ङ) ढो० मा० चौ०—वाचक कुशललाभ इम कहे ।।७४१

२२. आनन्द काव्य महोदधि, मौ० ७, पृ० १४३
२३. श्री अगरचन्द नाहटा, मध्यकालीन जैन साहित्य-परम्परा, भाग १५-१६, पृ० ७४
२४. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, स० २६५४६, चौ० ४०९
२५. भंडारकर प्राच्य विद्या मदिर, पूना, ग्रन्थ ६०५, चौ० ३१९
२६. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थ २७२६६, चौ० ८५
२७. एल० डी० इस्टीट्यूट, अहमदाबाद, ग्रन्थ १२१७
२८. वही, ग्रन्थ ९७५, गा० ६१
२९. वर्धमान सूरि इस गच्छ के जन्मदाता थे। इनके शिष्य जिनेश्वर सूरि ने गुजरात के अणहिल पट्टण के राजा दुर्लभ राज की सभा में जब चैतन्यवासियों को परास्त किया तो राजा ने उन्हे खरतर नाम दिया। यही खरतर नाम का इतिहास है। राजस्थान, गुजरात और बंगाल मे इसके अधिकाश अनुयायी है। डॉ० रवीन्द्र कुमार जैन, कविवर बनारसीदास, पृ० ४७, १९६६ ई०
३०. ढोला मारू चौपई का रचनाकाल, वैचारिकी, भाग १, अंक १, पृ० ६२
३१. राजस्थान के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, भाग ५
३२. हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, पृ० ११९, १९६९ ई०
३३. ढोला मारू रा दूहा, प्राक्कथन (पादटिप्पणी), पृ० ९, वि० सं० २०११

२

कुशललाभ का साहित्य : एक परिचय

कुशललाभ कृत अब तक छोटी-मोटी कुल १८ रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं। कवि ने अवश्य ही और भी रचनाएँ की होगी, जो अभी तक मिल नही पाई है। फिर भी, जो कुछ भी सामग्री प्राप्त है उसके आधार पर उनकी योग्यता और रुचि का पता लगाया जा सकता है। इन कृतियो का रचनाकाल कवि की युवावस्था से वृद्धावस्था तक व्याप्त है। अतः कवि की अवस्था के अनुसार बढ़ती-बदलती रुचियों का आसानी से इन रचनाओ के आधार पर अनुमान किया जा सकता है। ये अठारह रचनाएँ निम्नलिखित है—

(१) माधवानल कामकदला चौपई, (२) ढोला-मारवणी चौपई, (३) जिन पालित जिनरक्षित सधि गाथा, (४) पार्श्वनाथ दश भव स्तवन, (५) अगड़दत्त रास, (६) तेजसार रास, (७) पिंगल शिरोमणि, (८) स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवन, (९) भीमसेन हसराज चौपई, (१०) शत्रुजय यात्रा स्तवन, (११) श्री पूज्य वाहण गीत, (१२) गोडी पार्श्वनाथ छद, (१३) नवकार छद, (१४) स्थूलिभद्र छत्तीसी, (१५) महामाई दुर्गा सातसी, (१६) जगदम्बा छद अथवा भवानी छद, (१७) कवित्त-सवैया और (१८) गुण-वती सुन्दरी चौपई।

इन कृतियो के अतिरिक्त कवि के द्वारा विरचित हसदूत और ज्ञान दीप रचनाओं का भी उल्लेख हुआ है। वस्तुत: 'हसदूत' कवि की स्वरचित कृति नही है। यह किसी अन्य कवि की रचना है जिसका लेखन उसने स्वय के पठनार्थ किया है।[1] श्री अगरचन्द नाहटा ने 'ज्ञानदीप' नाम की रचना का प्राप्ति स्थल श्री पुण्य-विजय जी के उपासरे को बताया है,[2] किन्तु उस संग्रह में यह प्रति उपलब्ध नही हो पाई।

कृतियों का वर्गीकरण

१. आकार की दृष्टि से—आकार की दृष्टि से उक्त रचनाएँ दो प्रकार की है—कुछ बड़ी है और कुछ छोटी। माधवानल कामकदला चौपई, ढोलामारू चौपई, अगडदत्त रास, तेजसार रास, पिंगल-शिरोमणि, भीमसेन हसराज चौपई, गुणवती सुन्दरी चौपई और महामाई दुर्गा सातसी कवि की वृहदाकार कृतियाँ है। शेष रचनाएँ, जो स्तवन, छन्द, गीत, गाथा, कवित्त आदि नामो से सम्बन्धित है, कवि की लघु कृतियाँ हैं।

२. **काव्य-स्वरूप की दृष्टि से**—इस रूप में इन कृतियों के निम्नलिखित दो भेद किए जा सकते हैं—

(क) **कथा काव्य परक खंड काव्य**—इस वर्ग में माधवानल कामकंदला चौपई, ढोला मारू चौपई, अगड़दत्त रास चौपई, भीमसेन हंसराज चौपई, गुणवती सुन्दरी चौपई और महामाई दुर्गा सातसी काव्य ग्रन्थों को रख सकते हैं।

(ख) **स्वतन्त्र लघु-काव्य**—जिन पालित जिनरक्षित संधि गाथा, पार्श्वनाथ दश भव स्तवन, स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवन, शत्रुंजय यात्रा स्तवन, श्री पूज्यवाहन गीत, गौड़ी पार्श्वनाथ छन्द, नवकार छन्द, जगदम्बा छन्द अथवा भवानी छन्द और स्फुट कवित्त आदि।

३. **विषय की दृष्टि से**—अध्ययन की दृष्टि से विषय-वस्तु का बड़ा महत्त्व होता है। इस दृष्टि से कुशललाभ की प्राप्त रचनाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

(क) **प्रेमाख्यानक रचनाएँ**—१. माधवानल कामकंदला चौपई, २. ढोला-मारवणी चौपई, ३. जिनपालित जिनरक्षित संधि गाथा, ४. अगड़दत्त रास, ५. तेजसार रास चौपई, ६. भीमसेन हंसराज चौपई और ७. स्थूलिभद्र छत्तीसी और ८. गुणवती सुन्दरी चौपई (अप्राप्य)

(ख) **जैन-भक्ति-सम्बन्धी रचनाएँ**—१. पार्श्वनाथ दशभव स्तवन, २. स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन, ३. शत्रुंजय यात्रा स्तवन, ४. श्री पूज्यवाहण गीत, ५. गौड़ी पार्श्वनाथ छन्द और ६. नवकार छन्द।

(ग) **पौराणिक साहित्य**—१. पिंगल-शिरोमणि में वर्णित राम-कथा, २. महा-माई दुर्गा सातसी, ३. जगदम्बा छन्द अथवा भवानी छन्द।

(घ) **रीति सम्बन्धी रचनाएँ**—पिंगल-शिरोमणि।

(आ) अब इसी वर्गीकरण के आधार पर कुशललाभ की अब तक प्राप्त रचनाओं का परिचय प्रस्तुत है—यहाँ हम रचनाओ के समग्र परिचय के उपरान्त आद्यन्त अप्रकाशित रचनाओं का ही आदि और अन्त प्रस्तुत कर रहे हैं।

१. माधवानल कामकंदला चौपई

यह माधव और कंदला के लोक-प्रचलित आख्यान से सम्बन्धित शृंगार-प्रधान कृति है। डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव ने इसकी गणना नीति-प्रधान प्रेम-काव्यो के अन्तर्गत की है।[3] इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र के विभिन्न सग्रहालयों में उपलब्ध है। इन्ही के आधार पर श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने इसका सर्वप्रथम सम्पादन सन् १९२६ ई० मे 'माधवानल की कथा' नाम से किया।[4] इनके पश्चात् श्री एम० आर० मजूमदार ने सम्पादन किया, जिसका प्रकाशन गायकवाड़ सीरीज के अंक XCIII में सन् १९४२ मे हुआ।[5] इसकी सर्वाधिक प्राचीन हस्तलिखित प्रति राजस्थान-प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर में सुरक्षित है। इस प्रति का लिपिकाल संवत् १९३८ विक्रम है।[6] इसका आकार ८" × ४½" का है तथा पत्रों की संख्या ३० है।

लिपि सुवाच्य है। हमने अपने अध्ययन के लिए आनन्द काव्य महोदधि मौ० ७ में प्रकाशित पाठ को ग्रहण किया है।

रचना-काल

आलोच्य कृति की उपलब्ध अधिकांश हस्तलिखित प्रतियों में रचना-तिथि के सम्बन्ध में निम्नांकित पंक्तियाँ मिलती हैं—

संवत् सोल् सोलोत रहा, जैसलमेरु मझारि।
फागुण सुदि तेरसि दिवसि, विरची आदितवार ॥

इसके विपरीत माधवानल कामकंदला-प्रबन्ध में डॉ० एम० आर० मजूमदार ने इसकी रचना-तिथि प्रतियों के पाठ के आधार पर वि० स० १६१६ फागुन वदि १३ रविवार दी है।[७] आनन्द काव्य महोदधि, मौलिक ७ मे इसी तिथि का उल्लेख इस प्रकार है—

संवत सोल सलोहतरई, जेसलमेर मझारि।
फागुण वदि तेरसि दिवस, विरची आदितवार ॥३६१[८]

डॉ० ब्रजमोहन जावलिया के सग्रह की प्रति में भी यही उल्लेख मिलता है।[९] श्री अगरचन्द नाहटा ने भी इसी तिथि को स्वीकारा है।[१०] डॉ० हरिकांत श्रीवास्तव ने इसका रचना-संवत् १६१३ वि० माना है, किन्तु इसके आधार में उन्होंने कोई पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत नही किया। डॉ० रामगोपाल गोयल श्वेताम्बर मन्दिर, अजमेर के प्रति के आधार पर कृति की रचना तिथि वि० स० १६७२ फा० शुक्ला १३ रविवार स्वीकारते है।

भारतीय तिथि-पत्रक द्वारा उक्त तिथियों के सत्यापन पर 'तेरस रविवार' वि० सं० १६१६ के फाल्गुन मास के कृष्ण एव शुक्ल पक्ष दोनों मे ही पड़ता है। अत. इस कृति का रचना-संवत् १६१६ उपयुक्त है। वि स० १६१७ और वि० सं० १६७२ में उक्त तिथि को रविवार किसी भी पक्ष मे नहीं पड़ता। गुरुवार और मंगलवार पड़ता है, जो रविवार से दो दिन आगे या पीछे हैं। ऐसी स्थिति में इन तिथियों को कृति का सही रचना-काल नहीं माना जा सकता।

कथा

इन्द्रलोक की अप्सरा जयन्ती के अभिमान से रुष्ट होकर इन्द्र ने उसे मृत्यु लोक में शिला रूप में जन्म लेने का शाप दिया। जयन्ती के आग्रह पर इन्द्र ने उसे माधव के साथ विवाह के उपरान्त पुन: स्वर्ग में निवास का वरदान भी दिया। शाप के अनुसार अलौकिक विधि से जन्मे बारह वर्षीय तेजस्वी एवं रूपवान माधव का विवाह शिला रूप में पड़ी जयन्ती के साथ हुआ। वरदान के अनुरूप ही अप्सरा रूप ग्रहण करके जयन्ती पुन· इन्द्रलोक में पहुँची। किन्तु अब माधव का विरह उसे सदैव घेरे रहता। अत: वह प्रतिदिन माधव के पास आकर सम्भोग-सुख प्राप्त करने लगी।

एक दिन नींद न खुलने से जयन्ती समय पर इन्द्रलोक नहीं पहुँच सकी। अन्य

अप्सराओं द्वारा समस्त भेद जान लेने पर तथा इन्द्र के भय से जयन्ती ने तो माधव के पास जाना छोड़ दिया किन्तु अब उसके आग्रह पर माधव ने इन्द्रलोक में जयन्ती के पास आना आरम्भ कर दिया।

एक रात इन्द्र ने पुन: नाटक का आदेश दिया। नाटक में जयन्ती ने माधव को भ्रमर रूप में अपनी कंचुकी में बिठाकर नृत्य आरम्भ किया। किन्तु इन्द्र जयन्ती की मन: स्थिति को पहचान गया। कंचुकी में भ्रमर रूप मे छिपे माधव की सूचना प्राप्त कर वह जयन्ती पर कुपित हुआ। पुन: उसने जयन्ती को मृत्युलोक में वेश्या के रूप में जन्म लेने का शाप दे दिया। शाप के अनुसार उसका जन्म कामावती नगरी की राजवेश्या कामा के घर हुआ। माता ने उसका नाम कामकंदला रखा।

इधर माधव जयन्ती के विरह में व्याकुल हुआ डोल रहा था। उसकी वीणा को सुनकर तथा लावण्य का स्मरण करके नगर की स्त्रियाँ स्खलित होने लगी। नागरिकों द्वारा माधव के इस व्यवहार की शिकायत सुनकर पुष्पावती के राजा ने उसे देश निकाला दे दिया। माधव पुष्पावती नगरी को छोड़कर राजा कामसेन की नगरी कामावती पहुँचा। वहाँ इन्द्र महोत्सव के उपलक्ष्य में नाटक खेला जा रहा था। माधव की कला-निणुणता से अवगत होकर राजा ने उसे बुलवाया। आदरसहित उसे अपने पास बिठाकर आभूषणादि से पुरस्कृत किया।

सभा मण्डप में माधव और कंदला ने एक-दूसरे को देखा। दोनों आपस में परिचित से लगे। कामकंदला के कुच पर जैसे ही भँवरा बैठा वैसे ही उसने न्यास-पवन द्वारा उसे उड़ा दिया। कंदला के इस कौशल पर माधव ने राजा द्वारा दी गयी समस्त भेंट को उस पर न्यौछावर कर दिया। माधव के इस व्यवहार को देखकर कामसेन बहुत रुष्ट हुआ और माधव को अपने देश से निकल जाने का आदेश दिया।

एक रात कामकदला के साथ रहकर माधव वहाँ से उज्जैनी पहुँचा। वहाँ उसने महाकाल के मन्दिर में एक विरह गाथा लिखी, जिसे पढकर विक्रमादित्य बहुत दुखी हुआ। विक्रमादित्य द्वारा अन्न-जल त्याग देने की प्रतिज्ञा को सुनकर भोग-विलासिनी वेश्या ने उसे खोज लाने का बीड़ा उठाया। महाकालेश्वर के मन्दिर में पहुँचकर वेश्या ने विरही माधव पर अपना पैर रखा। तभी भ्रमवश माधव ने उसे कंदला मानकर पैर को हटाकर पुष्ट पयोधरो को छाती पर रखने का निवेदन किया। इस प्रमाण के आधार पर वेश्या भोग-विलासिनी ने विक्रमादित्य को विरही माधव की उपस्थिति से सूचित किया।

माधव से उसके विरह की कथा सुनकर विक्रमादित्य सेना सहित कामावती नगरी की ओर बढ़ा। मार्ग में छद्मवेश धारण कर उसने कामकंदला और माधव की प्रेम की परीक्षा। जब दोनों ने ही अपने प्रेमियों की मृत्यु के समाचार सुने तो उनके प्राण-पखेरू उड़ गए। दो हत्याओ के पाप का भागी बनकर विक्रमादित्य बड़ा दुखी हुआ। ग्लानिवश जैसे ही वह अपनी खड्ग द्वारा आत्मघात करने को उद्यत हुआ, तभी वेताल ने उसे रोका। विक्रमादित्य से सारी घटना को जानकर वेताल पाताललोक गया। वहाँ से अमृतजल लाकर उसने दोनों प्रेमियों को पुनर्जीवित किया। अब वे कामसेन के पास पहुँचे। विक्रमादित्य के परोपकार से प्रभावित होकर कामसेन ने कामकंदला माधव को

दे दी। और तब विक्रमादित्य दोनों के साथ उज्जैन लौटा।

कुछ दिन विक्रमादित्य के साथ रहने के उपरान्त माधव ने अपने माता-पिता के पास जाने की इच्छा प्रकट की। विक्रमादित्य ने उसे धनधान्य और सेना सहित विदा किया। इतनी बड़ी सेना को आता देखकर पुष्पावती का राजा घबराया। उसने अपने पुरोहित को सेना के अधिपति को समझाने के लिए भेजा। अपने पिता पुरोहित शंकरदास को आता हुआ देखकर माधव अत्यन्त प्रसन्न हुआ। माधव के आगमन की सूचना प्राप्त कर पुष्पावती के राजा भी प्रजा के साथ उसके स्वागत के लिए पहुँचा। पुष्पावती में माधव का सभी ने स्वागत किया। अब वह अपने माता-पिता और चार पुत्रो के साथ सुखमय जीवन बिताता हुआ मोक्ष को प्राप्त हुआ।

कथानक की समीक्षा

विभिन्न घटनाओ का सकुल ही कथानक है। माधवानल कामकदला चौपई की प्रमुख घटनाएँ निम्नलिखित है—

१ इन्द्र के प्रस्ताव पर जयन्ती द्वारा नृत्य करने को इकार करना,
२. क्रुध होकर इन्द्र का जयन्ती को शाप एव उसका शिला-रूप मे जन्म,
३. शकर के स्खलन-स्वरूप पुरोहित शकरदास को पुत्र-प्राप्ति,
४. बालको का गगा-तट पर खेलने जाना एव वहाँ माधव का शिला-प्रतिभा के साथ विवाह करवा देना,
५. जयन्ती और माधव के सम्बन्धों का स्वर्ग मे भेद खुलना एव इन्द्र द्वारा पुनः जयन्ती को वेश्या-रूप में जन्म का शाप,
६ कामावती मे वेश्या के घर जयन्ती का जन्म एव निष्कासित माधव का कामसेन के दरबार मे उससे मिलन,
७ नृत्य करती हुई कामकदला का भ्रमर द्वारा कुचदशन, कामकंदला द्वारा भ्रमर को उड़ाने का प्रदर्शन और इस कला पर प्रसन्न होकर माधव का राजा द्वारा दी गई भेंट को कामकदला पर न्यौछावर करना,
८. राजा कामसेन द्वारा माधव को देश निकाला तथा कामकंदला की विरहाकुल स्थिति,
९. माधवानल का उज्जैनी पहुँचकर महाकाल मन्दिर में विरह-गाथा-लेखन तथा विक्रमादित्य द्वारा उसकी खोज,
१०. माधवानल व विक्रमादित्य के साक्षात्कार के उपरान्त विक्रमादित्य का माधव की सहायतार्थ ससैन्य कामावती की ओर प्रस्थान,
११. विक्रमादित्य द्वारा कामकंदला और माधवानल के प्रेम-सम्बन्धों की परीक्षा तथा विक्रमादित्य का आत्महत्या पर तत्पर होना,
१२. आगिवा वेताल द्वारा माधव व कामकदला को पुनर्जीवन और कामसेन द्वारा कंदला का समर्पण,
१३. विक्रमादित्य का माधवानल और कामकंदला के साथ उज्जैन लौटना तथा माधव का माता-पिता के साथ सुखमय जीवन।

उक्त घटनाओं के आधार पर यहाँ माधवानल-कामकंदला की प्रेम-कहानी, जो उनके पूर्वजन्म से सम्बन्धित है, आधिकारिक कथा वस्तु है। दशरूपक के अनुसार आधिकारिक कथा ही प्रमुख कथा होती है।[१२] इस प्रकार जयन्ती के शाप की घटनाएँ, माधव का पुष्पावती व कामावती से निष्कासन, कामावती में माधव और कामकंदला का मिलन तथा माधवानल का कामकंदला को पाने के प्रयत्न आदि घटनाएँ आधिकारिक कथावस्तु के ही अंग हैं।

मुख्य घटना के अतिरिक्त काव्य में कुछ ऐसी गौण घटनाएँ भी होती हैं, जो मुख्य कथा की पोषक होती हैं। इन्हें आनुषंगिक अथवा प्रासगिक कथा कहते हैं।[१२] यहाँ भ्रमर-दर्शन की कथा, मृदंगियों का त्रुटिपूर्ण वादन, राजा कामसेन का कुपित होना, विक्रमादित्य की प्रतिज्ञा एवं उसका कामावती को प्रस्थान, वेताल द्वारा अमृत लाभ आदि घटनाएँ प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत रखी जाएँगी।

कथा अत्यन्त सरल है। कथा का अन्त कवि ने जैन-शैली के अनुसार सुखात्मक किया है। नायक माधवानल को नायिका कामकदला की प्राप्ति करवाकर, सम्पूर्ण सुखों की प्राप्ति के उपरान्त उसे परिव्राजक बना दिया गया है।

कार्यान्वियन की आरम्भ, मध्य और अन्त की अवस्थाएँ स्पष्टत: दर्शित नहीं होती। फिर भी इन्द्र के शाप से कामावती में माधवानल और कामकदला के मिलन का प्रसंग आरम्भ, कामावती से माधवानल के निष्कासन से लेकर विक्रमादित्य की प्रतिज्ञा तक मध्य, और अमृतलाभ से माधवानल और कामकंदला के पुनर्मिलन तक की कथा को अन्त कहा जा सकता है।

ये सभी घटनाएँ माधवानल एवं कामकंदला के प्रेम को परिपक्व बनाने की ओर उन्मुख हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि कार्यान्वयन के सभी अवयव इस काव्य में वर्तमान हैं।

शुक्ल जी के अनुसार प्रबन्ध काव्य की सफलता उसमें निहित मार्मिक स्थलों पर निर्भर है।[13] आलोच्य कृति की कथा मे निम्नलिखित मार्मिक स्थल हैं—

१. जयन्ती के अहम् के परिणाम स्वरूप इन्द्र का शाप,
२. माधव और जयन्ती के विवाहोपरान्त उनका विरह एवं जयन्ती का इन्द्रपुरी के लोगों से छिपकर माधव के साथ रात्रि-रमण,
३. भ्रमर-रूप में माधव का कामकदला के कुचों मे आश्रय,
४. कामसेन द्वारा माधव को देश निकाला एवं माधव और कामकंदला का वियोग,
५. शिव-मन्दिर मे माधव की विरहावस्था,
६. परीक्षा स्वरूप माधव और कामकदला की मृत्यु पर विक्रमादित्य की चिंता एवं उसके आत्म-समर्पण के प्रयत्न।

इन रसात्मक-स्थलों का कवि ने इस कौशल से वर्णन किया है कि वह हमें सहज ही अपनी ओर आकर्षित करने लगते हैं। उदाहरणार्थ, माधव को भेजे हुए सन्देश में कामकंदला कहलाती है कि—"प्रियतम तुम मुझसे इतनी दूर हो तो यह समझना कि

तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम कम हो गया है—

मत जाणो प्रीनेह गयो, दूरि विदेसि गयाय।
बीमणो बाधै साजणां, उछोथाय खलांह ।।४३३[१४]

इसी भांति नायिका कामकदला की ज्योति विरह मे रोते-रोते चली गई है और वह प्रिय के अभाव में दुखी हो रही है—

आंखड़ियां उंबर भया, नयण गमाया रोइ ।
ते साजण परवेशड़े, रह्या विडाणी होइ ।।४४२[१५]

(२) ढोला-मारवणी चौपई

कुशललाभ की यह सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है । इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ देश-विदेश के अनेक संग्रहालयों में सग्रहीत हैं। राजस्थान में प्रचलित ढोला-मारू के बिखरे हुए दूहो को एकत्र कर अप्राप्त दूहों की पूर्ति हेतु अपनी ओर से उसमे चौपइयाँ मिलाकर कवि ने इसका निर्माण किया ।[१६]

प्राप्त प्रतियों में पाठ-भेद के साथ ही गाथाओ (छन्दो) की संख्या मे भी अन्तर मिलता है । स्वय कवि ने गाथाओं (छन्दों) की संख्या साढ़े सात सौ बताई है ।[१७] सम्पादकत्रय द्वारा सम्पादित 'ढोला मारू रा दूहा' में यह सख्या सात सौ ही है ।[१८] कुशललाभ कृत 'ढोला-मारवणी' चौपई की प्राचीनतम प्रति वि० सं० १६३६ की डॉ० ब्रजमोहन जावलिया के सग्रह मे उपलब्ध है, इसमे भी छन्दो की संख्या ७५० है। पर डॉ० जावलिया के पास सुरक्षित एक अन्य हस्तलिखित प्रति मे यह संख्या एक सहस्र से भी अधिक पहुंच गई है ।[१९] किन्तु अधिकांश प्रतियों मे दूहा-चौपई मिलाकर गाथाओ (छंदों) की संख्या ७०० से ७५० तक ही बनती है ।

कुछ हस्तलिखित प्रतियो मे दूहा एव चौपइयो के साथ गद्य (वात) भी मिलता है। किन्तु कवि ने कही भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में कृति मे गद्य-प्रयोग का संकेत नही किया है । उसने तो 'दूहा घणा पुराणा अछे' तथा 'गाहा साढ़ी सात से एह परिमांण, दूहा ने चौपी वषांण' द्वारा यह स्पष्ट कह दिया है कि—यह कृति पद्यात्मक रचना है, जिसमें दूहे और चौपई छन्दों का प्रयोग किया गया है। इससे स्पष्ट है कि ये गद्य-वार्ताएँ बाद मे जोडी हुई है । यह एक प्रेमाख्यान है । अत यह सम्भव भी हो सकता है ।

रचना-काल

ढोला-मारवणी चौपई की अधिकांश प्रतियों में रचना-काल से सम्बन्धित यह पंक्ति मिलती है—

'संवत सोल सतोत्तरे, आषात्तीज दीवस मन धरे ।'

कुछ प्रतियो मे इस पक्ति के साथ सोमवार, गुरुवार, बुधवार आदि दिनों का भी उल्लेख हुआ है ।[२०] उक्त पंक्ति के आधार पर आलोच्य कृति की रचना-तिथि संवत् १६१७

वि० की अक्षय तृतीया घोषित होती है। इसके विपरीत प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के उदय-पुर शाखा-कार्यालय में उपलब्ध सभी प्रतियों में रचना-तिथि- संवत् १६१६ वि० अक्षय तृतीया उल्लिखित है।[21] इनमे से एक प्रति में 'आषात्रीज वार सुकरे' पाठ भी मिलता है।[22]

उक्त पाठो का विपरीत अर्थ ग्रहण कर विभिन्न विद्वानों ने इसका पृथक-पृथक रचनाकाल माना है। स्व० जगदीशसिंह गहलोत इसका निर्माण काल संवत् १६०३,[23] श्री अगरचन्द नाहटा[24] और डॉ० रामगोपाल गोयल[25] सं० १६०७ वि०, विश्वेश्वरनाथ रेऊ[26] स० १६७७ वि०, डॉ० हीरालाल माहेश्वरी,[27] श्री गंगाराम गर्ग,[28] मोतीलाल मेनारिया[29] प्रभृत विद्वानों ने इसका रचनाकाल संवत् १६१७ वि० ही माना है।

भारतीय तिथि-पत्रक के आधार पर अक्षय तृतीया उक्त वर्णित किसी भी दिन को नहीं पड़ती। अतः ढोला-मारवणी चौपई की सही रचना-तिथि वि० १६१७ की अक्षय तृतीया ही मानी जा सकती है। विक्रम सवत् १६१६ की अक्षय तृतीया को इसकी रचना तिथि नहीं स्वीकारी जा सकती, क्योंकि इतनी बड़ी रचना का निर्माण दो या ढाई माह मे पूर्ण हो सकना कठिन ही है। इससे ढाई माह पूर्व वि० स० १६१६ फा० सुदि १३ रविवार को कुशललाभ ने एक वृहद रचना 'माधवानल कामकंदला चौपई' का प्रणयन किया था।

कथा

आखेट को गया हुआ राजा पिगल मार्ग मे प्यास से व्याकुल होकर एक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था। वही उसका परिचय एक पर्यटक-भाट से हुआ जो उसी के पास दान ग्रहण करने के लिए आ रहा था। राजा ने उसकी 'छागल' से जल पिया। भाट ने उसे विभिन्न प्रदेशों की विशेषताओं के साथ जालोर के राजा सामन्तसी की कन्या ऊमा देवड़ी के अनुपम सौन्दर्य के विपय मे बताया। भाट के साथ अपने देश पूंगल् पहुच कर राजा पिगल् ने ऊमा देवड़ी के साथ अपने विवाह का प्रस्ताव भाट और जैसल खवास के साथ सामन्तसी के पास भिजवाया। आरम्भ में तो सामन्तसी ने आनाकानी की किन्तु बाद में अपनी पत्नी की युक्तियुक्त परामर्श से विवाह की स्वीकृति दे दी। परामर्श के अनुरूप आबू यात्रा के बहाने आकर पिंगल ने जालोर की कुंवरी ऊमा देवड़ी से विवाह किया।

ऊमा देवड़ी के गौने के नौ माह बाद ही उसकी 'कूंरव' (गर्भ) से सुन्दरी मारवणी का जन्म हुआ। दैव योग से डेढ वर्ष बाद ही पूंगल् मे भयकर अकाल पडा। अन्न-जल की खोज मे पिंगल् को भी पुष्कर जाना पडा। वहाँ नलवरगढ का अधिपति नल भी मनौतियों से प्राप्त अपने पुत्र ढोला (साल्ह कुमार) की जात (मनौती) देने के लिए आया हुआ था। राजा नल एक खरगोश का पीछा करते हुए पिगल् के शिविर मे पहुचा। वहाँ वह सोई हुई मारवणी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। उसने मारू का अपने पुत्र ढोला के साथ विवाह करने का निश्चय किया। नल द्वारा निमन्त्रित एक भोज में उसके प्रधान ने इस सम्बन्ध का प्रस्ताव राजा पिंगल के समक्ष रखा। पिंगल् ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। दोनों का वहीं विधिवत् विवाह कर दिया गया। विवाह से सम्बद्ध शिलालेख

भी पुष्कर सरोवर पर लिखवा दिया गया।

शरद ऋतु के आरम्भ पर राजा नल ने स्वदेश लौटने से पूर्व मारू को अपने साथ ले जाने के लिए राजा पिंगल के पास पुरोहित भेजा। अल्पायु के कारण पिंगल् ने राजा नल को सात वर्ष बाद मारू को भिजवाने का वचन दिया। तदुपरान्त दोनों राजाओं ने अपने-अपने राज्य को प्रस्थान किया।

निश्चित समय तक पिंगल का कोई समाचार न मिलने पर, नल ने ढोला का विवाह मालवपति भीम की कन्या मालवणी के साथ कर दिया। ढोला को मारू (मारवणी) के साथ उसके विवाह की सूचना कोई न दे, इसकी भी उसने ढूंढी पिटवा दी।

ग्रीष्मकाल में एक दिन ढोला मालवणी के साथ प्रसन्न मुद्रा मे बैठा हुआ था। तभी उसकी माता चम्पावती ने आकर मालवणी से दर्पण मांगा। दर्पण देने में विलम्ब को देखकर ढोला की माँ मालवणी पर खीझ पडी और मारवणी की प्रशंसा करने लगी। ढोला ने अपनी छद्म निद्रा में सब कुछ सुन लिया। अब ढोला मारवणी के मिलन के लिए आकुल रहने लगा। मालवणी ने भी ढोला की मन:स्थिति को जाँचकर नलवरगढ़ की सीमाओं पर प्रहरी बिठा दिये। मारवणी के सन्देशवाहक ढोला से न मिल पाये—इसका भी उसने प्रबन्ध कर दिया।

इधर नलवरगढ़ से आए हुए घोड़े के व्यापारी ने पिंगल के खवास को सूचित किया कि ढोला मालवणी के साथ सुखमय वैवाहिक जीवन बिता रहा है। इस समाचार को सुनकर मारवणी भी विरहोद्दीप्त हो गई। अपनी पत्नी द्वारा मारू की विरहस्थिति से अवगत होकर राजा पिंगल् ने अपने पुरोहित के साथ ढोला के पास समाचार पहुंचाने चाहे। किन्तु मारू के सुझाव पर उसने ये समाचार याचकों की सहायता से ढोला तक पहुंचवाये। याचकों द्वारा मारू के विरह को सुनकर ढोला ने उन्हें भाऊ भाट और धन-धान्य सहित विदा किया तथा दो माह में स्वय के पूंगल् पहुचने का भी वचन दिया।

पति को चिंतित देखकर एक दिन मालवणी ने ढोला से उसकी चिन्ता का कारण पूछा। तब ढोला ने मालवाणी के समक्ष मारू से मिलने की इच्छा प्रकट की। अपने प्रयत्नों द्वारा ढोला ने पूंगल को प्रस्थान किया। पूंगल् की सीमा पर ढोला के ऊँट की आवाज को रेबारी ने पहचान लिया। उसने राजा को ढोला के आगमन की सूचना दी। राजा पिंगल् ने कूए पर आकर ढोला का स्वागत किया।

संध्या-समय मारवणी का शृंगार कर सखियों ने मारवणी को प्रियतम ढोला के पास भेजा। सुदीर्घकालीन वियोग के लिए दोनों ने क्षमा-याचना की। पन्द्रह दिन ससुराल में रहने के उपरान्त ढोला ने भाऊ भाट से नलवरगढ़ को प्रस्थान की इच्छा प्रकट की। राजा पिंगल् ने भी धन-धान्य सहित ढोला और मारू को विदा किया। मार्ग मे 'पीवणे सर्प' ने मारू को डस लिया। विरह-दग्ध ढोला ने जैसे ही मारू का चिता में प्रवेश किया, एक योगी-योगिनी वहाँ उपस्थित हुए। उन्होने ढोला को रोका। योगिनी के आग्रह पर योगी ने मारू को सात गोलियों द्वारा पुनर्जीवित किया। ढोला ने प्रसन्न होकर योगिनी को नवसर हार भेंट किया, तथा मारू के साथ नलवरगढ की ओर प्रस्थान किया।

तभी मार्ग में ढोला का परिचय ऊमरा-सूमरा से हुआ। ऊमरा-सूमरा ने उसे मद्यपान के लिए आमन्त्रित किया। पीहर की डूमणी के गीतो को सुनकर मारू इस छल से अवगत हुई। उसने ऊँट को चाबुक मारा। ऊँट तुरन्त भागा। ऊँट को भागता देखकर ढोला भी उसके पीछे दौड़ा। अब मारू ने सारा छद्म ढोला को समझाया, दोनों ऊँट पर बैठकर वहाँ से भाग गए। ऊमरा-सूमरा ने उनका पीछा किया, पर वे असफल ही रहे।

ढोला मारू के साथ तीस दिन में नलवरगढ़ पहुंचा। राजा नल ने दोनों का स्वागत किया और शुभ मुहूर्त्त में उन्हें गृह प्रवेश करवाया।

एक दिन ढोला मारू और मालवणी के साथ रनिवास में बैठा हुआ था। मालवणी ने मारू देश की बुराइयाँ करना आरम्भ किया। तभी ढोला ने मारू से 'मरू देश' की विशेषताएँ पूछी। इस प्रकार दोनों का वैमनस्य दूर कर ढोला सन्तानों का सुख भोगता हुआ मारवणी और मालवणी के साथ सुखमय जीवन बिताने लगा।

कथानक की समीक्षा

ढोला-मारवणी चौपई की कथा लोक मे प्रचलित कथा एवं 'ढोला-मारू रा दूहा' की आत्मा से निकट होने पर भी आवरण में नितान्त भिन्न है। इसमें लम्बी प्रस्तावना के पश्चात् राजा पिंगल् के साथ ऊमा देवड़ी के रहस्ययुक्त विवाह का वर्णन है, जो स्वयं में एक स्वतन्त्र कथा-सी प्रतीत होती है। तत्पश्चात् मारवणी के जन्म, ढोला के जन्म, उनके विवाह एव सुखमय जीवन यापन की विस्तृत कथा है। इस प्रकार कुशललाभ कृत ढोला-मारवणी चौपई की कथा निम्नांकित घटनाओं का संयोजन है—

१. राजा पिंगल् का आखेट-गमन एव भाट से साक्षात्कार,
२. भाट एवं जैसल ख़वास की सहायता से राजा पिंगल् का ऊमा देवड़ी से विवाह,
३. मारवणी एवं ढोला के जन्म की कथा,
४. पुष्कर में नलराजा और पिंगल्राय का मिलन,
५. ढोला-मारवणी का विवाह एवं संयोग में अन्तराल,
६. ढोला-मालवणी का विवाह तथा चम्पावती द्वारा मालवणी की उपेक्षा।
७. घोड़े बेचने वाले सौदागर का पूगल आगमन और मारवणी का विरह,
८. याचकों का नलवरगढ़ पहुँचना एव वहाँ भाऊभाट के द्वारा की गई सहायता,
९. मारवणी सन्देश प्राप्त कर व्यवधानों की उपस्थिति मे ढोला का मारवणी के साथ सयोग,
१०. ढोला-मारवणी सयोग के पश्चात् पीवणा सर्प द्वारा मारू का दंशन एवं योगा-योगिनी द्वारा पुनर्जीवनदान,
११. ऊमरा-सूमरा का छद्मघात,
१२. नलवरगढ़ पहुँचकर सुखमय और गृहस्थ जीवन की परिपूर्ति।

इन घटनाओं में से कुछ घटनाएँ आधिकारिक कथावस्तु की धरोहर हैं, तो शेष प्रासंगिक कथा-वस्तु की। इस कहानी मे ढोला और मारवणी का प्रेम वृतान्त आधि-कारिक कथा-वस्तु है तथा प्रासंगिक कथाओं में हम निम्नांकित घटनाओं को ले सकते हैं:

१. मालवणी की प्रार्थना पर ऊँट का लगड़ा होना,

२. घोड़ों के सौदागर का नलवरगढ़ से पूगल मे आकर समाचार देना,

३. मालवणी द्वारा प्रेरित तोते का ढोला को लौटा लाने का आग्रह करने जाना,

४. ऊमरा-सूमरा के दुष्ट चारणो का षड्यन्त्र,

५. ऊमरा-सूमरा का ढोला को धोखा देकर, मारवणी का हरण करने का दुष्प्रयत्न ।

ये सभी प्रासगिक घटनाएँ किसी न किसी रूप मे सहयोग देकर अथवा सघर्ष उत्पन्न कर कार्य को अन्तिम लक्ष्य की ओर प्रेरित करने मे सहायक सिद्ध हुई हैं। यहाँ कथा का कार्य-रूप परिणाम है—ढोला द्वारा मारवणी का विरह-दुख से उद्धार कर उसे अपने घर लाना। इस परिणाम अथवा लक्ष्य की ओर उक्त सभी प्रासगिक वृतान्तो का सहायक के रूप मे यहाँ प्रवाह है। अत. पाश्चात्य काव्याचार्य अरिस्टोटल की कार्यान्वियन की स्थिति का सफल सयोजन भी इस काव्य मे हुआ है।

अरस्तु ने सिद्धान्तत. काव्य की कथा-वस्तु को तीन प्राकृतिक भागो मे विभक्त किया है—आदि, मध्य और अवसान।[30] किसी भी काव्य मे इन तीनों का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित, एक दूसरे से सश्लिष्ठ और स्वाभाविक रीति से जुड़ा हुआ होना चाहिए तथा कथा-वस्तु का कार्य महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। ढोला-मारवणी चौपई का कार्य महत्त्वपूर्ण है। अपनी विवाहिता के अनेक कष्टो और अवरोधों को दूर कर उसे अपने साथ ले आना—इससे बढ़ कर पवित्र, महत्त्वपूर्ण और लोकशास्त्र-मर्यादानिहित अन्य कौन-सा कार्य होगा? कार्य के अनुरूप नायक नायिका का प्रेम-प्रयास भी महत्त्वशील है।

ढोला-मारवणी चौपई की कथा के आदि भाग मे राजा पिंगल के आखेट-वर्णन से मारवणी द्वारा ढोला को सन्देश भेजने तक की कथा, मध्यभाग मे ढोला की मारवणी विषयक आतुरता से उसके पूगल् के पास पहुँचने तक की कथा तथा अन्तिम भाग मे ढोला के पूंगल पहुँचने से सन्तान सहित सुखमय जीवन-यापन करने की कथाएँ कही जा सकती हैं। ये तीनों भाग परस्पर ग्रन्थित हैं। कथा का परिणाम सुखान्त है।

इसके अनेक प्रकाशित संस्करण उपलब्ध है। घटनाओ की मौलिकता के कारण हमारे अध्ययन की आधार प्रति डॉ० जावलिया के सग्रह की प्रति है।

(३) जिनपालित जिनरक्षित संधि गाथा

यह कुशललाभ की अपभ्रंश काव्य परम्परा से प्रभावित एक लघु रचना है। इसकी हस्तलिखित प्रतिया राजस्थान एव गुजरात के अनेक संग्रहालयो मे सुरक्षित हैं। प्राप्त हस्तलिखित प्रतियो मे निहित छदो की सख्या में अन्तर है। प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर मे सग्रहीत प्रति मे ८५ छन्द है,[31] जबकि महिमा भक्ति भण्डार, बीकानेर की प्रति मे ९१ छन्द।[32] श्री अगरचन्द नाहटा[33] और मोहनलाल दलीचन्द देसाई[34] ने इसमे ८९ गाथाओ के होने का उल्लेख किया है।

रचना-काल

प्राप्त प्रतियों में उल्लिखित रचना तिथियों मे भी असमानता है। प्राच्य विद्या

प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रति में तिथि विषयक "सोलइसइ इकवीसइं वरसइ, श्री सुदि पंचम सुभ दिवसइ" पाठ मिलता है। इसके विपरीत मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने "सोलहसई ईकवीसई वरसि, श्रावण पांचमि शुभ दिवसि" पाठ दिया है। प्रथम पाठ में माह का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। ऐसी स्थिति मे द्वितीय पाठ को सही मानने की सम्भावना की जा सकती है। श्रावण सुदि पंचमी को प्राय: समाज में किसी कार्य का आरम्भ अथवा समापन शुभ माना जाता है। पर प्राप्त सभी प्रतियों में हमे 'वार' नहीं मिला है। अत: दिन के अभाव में तिथि का सही निर्धारण असम्भव है।

कथा

चम्पानगरी के सेठ माकन्दा के जिनपाल और जिनरक्षित नाम के दो पुत्र थे। उसकी पत्नी का नाम भद्दा (भद्रा) था। सेठ ने पुत्रों का विवाह उनकी युवावस्था में ही कर दिया था। एक दिन उन्होंने उपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए व्यापार के लिए प्रस्थान किया। यात्रा के तीसरे दिन वे रयणद्वीप पर उतरे।

समुद्र के किनारे वे अकेले बैठे हुए थे। वहाँ उन्होंने दूर से आती हुई एक स्त्री को देखा। स्त्री ने अपने विकराल रूप द्वारा दोनों भाइयो को अपने वशीभूत कर लिया। तदुपरान्त सोलह श्रृंगारों से सज्जित होकर उनके साथ सम्भोग की इच्छा प्रकट की। अब दोनो भाई इस स्त्री के साथ सुखमय जीवन बिताने लगे।

एक दिन स्त्री ने दोनो भाइयो को दक्षिण वनखण्ड की ओर न जाने का आदेश देकर स्वय कही चली गई। स्त्री के चले जाने के बाद जिज्ञासावश दोनों भाई दक्षिण वन-खण्ड की ओर गए। वहाँ उन्होंने एक व्यक्ति को सूली पर औंधा लटका हुआ पाया। इस व्यक्ति ने भाइयो से सारा वृत्तान्त सुनकर उन्हे इस स्त्री के चगुल से भाग निकलने का उपाय सुझाया। उसने बताया कि वे पूर्व वनखण्ड में निवास करने वाले शैल यक्ष की की आराधना करें जो अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा को वहाँ विचरण करता है। इस क्रिया के पश्चात् दूसरे दिन दोनो भाइयों का शैल यक्ष से साक्षात्कार हुआ। शैल यक्ष उन्हें अपनी पीठ पर बिठाकर चम्पापुरी की ओर बढा। सरोवर के तट पर वह स्त्री उन्हें मिली। स्त्री ने शैल यक्ष के साथ द्वन्द्व किया। इस व्यवहार को देखकर जिनपाल अत्यन्त दु:खी हुआ। वह शैल यक्ष की पीठ पर ही बैठा रहा और सरोवर लाघकर अपने घर चम्पानगरी पहुंच गया। जिनरक्षित स्त्री के प्रेमपाश मे फसकर वहीं रहा।

घर पहुंचकर जिनपाल ने अपने भाई का सारा वृत्तान्त सुनाया। इसी समय वर्धमान ऋषि भी चम्पानगरी पहुचे। जिनपाल उनके पास दीक्षित हो 'जिनपालित जिनरक्षित संध' की स्थापना की।

(४) अगड़दत्त-रास

इस रास की दो हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध है- -प्रथम, प्राच्य विद्या मन्दिर, बड़ोदा[३५] में और द्वितीय भण्डारकर प्राच्य विद्या मन्दिर, पूना[३६] मे। प्रथम प्रति दस पत्रों में लिखी हुई है, जिसका पंचम पत्र लुप्त है। पूना वाली प्रति पूर्ण है। यह १४ पत्रों

में लिखित है। लिपिकाल की दृष्टि से भी यह प्राचीन है। इसका लिपिकाल संवत् १६५३ वि० है, जबकि बड़ोदा वाली प्रति का लिपिकाल वि० सं १८१५। इस प्रकार द्वितीय प्रति का लिपिकाल इसके रचनाकाल से अधिक निकट है। दोनों प्रतियों में छन्दों की संख्या समान है किन्तु वर्तनी की दृष्टि से भिन्नता है। प्रथम प्रति मे वर्तनी का नवीन रूप ए, ऐ, ओ, औ मिलती हैं। इसके विपरीत द्वितीय प्रति से मध्यकालीन रूप इ अइ, अउ आदि रूप। अतः अध्ययन की दृष्टि से पूना वाली प्रति (द्वितीय प्रति) अधिक उपयोगी है।

रचना-काल

ग्रन्थ की पुष्पिका के आधार पर श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने इसकी रचना तिथि वि० स० १६२५ कार्तिक सुदि १५ गुरुवार मानी है।[३७] बड़ोदा वाली प्रति में रचना तिथि से सम्बन्धित पंक्ति का पाठ इस प्रकार है—

संवत बाण ख सिणगार काति सुदि पुनिम गोरवार।

इस पक्ति के आधार पर इसका रचना सवत् १६०५ कार्तिक सुदि पूनम गुरुवार निकलता है।[३८] किन्तु यह तिथि भारतीय तिथि-पत्रक से मेल नही खाती। इसके विपरीत पूना वाली प्रति मे श्री देसाई द्वारा वर्णित तिथि ही लिखी मिलती है। जो तिथि-पत्रक के अनुरूप है। अतः अगड़दत्त रास की रचना कवि ने वि० स० १६२५ कार्तिक शुक्ला १५ (पूर्णिमा) गुरुवार को ही की थी।[३९] यही इसका प्रामाणिक रचनाकाल कहा जा सकता है।

कथा

वसन्तपुर के राजा भीमसेन के पास सूरसेन नाम का एक बलशाली सामन्त था। सूरसेन के पुत्र का नाम अगड़दत्त था। सूरसेन (शूरसेन) के वीरत्व को सुनकर एक सुभट वहाँ आया। दोनों में युद्ध हुआ। सूरसेन युद्ध में मारा गया। सुभट के शौर्य पर प्रसन्न होकर भीमसेन ने उसे अपना सेनापति नियुक्त किया और उसका नाम अभगसेन रखा।

पति की मृत्यु के उपरान्त अगड़दत्त की माता को निरन्तर होता हुआ अपना अपमान असह्य हो गया। उसने पिता की मृत्यु का समस्त वृत्तान्त पुत्र अगड़दत्त को कह सुनाया। साथ ही उसे अध्ययन के लिए चम्पापुरी के पण्डित सोमदत्त के पास भेज दिया।

एक दिन कुँवर अगडदत्त आश्रम के एक वृक्ष की छाया मे सो रहा था। तभी नगर व्यवहारी की रूपवान कन्या मदनमजरी गवाक्ष (झरोखा) से वृक्ष की डालियों पर होती हुई उसके पास आई और उससे अपना प्रेम-निवेदन किया। मदनमजरी के आग्रह पर कुँवर ने उसे अध्ययन की समाप्ति पर उसके साथ विवाह करने का वचन दे दिया। अगड़दत्त के अध्ययन की समाप्ति पर सोमदत्त उसे राजा के पास परिचय के लिए लाया। इसी समय एक महाजन भी वहाँ आया। उसने राजा को नगर में हो रही चोरियों के

बारे में शिकायत की। अगड़दत्त ने इस चोर को ढूंढ लाने का बीड़ा उठाया।

६ दिन के अथक परिश्रम के बाद अगड़दत्त सातवे दिन संध्या के समय एक वृक्ष के नीचे चिंतित मना: बैठा था। तभी उसने एक योगी को आते हुए देखा। योगी के साथ हुई बातचीत से कुंवर ने जांच लिया कि वही योगी चोर है। परस्पर परिचय के उपरान्त अब दोनों चोरी के लिए निकले। सागर सेवी व्यवहारी के घर डाका डालकर जब वे लौटे तो योगी ने कुंवर को विश्राम के लिए भेज दिया। स्वय तलवार लेकर वृक्ष के नीचे सो रहे मजदूरों की हत्या करने लगा। कुंवर योगी के इस व्यवहार को चुपचाप देख रहा था। योगी की बर्बरता को देखकर उसने योगी पर प्रहार किया। मरने से पूर्व योगी ने कुंवर को अपना खजाना बताया। उसने खजाने में पड़ी हुई तलवार को अपनी बहन को दे देने की तथा उसके साथ अगड़दत्त को विवाह कर लेने की इच्छा भी प्रकट की। बहन की यही प्रतिज्ञा थी कि जो उसके भाई (योगी) का वध करेगा वह उसी के साथ विवाह करेगी।

योगी (चोर) की इच्छानुसार अगड़दत्त उसकी बहन वीरमती के पास गया। वीरमती अपने बधु की हत्या का बदला लेने की इच्छा से उसे पलग पर बिठाकर ऊपर गई। कुंवर नारी-चरित्र से अवगत था, अत: वह एक ओर हट गया। जब वह शिला गिराकर नीचे पहुँची तो यह अगड़दत्त को जीवित देखकर स्तभित रह गई। उसने पुन: करवाल से कुँवर पर प्रहार किया। कुँवर वीरमती और खजाने को लेकर राजा के पास उपस्थित हुआ।

मदनमजरी से विवाह करके तथा राजा से विदा होकर जब कुँवर सेना सहित वसन्तपुर की ओर बढा तो वह मार्ग में भटक गया। वहाँ उसे मार्ग मे आने वाले चार संकटो (नदी, केसरी सिंह, सर्प और चोर) की सूचना मिली। तीन आपत्तियों का सामना करते हुए जब उसने पूरा जगल पार कर लिया तो आगे बढ़ने पर उसे एक सुन्दर सरोवर दिखाई दिया। यहाँ अर्जुन चोर का गिरोह रहता था। अपने वैरी को देखकर अर्जुन के दो भाइयो ने अगड़दत्त का अवरोध किया। उन्होने अगड़दत्त से मदनमजरी का अपहरण करना चाहा, किन्तु कुँवर ने प्रहार से उन्हे दूर कर दिया।

वसन्तपुर के समीप ही मार्ग मे कुंवर के परिजनों ने उनका स्वागत किया। कुछ दिनों तक माता-पिता के साथ रह लेने के उपरान्त उन्हे वसन्तपुर के लिए विदा किया और स्वय मदनमजरी के साथ वही रुक गया। इसी बीच आकाश में उड़ते हुए विद्याधर ने एक नारी को परपुरुष के साथ सम्भोग रत देखा। विद्याधर उस स्त्री का घात करना चाहता था, किन्तु उसी समय एक सर्प ने उसे डर लिया। पृथ्वी पर उतरने पर विद्याधर का अगडदत्त से परिचय हुआ। वह भाग्य को कोसता, विलाप करता हुआ सर्प दंशित नारी को ला रहा था। जब अड़गदत्त मदनमजरी के साथ अग्नि प्रवेश करने लगा तो विद्याधर ने 'नारी के लिए मरना व्यर्थ है' कह कर उसे रोका। अगड़दत्त ने उससे मदन मजरी को जीवित करने की प्रार्थना की।

अगड़दत्त की अनुनय-विनय पर विद्याधर ने मदनमंजरी को पुनर्जीवित कर दिया और घटित-घटना भी उसे सुना दी। विद्याधर के चले जाने के पश्चात् मदनमजरी ने कुंवर से शेष रात सामने वाले 'देहूरे' में बिताने की इच्छा प्रकट की। देहरे में पहुँचकर

मदनमंजरी ने कुँवर को प्रकाश के लिए अग्नि लाने भेज दिया। वहीं उसका साक्षात्कार तीन चोरों से हुआ। उसने उनके सामने अपने पति को मारकर उनके साथ विवाह की इच्छा प्रकट की। चोरो को पहले तो शंका हुई, किन्तु बाद में उन्होंने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। तभी देहरे मे कुँवर ने प्रवेश किया। वह कुँवरी (मदनमंजरी) को खड़ग देकर अग्नि जलाने लगा। तभी मदनमजरी ने उस पर खड़ग का प्रहार किया। खड़ग कुँवर से दूर जा गिरा। कुमार के पूछने पर उसने बताया कि खड़ग की उल्टी पकड़ से वह गिर पड़ा था।

चोरों ने इस वृत्तान्त को देखा। मन में वे सोचने लगे ससार कैसा स्वार्थी है? पत्नी भी अपने पति की हत्या कर देती है। इस घटना ने उन्हें विरागी बना दिया। वे मार्ग में गुरु से दीक्षित हुए।

एक दिन अगडदत्त अपने प्रधान के साथ भ्रमण करता हुआ उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ भुजगम चोर अपने साथियों सहित तपस्या कर रहा था। अगडदत्त ने उससे वैराग्य का कारण पूछा। तब उसने बताया कि यह अगडदत्त का ही उपकार है।

यति से अपनी ही कहानी को सुनकर कुँवर अत्यन्त दुःखी हुआ। उसने समझ लिया कि नारी-चरित्र अति कुटिल है, उस पर विश्वास नही किया जा सकता। तत्पश्चात् वह भुजंगम चोर के पास दीक्षित हो गया और नवम् गवाक्ष को प्राप्त कर शिवपुरी को पहुँचा।

कथानक की समीक्षा

अगड़दत्त की ललित प्रवृत्ति द्वारा नारी के विश्वासघाती चरित्र का कथन ही कवि का इस कृति मे मूल उद्देश्य है। यही इसकी आधिकारिक कथावस्तु है। इस उद्देश्य की पूर्ति-निमित्त कवि ने अनेक प्रासगिक स्थलों की अवतारणा की है, जिन्होंने मूल कथा को प्राण दिए है। ये प्रमुख प्रासगिक कथाएं निम्नलिखित हैं—

१. शूरसेन के वीरत्व का बखान सुनकर सुभट का वसन्तपुर आना और शूरसेन के साथ उसका युद्ध,
२. शूरसेन की मृत्यु के पश्चात् सुभट को सम्मानसहित राजा का सेनापति का पद प्राप्त होना एवं राजा द्वारा उसे अभगसेन नाम देना,
३. अगड़दत्त का चम्पापुरी को अध्ययनार्थ जाना,
४. मदनमजरी का प्रणय-निवेदन तथा सोमदत्त द्वारा अगड़दत्त का चम्पापुरी के राजा के साथ साक्षात्कार,
५. महाजन द्वारा राजा को चोरी की शिकायत और कुंवर द्वारा बीड़ा उठाना,
६. अगड़दत्त द्वारा चोर को ढूंढ लाना तथा मदनमजरी के साथ उसका विवाह,
७. अगड़दत्त का मदनमजरी के साथ वसन्तपुर प्रस्थान एव मार्ग की कठिनाइयाँ,
८. मदनमजरी का पर पुरुष के साथ सम्भोग तथा विद्याधर का आगमन,
९. देहरे में मदनमंजरी और चोरो का वार्तालाप,
१०. मदनमजरी द्वारा अगड़दत्त पर खड़ग-प्रहार एव चोरो का वैराग्य ग्रहण करना,

११. भ्रमण करते हुए अगड़दत्त का मुनि भुजगम चोर के साथ साक्षात्कार एवं अगड़दत्त का दीक्षा लेना।

इन विभिन्न घटनाओं का सकुल ही अगड़दत्त-रास की कथा है। कथा में कलात्मकता एवं रोचकता का सामंजस्य बना रहा है। चूंकि कथा जैन-चरित से सम्बन्धित है, अतः जैन शैली के अनुसार इसका अन्त शम प्रधान है।

कृति का कथानक अत्यन्त सक्षिप्त और सरल है। रोचकता का इसमे पूर्ण निर्वाह हुआ है। इस रोचकता के मूल मे है—कथा मे आए निम्नलिखित मार्मिक स्थल—

१. अभगसेन एव शूरसेन का द्वन्द्व—युद्ध तथा शूरसेन की पत्नी का पश्चात्ताप,
२. मदन मजरी का अगड़दत्त के प्रति प्रणय-निवेदन,
३. अगड़दत्त द्वारा चोर को पकड़ने की विधि का प्रसग,
४. वसन्ततुर को लौटते समय मार्ग की कठिनाइयाँ, और
५. देहरे मे मदन मजरी एवं चोरों का प्रणय-प्रसग एव चोरो का सन्यास लेना।

रचना का आदि और अन्त[४०]

आदि

दूहा

पास जिणेसर पय नमी, समरी सरसति देवि।
अभयधर्म अवझाय गुरु, पयपकज प्रणमेवि ॥१
वीतराग मुखि वदइ, धर्मह च्यारि प्रकार।
दान सील तप भावना, विविध भेद विस्तार ॥२
दान सुजस सपत्ति दीयइ, सीलइ सवि सुख होई।
उग्र तपइं त्रूटइ अशुभ, सहित भाव जउ सोइ ॥३

अन्त

तिहां थी चवी नई उत्तम ठामि, उत्तम कुलि सयम अभिराम।
घणा जीव प्रतिबोधि करी, अनुक्रमि पामेसी शिवपुरी ॥३१७
सवत बाण पक्ष सिणगार, काती सुदि पूनिमि गुरुवार।
श्री वीरभपुर नयर मझारि, करी चउपई मति अणुसारि ॥३१८
श्री जिनचंद्र सूरि गुरुराय, गुरु श्री अभयधर्म उवझाय।
वाचक कुशललाभ इम भणइ, सुख संपत्ति थाइ आपणइ ॥३१९

(५) तेजसार रास चौपई

जैन-मुनियों के तेजसार-सम्बन्धी काल्पनिक एव जादुई कथानक के आधार पर संगुम्फित कुशललाभ की इस रचना की तीन-तीन हस्तलिखित प्रतियाँ क्रमशः राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर[४१] और हेमचन्द्राचार्य ज्ञान-भण्डार पाटण[४२] में प्राप्य हैं तथा दो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राच्य विद्या मन्दिर, बड़ौदा[४३] एव एक-एक हस्तलिखित प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की बीकानेर,[४४] चित्तौड़गढ़[४५] शाखाओं में,

अभयजैन ग्रन्थालय, बीकानेर[४६] और एल० डी० इंस्टीट्यूट आफ इण्डोलाजी, अहमदाबाद[४७], में उपलब्ध है। श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने भी कुछ हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख किया है,[४८] किन्तु सम्पर्कोपरान्त यह पता चला कि इनमें से कुछ संग्रहालय नष्ट हो चुके हैं तथा शेष में इसकी प्रतियाँ अब उपलब्ध नहीं हैं।

प्राप्त प्रतियों में पाठ-भेद बहुत है, किन्तु कथा समान है। छन्दों की संख्या ४०१ से ४१५ तक मिलती है। उक्त प्रतियों मे प्राचीनतम प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में संवत् १७६४ की वर्तमान है।[४९] इस प्रति की लिपि स्वच्छ और सुवाच्य है। प्रति का आकार ६"×४" है। एक पृष्ठ में आठ से दस शब्द हैं और कुल छन्द ४०६।

रचना-काल

उक्त सभी प्रतियों में कृति की रचना-तिथि एव दिन का उल्लेख नहीं है। केवल रचना-संवत् दिया हुआ है। प्राचीनतम प्रति के अतिरिक्त शेष प्रतियो मे यह सवत् १६२४ उल्लिखित है। प्राचीनतम प्रति के अनुसार कृति का रचना-सवत् १६३४ निर्धारित होता है।[५०] श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई, श्री अगरचन्द नाहटा, डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, डॉ० प्रेमसागर जैन आदि अन्वेषक इसका रचना-सवत् १६२४ ही स्वीकारते हैं। वस्तुतः वार एवं तिथि के अभाव मे इनमे से किसी को भी सहज मान्यता नही दी जा सकती। यों रचनाकाल की दृष्टि से वि० स० १६३४ की अपेक्षा वि० सं० १६२४ ही उचित है। यह संवत् कवि की अन्य रचनाओ के क्रम में भी ठीक बैठता है। वि० स० १६३४ लिपिकार का प्रमाद ही लगता है। यह रचना आद्यन्त अप्रकाशित है।

कथा

बनारस के राजा वीरसेन की पटरानी पद्मावती ने एक अर्द्धरात्रि को दीपक के समान तेजोमय पुत्र-प्राप्ति का स्वप्न देखा। प्रात.काल उसने इस स्वप्न को राजा से कहा। स्वप्न निमेषियों ने बताया कि रानी तेजस्वी पुत्र को जन्म देगी। उचित अवधि बीतने पर पटरानी को पुत्र की प्राप्ति हुई। राजा ने पुत्र के गुणों के अनुरूप हो उसका नाम तेजसार रखा।

सात वर्ष की आयु मे तेजसार की माता का देहान्त हो गया। राजा वीरसेन ने दूसरा विवाह किया। नयी रानी की कोख से बिक्रमसिंह नाम का पुत्र हुआ। अब विमाता के प्रयत्नो से पिता का तेजसार के प्रति व्यवहार भी कटु होने लगा। परिणामतः तेजसार अमर खड़ग लेकर त्रबसेन की नगरी पहुँचा। यहाँ उसने गंगदत्त ओझा के आश्रम में आश्रय लिया। उसकी पत्नी दुष्टा सिकोत्तरी थी।

एक दिवस तेजसार सरोवर तट से लौटते समय मार्ग भूल गया। वहाँ उसे सात दिनों से भूखा एक राक्षस मिला। राक्षस के आग्रह पर वह उसकी पीठ पर बैठकर उसके घर पहुँचा। राक्षस पास के सरोवर में पैर धोने गया। तेजसार ने अवसर का लाभ उठाया। वह पूर्व दिशा की ओर भागा। भागते हुए तेजसार को मार्ग में एक योगी मिला।

तेजसार की आपत्ति को सुनकर उसने तेजसार को एक अभिमन्त्रित दण्ड दिया। उस दण्ड की मार से उसने राक्षस को चित्त कर दिया। दण्ड से अपनी दुर्गती देखकर राक्षस ने भी कुंवर को दो विद्याएँ देकर अभयदान प्राप्त किया।

अगले दिन कुंवर तेजसार ने दण्ड के प्रभाव की परीक्षा गंगदत्त ओझा की पत्नी के जादुई कार्य-कलापों पर करके अपने सहपाठियों की जान बचाई। सिकोत्तरी ने अपनी इस हार का बदला कृष्णपक्ष की चतुर्दशी रविवार को लेने की योजना बनाई। इस बार तेजसार ने राक्षस द्वारा दी गई विद्याओं का उपयोग कर सिकोत्तरी की योजना को विफल कर दिया।

मार्ग से आश्रम की ओर आते हुए तेजसार को ऐसी ही अनेक निजन्धरी घटनाओं का सामना करना पड़ा। अनेक राजकुमारियों की उसने रक्षा की और उनसे विवाह किया। अटवी में जब वह एणामुखी से विवाह करके बैठा ही था, तभी उसकी माता व्यंतरी रूप में उससे मिली। उसके आग्रह पर उसने समरसेन से युद्ध किया। समरसेन की मामी (पटरानी) की इच्छानुरूप तेजसार ने अवन्तीपुरी मे अपना राज्य स्थापित किया। चम्पापुरी से भी उसने सभी रानियों को वहाँ बुलवा लिया।

एक दिन तेजसार अपने दीवान के साथ बैठा हुआ था। तभी उसके पिता के प्रधानों ने आकर पिता की उससे मिलने की इच्छा को प्रकट किया। अपने मुहता (मेहता) को राज्य सौपकर समस्त परिवार और सेना के साथ वह पिता के पास पहुँचा। शुभ दिन देखकर पिता ने तेजसार को राज्यासीन किया।

इसी समय मुनियों ने वहाँ समवसरण किया। पिता के द्वारा तीर्थंकर के महात्म्य का श्रवण कर अपनी आठो रानियों के पुत्रों को उनका भाग सौंपकर वह भी श्रावक बन गया।

प्रवचन मे उसने अपने गुरु से एक दिन अपने पूर्वजन्म की कथा सुननी चाही। प्रभु ने उसकी इच्छानुसार उसके पूर्वजन्म की कथा उसे सुना दी। अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनकर, संसार को अस्थिर मानकर वह अपने निवास स्थान पर आया। समस्त प्रजा को एकत्र कर श्रीमती नामक रानी के पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कर वह पूर्णतः दीक्षित हो गया। महाविदेह क्षेत्र में उत्तम श्रावक की श्रेणी प्राप्त करके उसने स्वर्ग को प्राप्त किया।

कथानक की समीक्षा

तेजसार के बाहुबल की स्थापना करते हुए उसके श्रावक रूप की प्रतिष्ठा करना ही विवेच्य कृति का मूल उद्देश्य है। तेजसार के जन्म एवं पूर्वजन्म के वृत्तान्त द्वारा कवि ने दीप-पूजन के महात्म्य को भी बताया है। सम्भवतः इसी आधार पर मोहनलाल दलीचन्द देसाई,[५१] प्रेम-सागर[५२] आदि विद्वानों ने इसे दीप-पूजन-सम्बन्धी काव्य कहा है। कुशललाभ ने इस संक्षिप्त कथानक को अनेक घात-प्रतिघातो के साथ गूँथा है। पाठक विभिन्न विद्याधरियों एव राजाओं की अवान्तर कथाओं मे कभी-कभी इतना भटक जाता है कि मूल कथानक को प्राप्त करने के लिए उसे पुनः कथा के आदि भाग की ओर आना

पड़ता है। विजयश्री के अपहरण के पश्चात् उत्तर दिशा की ओर जाने पर श्रीमती के साथ तेजसार का साक्षात्कार, स्वप्न के पश्चात् राजा तेजसार का अटवी में विद्याधरी द्वारा लाया जाना इत्यादि ऐसे ही स्थल हैं। कथानक की ऐसी जटिलता कवि की अन्य कृतियों मे दृष्टिगत नही होती। वस्तुत: यह दोष कवि का न होकर कवि की कृति के उद्देश्य का है। कृति में जैन-आचार-सहिताओ के आधार पर तेजसार की प्रणय-कथाओं से उसके बाहुबल को पुष्ट करते हुए जैन-धर्म में दीक्षा के महत्त्व को स्पष्ट करना ही कुशललाभ का मूल लक्ष्य था। ऐसी स्थिति में कुछ अलौकिक पात्रों के चमत्कारों को लेना अनिवार्य हो गया। अत: कथा मे उत्पन्न उक्त जटिलताएँ आलोच्य कथा के सगठन का कौशल बन जाती है। तेजसार के पूर्वजन्म की कथा आरम्भ मे न कहकर अन्त में प्रभु जिनेश्वर जी के मुख से कहलवाकर कवि ने अपने उद्देश्य की पूर्ति की है, इस प्रयोग ने कथानक को शैलीगत नवीनता भी प्रदान की है। सम्पूर्ण कृति इस नवीनता की पोषिका है। विजयश्री भी अपना परिचय बाद मे देती है और नायिका एणावती का परिचय भी उसकी माता राजा तेजसार को अत्यन्त नाटकीय विधि से कथा के अन्त मे ही देती है, जबकि उसका प्रथम-दर्शन राजकुमार तेजसार को आरम्भ में विजयश्री के साथ ही हो जाता है।

कथा का आदि, मध्य और अन्त सामान्यत: परस्पर सुसंबद्ध एवं शृखलाबद्ध है। सम्पूर्ण कथा इन तीन भागों मे विभक्त है—

१. राजा वीरसेन एव रानी पद्मावती द्वारा पुत्र प्राप्ति के प्रयत्नो, दीप-प्रज्वलन से तेजसार की प्राप्ति एवं माता की मृत्यु तक कथा का प्रथम चरण अथवा आरम्भ है,
२. वीरसेन के द्वितीय विवाह की घटना से तेजसार का अवन्तीपुर के राजा बनने तक का वृत्तान्त कथा का विकास चरण अथवा मध्य भाग है. और
३ तेजसार के पिता के सदेशवाहक के अवन्तीपुर आगमन से तेजसार के सन्यास ग्रहण तक की कथा कहानी का अन्तिम भाग है।

यहाँ तेजसार के वीरोचित कार्यकलापों द्वारा अन्त मे संसार को अस्थिर मानकर जैन-सहिताओ मे उसका दीक्षित हो जाना ही इस कथा का आधिकारिक कथानक है। इस कथा को पुष्ट करने वाली अन्य प्रासगिक अथवा आनुषगिक कथावृत्त निम्नलिखित है—

१. गगदत्त ओझा के पास कुंवर तेजसार का शरण लेना तथा उसकी पत्नी के जादुई चमत्कारों से परिचित होना,
२. बालक तेजसार द्वारा मार्ग का भूल जाना और मार्ग में राक्षस के साथ युद्धादि,
३. योगी एव राक्षस की विद्याओ से सिकोत्तरी (पडिताइन) की हत्या करना एव मार्ग मे विजयश्री की रक्षा करना,
४. सोती हुई विजयश्री को छोड़कर मृग-समूह के साथ रमण करती हुई सुन्दरी का दर्शन एव तेजसार का पुन· सरोवर तट पर आगमन,
५. सरोवर तट पर विजयश्री को न प्राप्त करने पर तेजसार का विलाप एवं उसका

उत्तर दिशा की अटवी पर पाँचों विद्याधरियों से विवाह,
६. चम्पानगरी के राजा की कन्या पुष्पावती की तेजसार द्वारा रक्षा तथा वहाँ का उत्तराधिकार प्राप्त होना,
७. अवन्तीपुर की पटरानी विद्याधरी द्वारा सोते हुए राजा तेजसार का अटवी पर आह्वान तथा मृग-समूह के साथ परिचित बाला एणामुखी की विवाह-वार्ता,
८. तेजसार की माता के समक्ष एणामुखी और तेजसार का विवाह एवं समरसेन के साथ तेजसार का युद्ध,
९. तेजसार के पिता के दूतों का आगमन तथा उसका बनारस गमन तथा सिंहासनधीन होना,
१०. पिता के साथ तेजसार का स्वामी तीर्थंकर के दर्शनार्थ जाना एवं आठों पुत्रों को राज्य सौंपकर श्रावक बन जाना,
११. तेजसार द्वारा गुरु से अपने पूर्वजन्म की कथा सुनकर ससार-त्याग एवं शिवपुरी-गमन ।

रचना का आदि और अन्त[५३]

आदि

श्री सिद्धारथ कुल तिलउ, चरम जिणेसर वीर।
पाय जुगल प्रणमी करी, सोवन वर्ण शरीर ।।१
जिनवर सइ मुखि उपदि सइ, भविक लोक सुख काल ।
जिन प्रतिमा······सारिषी, भाषी श्री जिनराज ।।२
प्रतिमा जिन नी जिन परह, आराहइ एकत।
इह भवि पर भवि सुखलहै, इम भाषइ अरिहंत ।।३

अन्त

गिरुवो तेजसार अणागार, नाम अपदां भव निस्तार।
तेह तणउ एहपउ विरतंत, जिम आगलि बोल्यो अरिहंत ।।४०७
श्री खरतर गच्छि सहगुरु राय, गुर श्री अभयधर्म उवझाय ।
सोल सहस चउतीसइ सार, श्री वीरमपुर नयर मझार ।।४०८
अधिकारइ जिन पूजा तणै, वाचक कुशललाभ इम भणै।
जे वाचइ नइ जे सांभलै, तेहना सर्व मनोरथ फलै ।।४०९

(६) भीमसेन हंसराज चौपई

कुशललाभ द्वारा प्रणीत 'भीमसेन हंसराज चौपई' को इसके लिपिकर्त्ता ने भावना-विषयक काव्य कहा है।[५४] अभी तक इसकी एक ही हस्तलिखित प्रति प्राप्त हो सकी है, जो एल० डी० इस्टीट्यूट आफ इडालोजी, अहमदाबाद में संग्रहीत है।[५५] प्रति १६ पत्रों में लिखी हुई है, जिसका आकार १०" × ४½" का है। लिपि लगभग सुवाच्य है। कुछ अक्षर अस्पष्ट लिखे हुए हैं।

रचना-काल

कृति के रचनाकाल-सम्बन्धी निम्नलिखित पंक्तियाँ मिलती हैं—

संवत लोक वेद सिणगार, वर्षा रितु जलधर विस्तार।
श्रावण मास सुकल सप्तमी, रच्यउ रायश्री गुरुपय नमी ।।[४६]

इन पंक्तियों के आधार पर लोक = ३, वेद = ४, सिणगार = १६ अर्थात् संवत् १६४३ श्रावण शुक्ला सप्तमी इसकी रचना-तिथि निर्धारित होती है। श्री अगरचन्द नाहटा ने लोक = ७ मानकर इसकी रचना-तिथि सबत् १६४७ श्रावण सुदि ७ मानी है।[४७] वार के अभाव मे इन दोनो मे से कौन-सी तिथि सही है—कहा नहीं जा सकता। वैसे 'लोक' शब्द तीन के अर्थ मे ही प्रमुख रूप से प्रयुक्त होता है। अतः रचना-सवत् वि० सं० १६४७ की अपेक्षा १६४३ को मानना अधिक सगत है।

कथा

किसी परदेसी (पर्यटक) की आलोचना पर श्रीपुर के वैभवशाली राजा भीमसेन ने नन्दनवन नाम से अपने नगर में एक बगीचे का निर्माण करवाया। वसन्त ऋतु के आगमन पर राजा के मित्र (आमात्य सुमति के छोटे पुत्र) हितसागर ने बगीचे मे लगे हुए वृक्षो और उनके महत्त्व से राजा को परिचित किया।

उधर पूर्वदेश में स्थित विशालापुरी का राजा रिणमल अपनी पत्नी (कमलावती) से पुत्री मदन मंजरी के विवाह सम्बन्धी चर्चा कर रहा था, तभी उससे जगन्नाथ की यात्रा से लौटा हुआ एक संन्यासी मिला। उसके पास पोपट नाम का मानवाणी बोलने वाला तोता था। पोपट ने श्रेष्ठ वर के रूप मे राजा के सामने भीमसेन के नाम का प्रस्ताव किया। कमलावती इतनी दूर रिश्ता करने के पक्ष मे नहीं थी। मदन मंजरी भी सारा वार्तालाप सुन रही थी। उसने पिता के समक्ष भीमसेन के साथ ही उसका विवाह करवाने का आग्रह किया। किन्तु पिता ने उसका सम्बन्ध भीमसेन के साथ न कर सिंहल के राजा सगरराय के साथ निश्चित कर दिया।

मदनमजरी ने सन्यासी से तोता ले लिया। उसने अपने प्रेम-संदेश के साथ तोते को भीमसेन के पास भेजा। मित्र हितसागर से सलाह करके उसने तोते के साथ सदेश भिजवाया कि वह शीघ्र ही सगरराय से युद्ध करके उसके साथ पाणि-ग्रहण करेगा। भीमसेन ने अपनी गुप्त योजना भी तोते को बता दी कि मदन मंजरी उससे वन मे आकर मिले।

विवाह के दिन मदनमजरी त्रिपुरा देवी की मनौती के बहाने वन की ओर गयी। प्रतीक्षा के उपरान्त मन्दिर में जैसे ही वह अग्नि प्रवेश को तैयार हुई, संन्यासी वेश में हितसागर ने उसकी रक्षा की और बाद में उसने भीमसेन से मदन मंजरी को मिलवाया।

मदनमजरी के अभाव में रिणकेसरी ने सगरराय का विवाह अपनी भतीजी के साथ कर दिया। बारात की विदाई पर सगरराय ने मार्ग मे भीमसेन से युद्ध किया, जिसमें भीमसेन विजयी हुआ।

युद्ध के उपरान्त जब मदनमंजरी निश्चित स्थान पर नहीं मिली तो भीमसेन ने जल मरने की प्रतिज्ञा की। उधर मदनमजरी भी भीमसेन के विरह मे व्याकुल थी। इसी अवस्था मे विषैला फल खा लेने से वह मूर्छित हो गयी। तभी तापस के साथ भीमसेन वहाँ पहुँचा। भीमसेन की वाणी सुनते ही वह चेतन हो उठी। पत्नी-पति और तापसी से विदा लेकर दोनों अपने देश पहुँचे जहाँ सभी ने उनका स्वागत किया।

पक्षियों के कलरव से एक मध्य रात्रि को दोनों की निद्रा भंग हो गयी। उन्होंने हंस-हंसनी द्वारा उनकी प्रशंसा सुनी। तभी हंस ने हंसनी को कहा कि वह आज के २१वें दिन बाद मरेगा और मदनमंजरी के गर्भ मे उसका अवतार होगा।

निश्चित समय पर मदनमंजरी ने गर्भ धारण किया। एक दिन वर्षा ऋतु में जल विहार के लिए जाते हुए वे जगल में पानी पीने के लिए रुके। पानी पीकर दोनों वृक्ष की ऊँची शाखा पर विश्राम करने लगे। मध्य रात्रि में जब रानी की निद्रा भग हुई तो उसने वन की एक दिशा में अनेक प्रज्वलित दीप देखे। प्रातः दोनों उस दिशा की ओर गए। वहाँ उनके साथ अनेक रोमांचित घटनाएँ घटित हुईं। यहीं पर मदनमंजरी के गर्भ से हंस ने पुत्र रूप मे जन्म लिया। हंस के आधार पर इसका नाम हंसराज रखा गया।

श्रेष्ठ घोड़ो पर हंसराज अभ्यास करने लगा। एक दिन परवश होकर वह अटवी में गिर पड़ा। बहुत देर तक कुमार को न आया देखकर भीमसेन स्वयं सेना के साथ उसकी खोज में निकला। एक पहाड़ के पास कुमार अपने पिता को मिला। हंसराज से उसके साहस की घटना को सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। कुछ ही देर बाद हंसराज को नदी में कूदती हुई एक स्त्री दिखायी दी। वह उस ओर गया। उसने उसे बाहर निकाला। उसके सभी आभूषणों को उतारकर वह अपने शिविर मे पहुँचा। तब तक सभी सैनिक जाग चुके थे।

स्वदेश लौटकर भीमसेन ने हसराज को राजा बनाया। अवन्तीपुरी के राजा सिह की पुत्री रूपमती के साथ उसका विवाह हुआ। मार्ग में मिले ऋषियों के धर्माचरण का वृतान्त कुमार ने अपने पिता भीमसेन को सुनाया। वह ऋषि श्री राम से दीक्षित हो गया। हसराज भी श्रावक बनकर संयम-नियम के साथ राज्य का संचालन करने लगा। अन्त में अपने बड़े पुत्र जयभद्र को शासन सौपकर स्वय भी साधु बन गया। मृत्यु के पश्चात् वह नवम् गणधर श्री वरण हुआ जिसके भाई का नाम अचलभ्रात था।

कथानक समीक्षा

एक अच्छे कथानक की कसौटी उसके आदि, मध्य और अन्त का सुन्दर समन्वय है। इस दृष्टि से आलोच्य रचना के कथानक के निम्नांकित तीन चरण है, जो परस्पर सम्बद्ध हैं—

प्रथम चरण—प्रारम्भ से लेकर हस-हंसनी-वार्तालाप तक,

द्वितीय चरण—मदनमंजरी के गर्भधारण से हंसराज के साहसिक कार्यों की घटनाओं तक,

तृतीय चरण—रूपमती के साथ हंसराज के विवाह से उसके निर्वाण तक।

भीमसेन के गौरव और मदनमंजरी के प्रेम की सात्त्विकता का वर्णन करना ही इस कृति की आधिकारिक कथा वस्तु है। इस कथानक की अन्य सहायक अथवा प्रासगिक कथाएँ निम्नलिखित हैं—

१. पोपट (तोते) द्वारा रिणकेसरी के समक्ष भीमसेन का गुण-कथन एवं मदनमंजरी का उसके साथ विवाह का दृढ़ सकल्प,
२. पोपट द्वारा भीमसेन के समक्ष मदनमजरी का प्रेम-निवेदन तथा सगरराय के साथ भीमसेन का युद्ध,
३. मार्ग मे भीमसेन और मदनमजरी का आकस्मिक विछोह तथा मिलन,
४. नन्दनवन मे अर्द्धरात्रि को हस-हंसिनी का वार्तालाप तथा मदनमंजरी का गर्भ धारण,
५. मार्ग मे धार के राजा का तपस्वी रूप मे साक्षात्कार और भीमसेन का उसकी कन्या काकयती के साथ विवाह,
६. मदनमजरी द्वारा अमर फल की इच्छा करना तथा व्यतरी द्वारा हसिनी के साथ अमर फल लाना,
७. हसराज का जन्म तथा हसिनी के साथ सुखमय जीवन व्यतीत करना,
८. वन मे हंसराज द्वारा सिंह का सहार एव नारदपुरी की राजकुमारी के मृत शरीर को नदी से निकालना,
९. हंसराज का अवन्तीपुरी की राजकुमारी रूपमती के साथ विवाह तथा मार्ग मे ऋषि राम से धर्माचरण-ग्रहण करना,
१०. ऋषि राम का श्रीपुर मे आगमन और भीमसेन का संन्यास ग्रहण,
११. बडे पुत्र जयभद्र को राज्य सौपकर हसराज का सन्यासी बनना तथा उसके निर्वाण की घटना।

किसी भी कथा को उसमें उपस्थित मार्मिक स्थल रोचकता प्रदान करते हैं। कुशललाभ ने इस काव्य कृति मे निम्नलिखित मार्मिक-स्थलो की अवतारणा की है—

१. मदनमजरी का विवाह-प्रसग,
२. मार्ग मे भीमसेन और मदनमजरी का विछोह,
३. हस-हसिनी-वार्तालाप,
४. नदी में डूबती हुई नारदपुरी की राजकुमारी की घटना, और
५. हंसकुमार के विवाह के समय हंसिनी का गुप्तवेश मे सयोग।

भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार आलोच्य कृति का अन्त दुखान्त कहा जाएगा। क्योंकि कथा के नायक के सन्यास ग्रहण से कथा का अन्त हुआ है। किन्तु जैन शैली के अनुसार यह सुखान्त है। कारण, जैन समाज में संन्यास ग्रहण करना ही जीवन का परम लक्ष्य है। वस्तुत: भीमसेन हसराज के चरित्र द्वारा आत्म त्याग का उपदेश देना ही इस काव्य में कवि का मूल ध्येय रहा है।

रचना का आदि और अन्त

आदि

श्री सित्रुंजय गिरि सिषरि, रिष भादव जिन राज,
पहिली प्रणमू तासु पय, जिम सीझइ सविकाज ।।१
आदि जिनेस्वर अनुक्रमइ, तीर्थंकर त्रैवीस,
विनय सहित पय वंदता, जिन पूरवइ जगीस ।।२
मुरधर देसह मंडणउ, प्रणमू गउड़ी पास,
सेवंता सुष संपजइ, लषमी लील विलास ।।३

अन्त

संवत लोक वेद सिणगार, वर्षा रितु जलधर विस्तार।
श्रावण मास सुकल सप्तमी, रच्यउ रामश्री गुरुपय नमी ।।६२०
गिरुपा श्री षरतरगच्छ राइ, श्री जिन चन्द्र सूरि सुपसाइ।
श्री खभाइत नगर निवेस, कीधउ राम सगुरु उपदेश ।।६२१
श्री जिनभद्र सूरि सतान, अभयधर्म उवझाय प्रधान।
तास सीस ऊलट अति घणइ, वाचक कुशललाभ इम भणइ ।।६२२
श्री गुरु मुषि जेणी परि सुण्यउ, तिणि परि एह चरित मइ भण्यउ।
गुण भणइ गुणइ श्रवणइ सांभलइ, तेहना सहु मनोरथ फलइ ।।६२३

(७) स्थूलिभद्र छत्तीसी

श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रहालय[५८] मे सग्रहीत इस प्रति में कुल तीन पत्र हैं, जिनका आकार १०" × ४½" का है। लिपि कहीं-कही सुपाठ्य नही है। डॉ० प्रेमसागर जैन ने इस कृति की उपलब्धि अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर के एक गुटके में साहित्य-संस्थान, उदयपुर के खोज-प्रतिवेदन के आधार पर मानी है,[५९] किन्तु वहाँ इसकी कोई प्रति उपलब्ध नही है। प्राप्त प्रति मे कुल ३७ पद हैं तथा इनमे कहीं कवि ने रचनाकाल का उल्लेख नही किया है। आरम्भ के प्रथम पद्य में कवि ने सुन्दर पदों से ग्रन्थित स्थूलिभद्र छत्तीसी की रचना करने के लिए किये जा रहे प्रयास की सूचना दी है। इस प्रति का सम्पादन हमने सप्त सिन्धु में प्रकाशित करवाया है।[६०]

कथा

प्राप्त प्रति के आधार पर इसकी कथा इस प्रकार है—पूर्व के प्रसिद्ध नगर पाडलीपुत्र के राजा के प्रधान के दो पुत्र थे। बडे पुत्र का नाम स्थूलिभद्र तथा छोटे का नाम श्रीवन्त था। स्थूलिभद्र जो कि नगर वेश्या कोस्या (कोशा) पर आसक्त था, १६ वर्ष की आयु मे सम्भूति विजय मे दीक्षित होकर श्रावक बन गया। चातुर्मास के समय सभी शिष्य गुरु की आज्ञा प्राप्त कर चौमासा बिताने गए। गुरु की आज्ञा से स्थूलिभद्र ने अपना चातुर्मास अपनी पूर्व प्रेमिका कोशा वेश्या की चित्रशाली मे व्यतीत किया। पर यहाँ वह किसी भांति अपना प्रभाव स्थूलिभद्र पर प्रदर्शित कर सकने में समर्थ नहीं हुई।

चातुर्मास व्यतीत करने पर सभी शिष्य पुनः आश्रम में आए। गुरु ने स्थूलिभद्र का स्वागत विशेष रूप में किया। इस व्यवहार को देखकर अन्य श्रावकों में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। अगले वर्ष एक श्रावक ने कोशा की चित्रशाला मे चातुर्मास बिताने की अनुमति अपने गुरु से माँगी। गुरु के समझाने पर भी वह न माना। उसने प्रथम रात्रि को ही कोशा के समक्ष अपनी कामेच्छा प्रकट कर दी। पर वेश्या कोशा ने उसकी कामेच्छा पूर्ति के लिए नेपाल से रत्नजटित कवल लाकर भेंट करने की शर्त लगायी। श्रावक शर्त स्वीकार करके नेपाल गया और वहाँ से रत्नजटित कवल लाकर उसने कोशा को भेंट दी। पर कोशा ने उससे अपना शरीर पोछ कर गन्दी नाली मे फेक दिया। श्रावक की आपत्ति पर उसे सम्बोधित करते हुए वेश्या ने कहा कि तुमने भी तो अपने रत्नजटित शरीर को कामवासना रूपी कीचड मे फेक दिया है।

वेश्या के ये वचन सुनकर वह अत्यन्त लज्जित हुआ और गुरु के चरणों में नत-मस्तक हो क्षमा-याचना करने लगा।

इस प्रकार कवि ने इस रचना मे स्थूलिभद्र की प्रेम-कथा के माध्यम मे ब्रह्मचर्य व्रत का महात्म्य प्रदर्शित किया है।

(ख) जैन-भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ

१. पार्श्वनाथ दशभव स्तवन

यह कवि का जैन भक्ति सम्बन्धी लघु स्तोत्र ग्रन्थ है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ भारतीय प्राच्य विद्या मन्दिर (एल० डी० इंस्टीट्यूट), अहमदाबाद में सगृहीत है।[61] दोनों प्रतियो मे कथा समान है। साथ ही, दोनो प्रतियो में कृति का नाम 'श्री गुडी पार्शनाथ स्तवन' लिखा हुआ है। पर ग्रन्थारम्भ मे 'तेहना दशभव चरित्र...'[62] पाठ से स्पष्ट हो जाता है कि यही 'पार्श्वनाथ दशभव स्तवन' है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ मे पार्श्वनाथ के एक-एक भव को लेते हुए कवि ने पार्श्वनाथ के दसों भवों की कथा को ६१ छन्दो मे वर्णित की है। कृति का यह नाम श्री अगरचन्द नाहटा ने एक लेख में कुशललाभ की रचनाओ के सन्दर्भ मे दिया है।[63]

रचना-काल

कृति मे रचनाकाल से सम्बन्धित निम्नलिखित पक्ति मिलती है—

सोल एक वीसइ वरसइं राउद्रह में नयर मझारि ।।६०[64]

इस पक्ति के आधार पर इस कृति की रचना कवि ने राउद्रह (मारवाड़) में सवत् १६२१ में की।

धर्म में सच्ची श्रद्धा होने पर जीव मोक्ष प्राप्त करता है। इस दशा के बाद जितनी बार वह जन्म लेता है, जैन-धर्म के अनुसार उन जन्मों को 'भव' कहा जाता है। पार्श्वनाथ जी ने भी इस भाति दस बार जन्म लिए, जिन्हे पार्श्वनाथ के दशभव कहे जाते हैं।[65] आलोच्य कृति मे पार्श्वनाथ के इन्ही दस जन्मों की कथा कही गई है। कथानक इस प्रकार है -

कथा

पोतनपुर नगर के राजा अरिवृन्द के पुरोहित वसुभूत के दो पुत्र थे। बड़े पुत्र का नाम कमठ और छोटे का नाम मरुभूति था। मरुभूति स्वभाव से सुशील था। उसकी पत्नी कमलावती भी अत्यन्त सौम्या और चारु थी। कमठ दुराचारी था। उसका मरुभूति की पत्नी से अवैध सम्बन्ध था। कमठ की पत्नी अलवन्त द्वारा दी गई इस सूचना के उपरान्त राजा ने उसे देश निकाला दे दिया। अपमानित कमठ अब तापस बन गया। एक दिन मरुभूति कमठ से क्षमा माँगने पहुँचा तो अपने पूर्व द्वेष का बदला लेने के लिए उसने मरुभूति पर शिला का प्रहार किया। प्रहार से मरुभूति की मृत्यु हो गई। मृत्यु के उपरान्त वह विंध्यगिरि में हथिनियों का यूथपति बना। कमठ अपनी मृत्यु के उपरान्त सर्प बना।

अब प्रत्येक भव (जन्म) में दोनों भाइयों का मिलन दुश्मन के रूप मे होता रहा। प्रत्येक भव मे मरुभूति स्वर्ग मे श्रेष्ठतम स्थान को प्राप्त करता रहा और कमठ को नरक का निम्नतम स्थान मिला। दसवे जन्म मे मरुभूति पार्श्वनाथ के रूप मे बनारस नगर में वामा देवी के घर जन्मा और कमठ एक गरीब ब्राह्मण के घर मे जन्मा। माता वामा देवी एक दिन कमठ के तप को देखने गई। पार्श्वनाथ (मरुभूति) भी उसके साथ था। वहाँ धूनी की लकड़ी मे एक सर्प का जोडा झुलस रहा था। पार्श्वनाथ ने उसे बाहर निकलवाया। नवकार मन्त्र द्वारा उन्होने नाग दम्पत्ति का उद्धार किया। नागराज मर कर धरण नाम का इन्द्र हुआ तथा नागिन उसकी पद्मावती नाम की देवी बनी। कमठ मरकर मेघ कुमार हुआ। उसने खूब वर्षा की। धरणेन्द्र के टोकने पर वह चौका और नीचे उतर कर भगवान पार्श्वनाथ के चरणो मे उसने शरण ली।

कवि ने यों तो आगम मे वर्णित कथानुकूल ही रखा है। फिर भी कतिपय मौलिक भेद यहाँ देखे जा सकते हैं—

१. यहाँ पात्रों के नामादि मे अनेक अन्तर मिलते हैं। आगमों में कमठ की पत्नी का नाम करुणा बताया है, जबकि यहाँ उसका नाम अलवन्ता कहा गया है,
२. कवि ने यहाँ अनावश्यक लम्बे वर्णनों को छोड़ दिया है। इसीलिए यहाँ अरिवृन्द की समाधि का, वज्रबाहु की सतति और दसवें भव मे कमठ की आद्यन्त कहानी को कहना कवि का अभीप्सित नहीं रहा है। अस्तु,

उक्त वर्णित कथा मे कवि का मूल लक्ष्य यही प्रदर्शित करना रहा है कि एक बार दुष्ट कार्य करने के पश्चात् पाप कर्मों का क्रम बढ़ता ही जाता है। सारा कथानक घात-प्रतिघात-युक्त है, जिसमें शात रस की स्निग्ध धारा प्रवाहित है। कथानक जैन-धर्म की पौराणिकता लिए हुए है।

रचना का आदि और अन्त[६६]

आदि

ढाल

श्री गुरुपाय प्रणू सरी हरषहीयड़ धरी पास जिण अणसिरि तिलउ ए॥
जगत्र-जन-नायक वछित दायक गउड़ी मांडण गुण निलउ ए॥

त्रूटक

गुण निलउ गुडीअ नयर मंडण, दुरि अषंड सुहकरो।
जे नमइ निति प्रति तिहां संपति, सदा पूरइ मुख करो ।।
तेहना दशभव चरित्र अभिनव कहिसि सषेपइ करी।
सुपसाय पांमी पास सामी तणा पास युग अणुसरी ।।१

अन्त

कलस

इअ अश्वसेन नरिंद नदण पास जिणवर जगि घणी
सकलाप गुडी नयर मडण, आ सप्तरक मन तणी
अवझाय श्री अभयधर्म सीसहस्तव्यु प्रभु सेवा भणी
श्री कुशललाभ सुमत्ति बोल् बोल सदा संपति घणी ।।६१

(२) स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवन

यह जैन-भक्ति-सम्बन्धी एक लघु स्तोत्र परक् रचना है। तरुण प्रभाचार्य एवं जिनसोम सूरि की परम्परा से इस रचना का सम्बन्ध जोडा जा सकता है। इसकी अनेकानेक हस्तलिखित प्रतियाँ विभिन्न ग्रन्थालयो मे सग्रहीत है। श्री मोहनलाल दली चन्द देसाई ने इसका सम्पादन कर आनन्द काव्य महोदधि, मौक्तिक ७ म प्रकाशित करवाया है।

रचना-काल

यो तो अनेक हस्तलिखित प्रतियो एवं आनन्द काव्य महोदधि, मौक्तिक ७ मे सपादित पाठ मे कही इसकी रचना-तिथि का उल्लेख नही हुआ है, किन्तु डॉ० रामसागर जैन ने जयपुर एव बडोदरा की प्रति के आधार पर इसका रचनाकाल वि० संवत् १६५३ माना है।[६७] श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने कृति का आदि और अन्त प्रस्तुत करते हुए 'स० १६३८ चैत्र सुदि ११ भोमे खंभायत मध्ये खरतरगच्छे वा० कुशललाभ गणि०' रचनाकाल सूचक पाठ दिया है।[६८] प्रथम प्रति (श्री लूणकरण मन्दिर, जयपुर की प्रति) म रचनाकाल सूचक सवत् का निर्देश तो है, पर साथ मे तिथि और वार नही दिया गया है, जबकि श्री देसाई द्वारा प्रस्तुत पाठ मे दी गई रचना-तिथि वि० स० १६३८ चैत्र सुदि ११ मगलवार (३ अप्रैल, १५८२ ई०) भारतीय पचाग (इंडियन एफमेरिज) से मेल खाती है। इसे हम रचना की प्रामाणिक तिथि स्वीकार कर सकते है। इस प्रति के विषय में कहा गया है कि यह स्वय कुशललाभ की स्वहस्त प्रति है।[६९] यदि यह सच है तो इससे अधिक प्रामाणिकता का आधार और क्या हो सकता है?

कथा

यह एक यात्रा वर्णन विषयक काव्य है, जिसमे कवि यात्रा-स्थल पर पहुँचकर भगवान जिनेश्वर (जिणेसर) की प्रतिमा एवं उनकी सत्तर-भेदी-पूजा का दर्शन लाभ कर

अत्यन्त प्रभावित हुआ है। आरम्भ में जिनेश्वर की स्तुति, उनका थभंण-पार्श्वनाथ नामकरण की उपयुक्तता, उत्पत्ति, द्वारिका नगरी का महत्त्व तथा उनका अनेक स्थानों पर प्रतिमा स्थापन आदि का वर्णन करते हुए अपने इष्ट जिनेश्वर स्तम्भन पार्श्वनाथ के महात्म्य का दृष्टांतों द्वारा प्रतिपादन करना ही कवि का इस कृति में उद्देश्य रहा है। कवि का कहना है कि इस तीर्थ-स्थल मे स्नान करने से प्रत्येक व्यक्ति निरोग हो जाता है और उसका जीवन सुखमय हो जाता है—

> तेह नइ स्नात्र जलि रोग सवि जाई जलि,
> कहीय इम गहीय सासण सूरी अे……
>
> × × ×
>
> तसु स्नात्र नीरई सुख सरीरइ, धन्य-धन्य सहू भणइ ॥१५[७०]

कुशललाभ के इस स्तवन मे एक महत्त्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन होता है कि— उस काल मे भारत के प्रसिद्ध रसायनशास्त्री नागार्जुन ने पालिताणा नगर मे रहकर अपने प्रयोग किये थे और स्वर्णादिक ठोस पदार्थों को तरलता में परिवर्तित करने मे वह दक्ष था।[७१]

(३) 'शत्रुंजय यात्रा-स्तवन'

इसकी भी अभी तक एक ही हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है, जो श्री अभय-जैन-ग्रन्थालय, बीकानेर (श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रहालय) मे सग्रहीत है। प्रति अपूर्ण है। कुल दो पत्रों मे ७५ छन्द लिखे हुए है। कृति के अध्ययन से ऐसा लगता है कि इसका एक पत्र और होना चाहिए, जिसमे कथा का अन्तिम भाग जूनागढ़ के अधिपति का युद्ध एव कवि-प्रशस्ति लिखी हो।

रचना-काल

ग्रन्थ के आदि और मध्य भाग से कवि के नाम एवं सम्प्रदाय की प्रामाणिकता तो सिद्ध हो जाती है[७२] किन्तु कृति की रचनाकाल की ओर कोई स्पष्ट सकेत नही मिलता। श्री अगरचद नाहटा ने कृति के आरम्भ मे दिये गए 'सोल चम्माला वछरइ…' पाठ के आधार पर इसकी रचना तिथि वि० सं० १६४४ माघ सुदि दशमी मानी है।[७३] यह तिथि भारतीय पचांग मे भी सही बैठती है। पर कृति के अंतिम भाग में लिखित पंक्ति "चैत्र सुदि पचमी विरची पूज विसाल" उक्त तिथि को रचनाकाल मानने मे अवरोध उत्पन्न करती है। कवि ने इस सम्पूर्ण यात्रा की अवधि २१ दिन की मानी है।[७४] इस अन्तर्साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शत्रुंजय सघ की यात्रा का आरम्भ वि० स० १६४४ रविवार माघ सुदि दसमी को हुआ न कि ग्रन्थ की रचना की समाप्ति। आलोच्य कृति के सघपति सोमजी के साथ युग-प्रधान सूरि का शत्रुंजय यात्रा करने का उल्लेख श्री भवरलाल नाहटा ने भी किया है।[७५] इससे भी उक्त तिथि यात्रा की आरम्भ तिथि ही प्रमाणित होती है। अतः कल्पना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यात्रा

आरम्भ के २१ दिन पश्चात् वे शत्रुंजय पहुँचे और उसके भी बीस दिन पश्चात् भक्तों ने वि० सं० १६४५ चैत्र सुदि पंचमी को इन्द्र की पूजा की। इसके पश्चात् संघ के प्रत्यावर्त्तन पर ही कवि ने इसकी रचना की होगी। इस प्रत्यावर्त्तन की भी हम २०-२१ दिन की अवधि निश्चित कर सकते हैं। अत 'शत्रुंजय यात्रा-स्तवन' की रचना तिथि वि० सं० १६४५ के चैत्रान्त, वैसाख और जेष्ठ माह तक आंकी जा सकती है।

कथा

जैन समाज के उपाधि प्राप्त इन्द्र के उद्बोधन पर जिनचन्द्र सूरि द्वारा प्रकाशित महत्त्व के आधार पर श्रावक समूह ने शत्रुंजय गिरि की यात्रा का आयोजन किया। यात्रा का आरम्भ विक्रम सवत् १६४४ माघ सुदि दसमी रविवार को पाटण से हुआ। मार्ग मे अहमदाबाद, धधूका, सिरोही आदि स्थानो के सघ भी यात्रा मे सम्मिलित हुए। मार्ग मे ही इन सघो के साथ मुग़ल सेना की मुठभेड़ हुई। सघ ने मुगलों को मोहरे देकर अपना पिड छुड़ाया।

इस अनपेक्षित युद्ध के पश्चात् बधाइयाँ देते हुए, ऋषभदेव के गीत गाते हुए संघ पालीतणा पहुचा। वहाँ से उन्होने शत्रुंजय तीर्थ के दर्शन किये। दक्षिण मार्ग मे मरुदेवी की उपासना की। चैत्र सुदि पचमी को सघ ने इन्द्र-पूजा करके राजनगर (गुजरात) की ओर प्रस्थान किया। इस बार रास्ते मे सघ की मुठभेड़ जूनागढ के अभिमानी अधिपति अमीर खान (अमीशाह) से हुई, किन्तु यात्रा के प्रभाव से सघर्ष रुक गया। इसके बाद की कथा प्राप्त प्रति मे नही है।

इस प्रकार आलोच्य कृति मे खरतरगच्छीय सघ की शत्रुंजय यात्रा के माध्यम से जहाँ जैन जाति की ऐतिहासिकता, उनकी आर्थिक सम्पन्नता, मुसलमान शासकों की लूटपाट का निरूपण हुआ है, वही इसके द्वारा कुशललाभ के साहित्यिक जीवन का भी परिचय प्राप्त करने मे सहायता मिलती है। इन सबके अतिरिक्त तत्कालीन राजस्थान एव गुजरात राज्यो के भौगोलिक परिवेश से भी हमारा साक्षात्कार होता है।

इस प्रकार आलोच्य कृति मे खरतरगच्छीय सघ की शत्रुजय-यात्रा के माध्यम से जहाँ जैन-जाति की ऐतिहासिकता निरुपित हुई है, वही इसके द्वारा कुशललाभ के साहित्यिक जीवन का भी परिचय प्राप्त करने मे सहायता मिलती है।

रचना का आदि और अन्त

आदि

श्री सिद्धाचल गिरि सिषरि, जय-जय आदि जिणद।
जेहना चलण जुहारतां, अधिक थाइ आणद ॥१
प्रथम नाथ गणधर प्रथम, पुण्डरीक गणधार।
पुण्डरागिरि नामइ प्रगट, सहू तीरथ महिसार ॥२
विहर मान जिन बीस छइ, महा विदेह मझारि।
श्री सीमंधर उपदिसइ, ए तीरथ अधिकार ॥३

अन्त

> इणइ अवसरि जूनागढ धणी
> आणी मनि अभिमानो जी ।
> सबल दल बहु सेना मेलवी
> आव्यो अमीषानो जी ॥७५
> पुण्य प्रमाणइ सकट सवि रलइ
> पालीताणा पास चिहुं

(४) श्रीपूज्यवाहण गीत

इस रचना की दो हस्तलिखित प्रतियाँ श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर[76] मे संग्रहीत हैं। इन्हीं प्रतियों के आधार पर श्री अगरचन्द और भंवरलाल नाहटा ने इसका सम्पादन कर वि० सं० १९९४ मे श्री अभय जैन ग्रन्थमाला के ८वें पुष्प ऐतिहासिक जैन-काव्य सग्रह[77] में प्रकाशित किया। दोनो ही प्रतियों में कृति के रचनाकाल का उल्लेख नही है किन्तु एक प्रति मे लिपिकाल वि० स० १६४७ लिखा हुआ है।[78] इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि ने इसका प्रणयन शत्रुंजय-यात्रा-स्तवन की रचना के आसपास ही किया। सम्पूर्ण कृति ६७ छन्दों और तीन पत्रों मे लिखी हुई है।

कथा

कवि ने आदि गुरु जिनेश्वर, पांचवें गुरु जिनपार्श्वनाथ जो शरणागत को शरण देने वाले है, शान्ति के समर्थक सोलहवें गुरु श्री शान्तिनाथ जी एव ब्रह्मचारी नेमिनाथ की वन्दना करते हुए जैन धर्म के २४वें गुरु तीर्थङ्कर वर्द्धमान के प्रशस्त कार्यों का इस गीति रचना मे वर्णन किया है। वर्द्धमान ही वह वाहन है जिसकी पूजा कर श्रावक इस ससार-रूपी सागर के माया-मोह से विलग हो सकता है। (१) श्रावक भण्डारी वीर जी, (२) *श्रावक रांका*, (३) *श्रावक नाग जी*, (४) *श्रावक वछा*, (५) *श्रावक पदम जी*, (६) श्रावक भाण जी, (७) भण्डारी माडण, (८) श्रावक आबड़, (९) श्रावक मनु, (१०) श्रावक सहजीया आदि ने इनका ध्यान अत्यन्त उत्साह एव हर्ष के साथ कर फल की प्राप्ति की।[79] ऐसे महान् गुरु की प्रतिष्ठा पाटण जैसे जैनियों के महान् तीर्थ नगर मे हुई। उसी गुरु का स्तवन करते हुए जैन-संघ त्रंबावती नगरी मे श्री जिनचन्द्र सूरि के नेतृत्व मे आया। वहाँ उन्होंने समस्त श्रावक सघ को जैन-समवसरण का उपदेश दिया। सघ के आग्रह पर पूज्य श्री वहाँ चार मास और रहे तथा भगवान् की प्रतिमा, प्रतिष्ठा एवं दीक्षा आदि महान् धार्मिक कार्यों को सम्पन्न किया।

इस प्रकार यह रचना जैन-भक्ति-तत्व से आवृत्त है। गणधर गौतम, मेरू-पर्वत, कस आदि के प्रसगो ने भी भक्ति का वातावरण प्रदान किया है। काव्यत्व की दृष्टि से यह एक अच्छी रचना है।

(५) गौड़ा पार्श्वनाथ छन्द

यह कृति अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ गुजरात[80] और राजस्थान[81]

के ग्रन्थालयो मे उपलब्ध हैं। कही ये स्तवन नाम से संग्रहीत है तो कहीं छन्द नाम से। प्रतियों मे छन्दो की सख्या २१ से २३ तक मिलती है। प्राप्त किसी भी प्रति मे रचना-काल से सम्बन्धित कोई उल्लेख नही मिलता।

कुशललाभ ने इस कृति मे जैन अवतार पार्श्वनाथ के गौड़ी स्वरूप का वर्णन किया है। आरम्भ के प्रथम छन्द मे कवि ने सरस्वती की वन्दना की है तथा अन्तिम छन्द मे गौड़ी पति पार्श्वनाथ के स्तवन के फल को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि उनका ध्यान करने से धरा के सभी कष्ट दूर हो जाते है और कुप्रवृत्तियों से व्यक्ति दूर रहता है। इसीलिए असुर, इन्द्र, देव, व्यतर, विद्याधर भी इनकी स्तुति करते हैं। ऐसे महान् गौडी स्वरूप का वर्णन कवि ने मारवाड़ के नवकोटि नामक स्थान के अधिपति के रूप मे किया है।[८२]

सारस पक्षी के युगल,[८३] परलोक एव अनल रूपी पक्षी,[८४] सुरपति इन्द्र के दरबार में यक्ष-यक्षिणी[८५] आदि प्रसगो से भक्त कवि ने अपने इष्ट देव के चरित्र को संवारते हुए भक्ति के वातावरण को प्रस्तुत किया है।

रचना का आदि और अन्त[८६]

आदि

सरसति सुमत आपेसुर राणी, वचन विलास विमल ब्रह्माणी
सकल ज्योति ससार समांणी, पास प्रणमु जोड़े जुग पांणी ॥१
पारस नाथ प्रगट परमेसर, अनुबली बल दाता अलवेसर,
नवगढ़ गौड़ी पुर नायक, देव सकल वछित सुषदायक ॥२
प्रसिद्ध प्रताप प्रथ्वी परमाण, सुजस जास जग सगलो जाणे।
महिमा तास जपु सुमति सारे, समरता सेवक साधारे ॥३

अन्त

तेण धरा जस तुझ, उदध जहाँ दीप असषत
पोम धरण पायाल, आण सुष है अषडित
असुर अमर इन्द्र नर, विवध वितर विद्याधर
सेवे जस पाय सदा, नाग जस जपइ नरतर
जगनाथ पास जिणवर जयो, मन कामता चितामणि
कवि कुसललाभ सपतिकरण, सो धवल धीगा गोड़ी धणी ॥२२

(६) नवकार छन्द

कुशललाभ की छन्द अभिधानित एव लघु-रचनाओं मे नवकार छन्द एक महत्त्व-पूर्ण रचना है। इसमें कुल १७ छन्द है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ अनेक ग्रन्थालयों में उपलब्ध हैं। कथ्य समान है, किन्तु यत्किंचित पाठ-भेद सभी प्रतियों मे मिलता है। इसका सम्पादित रूप 'जैन धर्म-सिन्धु' ग्रंथ मे प्रकाशित है।[८७] कृति के रचनाकाल से सम्बन्धित कोई सूचना इन रूपो मे उल्लिखित नही है।

यह एक भक्ति परक रचना है। कवि ने इसमें जैन धर्मानुसार पंचपरमेष्ठी भगवान जिनेश्वर की वन्दना की है। उसका कथन है कि नवकार के नियमो के पालन से ही राजा श्री पाल के राज्य की प्रसिद्धि हुई,[८८] उसी के विधिवत् जाप से विष धारण करने वाला सर्प भी अमृत-धारा बरसाने लगता है,[८९] उसी के जाप से मनुष्य ससार की सुख-स्मृद्धि प्राप्त करता है।[९०] इस प्रकार नवकार का आदि और अन्त कोई नहीं जानता। अतः पाँचों प्रकार के प्रमाद एव विषयों को त्याग पचपरमेष्ठी, पंचज्ञान, पच-दान, पंचचरित्र आदि पाँच आचारों का पालन करना चाहिए।[९१]

'परतिष पेष्यो माणिधर ने एक मोर'[९२] जैसे दृश्यों के माध्यम से कवि ने जैन धर्मी अहिंसा के पशुओं तक पर प्रभाव को प्रदर्शित करना चाहा है। कवि ने सांबल-कांबल[९३] और पार्श्वनाथ तथा जलते हुए सर्प[९४] के कथा प्रसगो का सकेत कर भी भक्ति तत्त्व को उभारा है।

(ग) पौराणिक-साहित्य

१. महामाई दुर्गा सातसी

कुशललाभ की मातृका स्तुति विषयक रचनाओ में यह सर्वाधिक वृहत स्तोत्र-रचना है। इसमे कुल ३६६ छन्द हैं। प्रथम ३६२ छन्दो मे देवी दुर्गा की उत्पत्ति एव उसके सुकृत्यों का पद्धबद्ध निरूपण है तथा अन्तिम चार छन्दों (कवित्तों) मे कृति (सातसी) का महात्म्य देते हुए कवि ने अपना परिचय दिया है। अब तक इसकी दो प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं।[९५] दोनों प्रतियों मे कृति के रचनाकाल का उल्लेख नहीं है। इनमे से एक प्रति त्रुटित है[९६] पर लिपि सुवाच्य है, जबकि द्वितीय प्रति[९७] पूर्ण है। दोनो मे पाठ भेद तनिक भी नहीं है।

कथा

एक बार सुमेरू पर्वत पर मार्कण्डेय सहित अनेक ऋषि एकत्र हुए। वहीं राजा सुरथ एव उनका प्रधान पुत्र सन्मेघ भी सन्यासी रूप में दानवो के गाँव मे विचरण करते हुए वहाँ पहुँचे। मार्कण्डेय ऋषि के पास पहुँचकर दोनो ने माया रूपिणी देवी के चरित्र को जानने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने बताया कि निद्रा मग्न भगवान विष्णु के कानों से मधु-कैंस्भ राक्षस उत्पन्न हुए। भगवान विष्णु की नाभि मे विराजमान ब्रह्मा को देखकर वे उन्हे मारने को दौडे। तभी ब्रह्मा ने विष्णु की देवी स्वरूपी निद्रा का स्तवन किया। इस जाप से निद्रायोगिनी जागृत हो गई और भगवान विष्णु भी जाग उठे।

दानवों ने विष्णु को युद्ध के लिए ललकारा। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। देवी के मोह मे ग्रसित दानवों ने भगवान विष्णु के वरदान को स्वीकार कर लिया। उनकी यही कामना रही कि उनका वही वध किया जाए जहाँ पृथ्वी जल में डुबी हुई न हो। भगवान विष्णु ने दोनो राक्षसों को अपनी जघा पर बिठाकर अपने चक्र से उनका वध कर दिया।

देवताओं द्वारा महिषासुर के अत्याचारों की कहानी को सुनकर भगवान विष्णु

की भुजाएँ फड़क उठी। उनके विकराल तेजस्वी रूप से देवी प्रकट हुई। अपनी ओर बढ़ती हुई महिषासुर सहित सारी सेना का देवी ने सहार किया। जगत्-कल्याण का वरदान देकर वह अन्तर्धान हो गई।

शुभ-निशुभ राक्षसों ने गिरिपुर मे पुनः देवताओं को कष्ट देना आरम्भ किया। देवताओं की प्रार्थना सुनकर आधाशक्ति प्रकट हुई। अपने दास चण्ड-मुण्ड द्वारा देवी के सौन्दर्य को सुनकर देवी के पास अपना विवाह प्रस्ताव भिजवाया तथा उन्हे देवी को अपने साथ लिवा लाने का आदेश भी दिया। अपने प्रस्ताव के प्रति देवी का अवमानना-भरा सदेश सुनकर शुभ-निशुभ क्रोधित हुआ। उसने दैत्य धूम्रलोचन को साठ हजार सैनिको के साथ देवी को पकड़ लाने को भेज दिया। देवी ने अपनी हुंकार से सेना सहित आए धूम्रलोचन का सहार कर दिया। तत्पश्चात् राक्षसो की युद्ध योजना के प्रत्युत्तर में देवी ने कालिका रणचण्डी का रूप धारण करके चण्डमुण्ड, बीज रक्त और अन्त मे शुभ-निशुंभ राक्षसो का सहार किया।

दैत्यो के इस विनाश पर देवता प्रसन्न हुए और देवी का अभिनन्दन उन्होंने फूलों की वर्षा करके किया। इस कथा के उपरान्त कवि ने देवी के विभिन्न नामो से उसके महात्म्य की स्तुति की है।

कवि ने इस पौराणिक आख्यान को ज्यो का त्यों प्रस्तुत नही किया है। आवश्यकतानुसार कवि ने इसमे परिवर्तन किए है, जो निम्नलिखित हैं—

१. कुशललाभ ने कथा को शीर्षक अथवा अध्यायो मे निरूपित नहीं किया है, जबकि दुर्गा सप्तशती मे सारी कथा अध्यायो मे विभाजित है।
२. यहाँ मूल कथा मे वर्णित देवी अथवा राक्षसो की सेना, उनके रणकौशल अथवा महात्म्य आदि का विस्तृत वर्णन भी नही मिलता।
३. यहाँ कथा कवि ने कही है। ऋषि मार्कण्डेय जी की ओर केवल संकेत मात्र ही किया गया है कि राजा व वैश्य ने उनसे देवी-चरित्र को समझाने का निवेदन किया।
४. आलोच्य कृति मे सुरथ और वैश्य (प्रधान-पुत्र) जगल मे यकायक मिले हैं, जहाँ उन्होने न अपना परिचय आपस मे लिया है और न ही अपने अन्तर्द्वन्द्व का बखान किया है।
५. 'महामाई दुर्गा सातसी' मे मधु-कैटभ राक्षसो का जन्म भगवान विष्णु के कानों से हुआ है न कि कानों के मेल से। इसी भाँति चेतना प्राप्त होने पर दोनों राक्षसों ने भगवान विष्णु को युद्ध के लिए ललकारा है, जबकि 'मार्कण्डेय पुराण' मे ऐसा कोई उल्लेख नही मिलता।
६. पूर्वकाल मे देवताओ एवं राक्षसों के बीच सौ वर्षों तक हुए युद्ध का वर्णन राक्षसो की सेना के नेता महिषासुर व देवताओ के नेता इन्द्र का भी कवि ने 'सातसी' मे कोई उल्लेख नही किया है। यहाँ तो कवि ने मधु और कैटभ के वध के तुरन्त बाद महिषासुर का देवताओ के साथ युद्ध दिखा दिया है।
७. सातसीकार ने सुग्रीव और शुभ के वार्तालाप को पूर्णत. नवीन रूप मे प्रस्तुत किया है। यहां सुग्रीव को अत्यन्त चतुर कहकर शुभ उसे देवी के पास भेजता है, जहाँ

सुग्रीव अपनी बुद्धि के अनुसार सारी बात-चीत देवी से करता है, जबकि 'मार्कण्डेय-पुराण' में शुंभ द्वारा कथित सदेश ही सुग्रीव देवी को सुनाता है। इसी भाँति चण्ड-मुण्ड की मृत्यु के पश्चात् शुंभ की सुग्रीव द्वारा उपयुक्त युक्ति जानना भी कवि की मौलिक कल्पना है।

८. विभिन्न देवताओं की शक्तियों से सपूरित हो 'महामाई दुर्गा सातसी' की देवी ने शुंभ से विष कन्या के रूप में वरण करके महान् दैत्य रक्त बीज को उसी के स्वामी शुंभ की आज्ञा से स्वयं ने मारा, जबकि 'मार्कण्डेय-पुराण' मे देवी द्वारा रक्त बीज के संहार पर शुंभ-निशुंभ ने उस पर प्रहार किया।

६. 'मार्कण्डेय-पुराण' की भाँति कुशललाभ ने दुर्गा देवी की फल-स्तुति एवं राजा सुरथ और वश्य को देवी द्वारा प्रदत्त वरदानों की कथा का अन्त मे कोई उल्लेख नहीं किया है। इसकी अपेक्षा २४ भुजंगी छन्दों मे देवी के विभिन्न रूपों की स्तुति की है। इससे जहाँ कथा सक्षिप्त हुई है, वही नवीनता एव रोचकता का भी निर्वाह हुआ है।

रचना का आदि और अन्त[६८]

आदि

ऊकार तइं हिज उपाये जगत्र जोन तातइ जुगि जाये।
रमइ चिहु षड तुं सुर राया, मनछा रूप तुहिज-महामाया ।।१
कुडलणी संता सुष करणी, अंबर धरा तुहिज उधरणी।
तू घण दीही तूं हिज तरणी, जोगह वद्ध अवद्ध जणणी ।।२
गुणे सातसी रूप गहन्न, नवइ देव देवी तूअ तन्न।
मातगी निश्चल करि मन्न, जपइ एम तुम्हारा जन्न ।।३

अन्त

उदबुद भार अढार पार कुण पामइ पानह
करइ घडइ नर कवण गिणइ कुण वेलू ग्यानह
कालंजरि किल्लोल पुणइ कुण पडित पारह
सध्या करि कुण सकइ वो भतारां विसतारह
प्राक्रम पार तुझ कुण पुणइ उदउ उदउ करि ईसरी
कवि कुशललाभ कल्याण करि जइ जइ जइ जगदीसरी ।।४

२. जगदम्बा-छन्द अथवा भवानी-छन्द

इस रचना की भी एक ही प्रति उपलब्ध है जो राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर मे एक गुटके में संग्रहीत है।[६६] गुटके का आकार २५·५ से० मी० × १६ से० मी० है। रचना चार पत्रों और ४८ छन्दों मे लिखी हुई है। १३वें छन्द का अन्तिम चरण प्रति में लिपित नही है। कवि ने कहीं रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया है किन्तु लिपि-काल वि० सं० १७३४ दिया हुआ है।

यह एक देवी-भक्ति से सम्बन्धित लघु रचना है, जिसमे कवि ने जगदम्बा की स्तुति करते हुए उसके महात्म्य को स्पष्ट किया है। इस विवेचन में कुशललाभ ने देवी के २६३ नामो का उल्लेख किया है।

यही रचना 'भवानी-छन्द' के नाम से भी मिलती है। सम्भव है कवि ने मूल रचना के समय ही इसे उक्त दोनों शीर्षक जगदम्बा-छन्द अथवा भवानी-छन्द से प्रसिद्ध किया हो। यह भी सम्भव है कि कालान्तर मे किसी प्रतिलिपिकार 'जदगम्बा' और उसके पर्याय नाम 'भवानी' मे अर्थ-भिन्नता न समझकर उक्त नाम दे दिया हो। दोनों ही शीर्षको से छन्द प्राप्त हुए हैं। सामान्य पाठान्तर के अतिरिक्त इनमें कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर नही है। छन्दों की प्राप्त प्रतियों[100] का अन्तर निम्न प्रकार है—

१ जगदम्बा-छन्द वाली प्रति मे ४८ छन्द मिलते है, जबकि भवानी-छन्द वाली प्रतियो मे ४२ छन्द।

२. जगदम्बा-छन्द की प्रति की पुष्पिका में एक ही छन्द (कलस) वर्णित है पर भवानी-छन्द मे यह दो कलस-छन्दो मे वर्णित है। ये दोनों ही छन्द जगदम्बा छन्द मे भिन्न रूपान्तर है। दोनो ही रूपान्तरो के अन्तिम भाग यहाँ उद्धृत है—

जगदम्बा-छन्द का अन्त

कलस

इंद्रादिक सुर असुर : सदा तुझ सेवा सारे :
स्वर्ग मृत्यु पाताल अचल तुमचि आधारै :
गिर गुहरावर विवर नगर पुरवर त्रिक चाचर :
शिव सगति युगति षेलि सदा विविध रूप विश्वेश्वरी
कवि कुशललाभ कल्यांण करि जय-जय जगदीश्वरी ॥४८

भवानी-छन्द का अन्त[101]

कलस

आदि मात आणद अधिक कीजी एप हमारे
ब्रह्मादिक सुर असुर सदा तुम सेवा सारे ॥
गिरि गहवर वन विवर सदा पुरवर त्रिक चारिक।
आप छन्द आणद सकति खेले सचराचर।
सिव सक्ति युक्ति सेवो सुर विवध रूप विबर चरि।
कवि कुशललाभ कल्याण करि जय जय जय जयश्वरी ॥१
आदि मात अरदास एक मोरी अपधारौ।
मथा करी महरा विकट सवि टालौ।
मुक्त मन तुम आधार, कृपा अहम् ऊपर कीजै।
सुख संपति सतान पान मन वछित दीजै।
गिहुं भुस पराक्रम ताहरा प्रगट अछै परमेश्वरी।
कवि कुशललाभ कल्याण करि आस्या पूसे ईश्वरी ॥२

(घ) रीति-सम्बन्धी रचनाएँ

१. पिंगल-शिरोमणि

यह कुशललाभ की रीति-सम्बन्धी रचना है। इसमें कवि ने छन्दो और अलंकारों के विवेचन के साथ-साथ राजस्थानी (डिंगल) में प्रयुक्त गीत छन्द और नाममाला पर भी विचार किया है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति श्री विनय सागर, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जयपुर के पास उपलब्ध है। इसी प्रति का श्री नारायणसिंह भाटी ने सम्पादन कर 'परम्परा' भाग १३ में प्रकाशित करवाया है। इसी सम्पादन की भूमिका के लेखो से इस रचना के रचयिता के प्रति दो मत स्पष्ट दिखायी देते हैं। एक वर्ग[102] श्री सीता राम लालस[103] और डॉ० नारायण सिंह भाटी का है जो इसे हरराज की रचना मानता है तथा दूसरा वर्ग इसे कुशललाभ की रचना स्वीकार करता है। इस वर्ग के समर्थक है—श्री अगरचन्द नाहटा[104] एव डॉ० ब्रजमोहन जावलिया[105] ग्रन्थ के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'पिंगल-शिरोमणि' का रचयिता उपाध्याय अभयधर्म का शिष्य कुशललाभ ही है। ग्रन्थ की पुष्पिका मे कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि प्रस्तुत रचना का निर्माण कुशललाभ ने राजकुमार हरराज के कुतूहलार्थ किया है। इसके अरिरिक्त ग्रन्थान्तर्गत हरराज ने छन्दशास्त्र सम्बन्धी अनेक प्रश्न उठाये है, जिनके समाधान की तार्किकता के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कार्य किसी कुशल कवि के द्वारा ही किया जा सकता था।

ग्रन्थ में विवेचित विषय-वस्तु की रूपरेखा निम्नोक्त कही जा सकती है—

१. प्रस्तावना —ईश-वन्दना, लघु-गुरु, गण, वर्ण, छन्द आदि का परिचय,
२. वर्णावर्ण छन्द संज्ञा कथन—प्रथम प्रकाश,
३ छन्द-निरूपण—द्वितीय हुलास,
४. छन्द—निरूपण,
५ मात्रा-प्रकरण-लघु-गुरु, सम-विसम, भगणादि कथनं—चतुर्थोध्याय,
६. अलंकार-वर्णन,
७. सासोतरा-कथनं,
८. उडिंगल नाममाला—सप्तमोध्याय
९. गीत-प्रकरण।

कृति में सम्पूर्ण विषय-वस्तु अव्यवस्थित रूप मे सगठित है। कही अध्यायो का स्पष्ट उल्लेख है तो कहीं नहीं, प्रथम प्रकाश के पश्चात् पंचम प्रकाश ही प्रकाशित हैं। इसके पश्चात् षष्ठ-अध्याय का आरम्भ और अन्त का उल्लेख न होकर केवल 'अथ अलंकार वर्णन' ही लिखित है। 'सासोत्तरा' के अध्याय को कोई सख्या नहीं दी गई है। 'इति सासोत्तरा चित्र' से इस अध्याय का अन्त करके 'उडिंगल-नाममाला' का आरम्भ कर दिया गया है। इसका अन्त अध्याय की संख्या एवं नामसहित है। पर अन्तिम अध्याय की इति 'इति प्रहेलिका' वाक्य से की गई है। इससे ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय की

प्रतीति नहीं होती। किन्तु पुष्पिका के आधार पर 'गीत प्रकरण' को कृति का अन्तिम अध्याय कहा जा सकता है।

रचना-काल

'पिंगल-शिरोमणि' की पुष्पिका मे इसकी रचना-तिथि-सम्बन्धी निम्नलिखित पंक्तियाँ मिलती है—

> **पांडव मुनिसर मेदनी, सुकल पख्य नभ मास।**
> **तिथ नवमी रविवार तिम, जेसल हरीयंद वास॥**[106]

इन पंक्तियों में पाडव मुनिसर मेदिनी शब्दों पर 'पिंगल-शिरोमणि' का रचना-काल वि० स० १५७५ श्रावण शुक्ला नवमी रविवार मान लिया गया है। पर यह तिथि सही नही कही जा सकती। कारण, यह तिथि भारतीय-तिथि-पत्रक से मेल नही खाती। साथ ही, कवि का इस समय तक जन्म ही नहीं हुआ था। डॉ० जावलिया ने उपर्युक्त शब्द पर अंकों का अकन किसी परवर्ती व्यक्ति, सम्भवत लिपिकर्ता का काम बताया है। कुशललाभ के काल-ज्ञान के अभाव मे उसने कोश मे प्रचलित 'पाडव मुनिसर मेदनी' के सख्या सकेतो के आधार पर १५७५ संख्याएँ अंकित कर दी। उनके अनुसार प्रथम तो पाठ होना चाहिए था 'पाडव मुनिरस भेदनी' और तत्पश्चात् इसका अर्थ होता पाडव = ५, मुनि (मुनित्रय व्याकरणकार) ३, रस = ६ और भेदिनी = १। इस पर काल होता १६३५।[107] इस प्रकार आलोच्य कृति की रचना-तिथि वि० स० १६३५ श्रावण शुक्ला नवमी रविवार घोषित होती है, जो एफेमेरीज से भी सर्वथा मिलती है। बहुत सम्भव है कि कवि ने कृति का प्रारूप हरराज के कुवारेपन के समय ही कर लिया हो, पर उसे सलीके से लिपिबद्ध उक्त तिथि पर ही किया है।

विषय-वस्तु

अपनी शास्त्रीय विषय-वस्तु को समझाने के लिए कवि ने अनेक कथाओं का सहारा लिया है। वार्णिक छन्दो के उदाहरणों मे कुशललाभ ने भगवान शकर की कथा से दृष्टान्त लिये है। मात्रिक छन्दो मे उसने राम-कथा को अपना आधार स्वीकार किया है। इसके प्रमुख प्रसग सीता पूर्वजन्म प्रसग, राम की गर्भ स्तुति, राम की तेजस्विता, राम की सौम्यता, राम-रावण युद्ध, राम-परशुराम सवाद आदि हैं। इसी भाँति कवि ने 'गीत-प्रकरण' नामक अध्याय मे भी ऐतिहासिक नायकों से सम्बन्धित विविध गीतों एवं भक्ति-सम्बन्धित गीतो को उदाहरण रूप मे प्रस्तुत किए हैं। गीतों मे प्रयुक्त प्रमुख प्रसंग हैं—हनुमान की वीरता, कृष्ण-भक्ति, विष्णु एवं गरुड़ की कथा, रामकथा इत्यादि।

इन रचनाओं के अतिरिक्त कुशललाभ का एक स्फुट कवित्त-सवैया और मिला है, जो अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर मे सुरक्षित है।[108] कवि ने इसमें प्रहेलिका-शैली मे नायक-नायिका के सयोग की अनुभूति का चित्रण किया है। ऐसे वर्णन कुशललाभ द्वारा

रचित 'माधवानल कामकंदला चौपई' एव 'भीमसेन हंसराज चौपई' में भी मिलते हैं। सम्भव है कवि ने इन्हीं में से किसी ग्रन्थ के लिए इस कवित्त की रचना की हो और वह उसमें इसे संलग्न नहीं कर पाया हो। कवित्त यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

विण पावस भादवो, माह विण अबो मोअरै।
फूल परवँ विण फल भयौ, केलि लगी (विन) बीजोरैं।
मात पिता विण पूत, पख विण पखी उडँ।
रायहंस ढिलँरे नीर विण गैंवर बूड़ैं।
ऊगमैं दीह दिणयर पखँ, दान पषँ नव षंड जस।
कवि कुसललाभ वाचक कहै, जोग सिंगार कवित्त रस॥

सन्दर्भ

१ श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, हस्तलिखित ग्रन्थांक १२०
२. अगरचन्द भवरलाल नाहटा, मणिधारी श्री जिनचन्द्र सूरि अष्ठम-शताब्दी स्मृति-ग्रन्थ (द्वितीय खण्ड), पृ० ४८, क्रमांक २४७ पर।
३ भारतीय-प्रेमाख्यान काव्य, विषय-सूची एवं पृ० ४४६, १६५५ ई०
४. आनन्द काव्य-महोदधि, मौक्तिक ७
५. माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, परिशिष्ट-२, १६४२ ई०
६. हस्तलिखित ग्रन्थ, क्रमांक ३६४५
७. अंक XCIII, पृ० ४४२, चौ० ६५७
८ मोहनलाल दलीचन्द देसाई, पृ० १८४
६. सवत सोल सतोनरइ, जैसलमेर मझारि
फागुण सुणिदि तेरसि दिवसि, विरची आदित्यवार॥ ५५०, पत्र १८
१०. राजस्थान-भारती, अंक ४, भाग-१, पृ० २२
११ तत्राधिकारिकं मुख्यमग प्रासगिक विदु.
—व्याख्याकार डॉ० भोलाशकर व्यास, हिन्दी दशरूपक, चोखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१, अध्याय १, श्लोक ११, पृ० ७
१२. प्रासगिक परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसंगत॥ —वही, श्लोक १३, पृ० ८
१३. जायसी-ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० १६
१४. आनन्द काव्य महोदधि, मौक्तिक ७
१५. वही
१६. दूहा घणा पुराणा अछे, चौपी बध कीउ में पछे॥ ७३७
- डॉ० ब्रजमोहन जावलिया की प्रति, ढोला-मारवणी चौपई।
१७. गाहा साड़ी सातसें एह परिमांण, दूहा ने चौपी वषांण —वही, चौ० ७३६
१८. गाह सातसइ एह प्रमाण, दोहानइ चउपई वषाण।
—ढोला-मारवणी री चौपई, परिशिष्ट-२ (घ) प्रति, पृ० ३१५

१९ हस्तलिखित प्रति, क्रमांक १
२० (क) मोहनलाल दलीचन्द देसाई, आनन्द काव्य महोदधि, मौक्तिक ७, पृ० १५०-१५२
(ख) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ढोला-मरवण री चउपइ, हस्तलिखित प्रति, ग्रन्थांक ८१६०, चौ० ७३०
२१. हस्तलिखित प्रतियाँ, ग्रन्थांक ३०, ५३९, ६३०, ८८४
२२. वही, ग्रं० ८८४
२३ राजपुताने का इतिहास, भाग-१, पृ० ६७२
२४. राजस्थान-भारती, भाग-१, अक ४, पृ० २२ किन्तु परम्परा, भाग १५-१६ और वैचारिकी, भाग १, अक १ में प्रकाशित अपने लेखों में उन्होंने इसका रचनाकाल सवत् १६१७ वि० ही माना है।
२५ राजस्थान के प्रेमाख्यान, परम्परा और प्रगति, पृ० ३२
२६. एब्सट्रेक्ट ऑफ द स्टारी एण्ड नोट्स आन पेंटिंग्ज ऑफ ढोला-मरवण, पृ० ९, १९५७ ई०
२७. राजस्थानी भाषा और साहित्य (१५००—१६५० वि० स०), पृ० २५९
२८. संक्षिप्त आक्सफोर्ड हिन्दी साहित्य परिचायक, पृ० ११७, १९६३ ई०
२९. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १४१, वि० सं० २०१७
३०. डॉ० नगेन्द्र, अरस्तू का काव्य-शास्त्र, पृ० ७३, वि० स० २०१४
३१. हस्तलिखित प्रति, ग्रन्थाक २७२६६, पत्र ३-५
३२. वही, ग्रन्थांक २०२०
३३. राजस्थान-भारती, भाग-१, अंक ४, पृ० २२
३४. जैन गुर्जर कविओ, त्रीजो भाग, खण्ड १ लो, पृ० ६८५
३५. ग्रन्थाक १४२८९
३६. वही, ६०५
३७. गुर्जर कविओ, भाग-३, खण्ड १ लो, पृ० ६८७
३८. बाण = ५, ख = ० (शून्य), सीणगार = १६, अर्थात् १६०५
३९. सवत बाण पक्ष सिणगार, कातीसुदि पूनिमि गुरुवार ॥ ३१८
—बाण = ५, पक्ष = २, सिणगार = १६ = १६२५
४०. भण्डारकर प्राच्य विद्या मन्दिर, पूना ह० लि० ग्रन्थांक ६०५ से उद्धृत।
४१. ग्रन्थाक, २६५४६, ३३१८६, ३३५५८।
४२. ग्रन्थांक, ५४७६, ५४८९, ५९७०।
४३. ग्रन्थांक, ४७८२, १४९७३।
४४. श्री पूज्य जी सग्रह, ग्रन्थाक २०३९
४५. मुनि कान्तीसागर जी का सग्रह, ग्रन्थांक ४७
४६. ग्रन्थाक, ३७१२
४७. ग्रन्थांक, १००८

४८. गुर्जर कविओ, त्रीजो भाग, खण्ड १ लो, पृ० ६८४
४९. ग्रन्थांक, २६५४६
५०. सोल सहस चउतीसइ सार, श्रीवीरमपुर नयर मझार ।। ४०८, रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्र० २६५४६
५१. आनन्द काव्य महोदधि, मौक्तिक ७, पृ० १५६
५२. हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि, पृ० ११८
५३. राजस्थान प्राच्य विद्या मन्दिर, जोधपुर, ह० लि० ग्रन्थांक २६२४६ से उद्धृत ।
५४. "इति श्री भावनाविषये राजा श्री भीमसेन हंसराजा सम्बन्ध चउपइ समाप्तं"—एल० डी० इंस्टीट्यूट आफ इण्डालोजी, अहमदाबाद, हस्तलिखित ग्रन्थांक ला० द० १२१७
५५. ग्रन्थांक ला० द० १२२७
५६. ग्रन्थांक ला० द० १२१७, चौ० ६२०
५७. ढोला-मारू चौपई का रचना काल, वैचारिकी, भाग १, अंक १, पृ० ६२
५८. श्री अभय जैन ग्रन्थालय, ग्रन्थांक ४२०९
५९. हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि, पृ० ११७
६०. अप्रैल १९७८—डॉ० मनमोहन स्वरूप माथुर का लेख वाचक कुशललाभ कृत स्थूलिभद्रछत्तीसी, पृ० १३—२६
६१. हस्तलिखित प्रति, ग्रन्थांक ला० द० ९७५ तथा ३४५३
६२. वही, छन्द २ और ६०
६३ राजस्थानी का मध्यकालीन जैन-साहित्य, परम्परा, भाग १५-१६, पृ० ७५
६४. एल० डी० इंस्टीट्यूट, अहमदाबाद, ग्रन्थांक ९७५
६५. फतहचन्द महात्मा, श्री पार्श्वनाथ चरित्र एवं पोष दशमी की कथा, पृ० १४
६६. एल० डी० इंस्टीट्यूट, अहमदाबाद के ग्रन्थांक ला० द० ९७५ से उद्धृत ।
६७. हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि, पृ० ११९
६८. जैन गुर्जर कविओ, भाग त्रीजो, खण्ड १ लो०, पृ० ६८७
६९. वही
७०. आनन्द काव्य महोदधि, मौक्तिक ७, पृ० १९१
७१. वही, पृ० १९०, गाथा ११
७२. (क) षरतर गच्छि जगि जाणीयइ, वदइ घण घण वाणी ।। १६
(ख) प्रणम्या रिषभ जिणंद, कुशललाभ वाचक कहि अधिक थयौ आणद ।।६४
—अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर, ग्रंथांक ७७४४
७३. जैन कवि कुशललाभ और उनका पिंगल शिरोमणि, राजस्थान-भारती, भाग १, अंक ४, पृ० २२
७४. इकवीस दिवस लगि पूरि मन नी षति ।। ७३
—अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, ग्रंथांक ७७४४
७५. मणिधारी जिनचन्द्र सूरि अष्टम-शताब्दी स्मृति ग्रं०, पृ० ४३

७६. ग्रन्थांक ७६०८ और ७६०९
७७. पृ० ११०—११७
७८. ग्रन्थांक ७६०९
७९. श्री अगरचन्द भवरलाल नाहटा, ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह, पृ० ११५, छन्द ५५—५७
८०. (क) प्राच्य विद्या मन्दिर, बडौदा, ग्रन्थांक ९७०
    (ख) हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान भण्डार, पाटण, ग्रन्थांक २०२८
८१. (क) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, ग्रन्थांक ६०८३
    (ख) वही बीकानेर, ग्रन्थांक ६६४१ (८)
    (ग) श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर, ग्रन्थांक ८४३०, २४८२, ६१२६ और ४३०७ (२)
८२. नवगढ घर गौडी पुर नायक, देव सकल वछित सुषदायक ।।२
    —राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जयपुर गौडी पार्श्वनाथ छन्द, ग्रंथांक ६०८३
८३. सारस पंषी जेण मुइ प्राण विचणे पखणी ।।१३ —वही
८४. परलोक आके अनल पषी, चक्र बांणै सूरीयै ।।१० —वही
८५. नवछंद नर्तक करेवा नरि, जिक्ष जोवे जक्षणी ।।१७ —वही
८६. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जयपुर, ग्रन्थांक ६०८३ से उद्धृत ।
८७. पं० मनसुखलाल नेमिचन्द्र, षष्ठ परिच्छेद, पृ० ४८३-४८५
८८. नवकारथकी श्री पाल नरेसर पाम्यो राज प्रसिद्ध ।।५
    --प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर नवकार छन्द, ग्रन्थांक ७५
८९. सुम रीते जपतां विषधर विष टाले, धारे अमृत धार ।।६ —वही
९०. नित जपइ नवकार सार संपत्ति सुषदायक
    सिद्ध मत्र ए सासतो, इम जापै जग नायक
    × × ×
    नवकार सार ससार मे, कुशललाभ वाचक कहे
    एक चित आराधता, विविध रिद्ध मन वछित लहे ।।१७
    —प्र० शो० प्र०, उदयपुर, ग्रं० ७५
९१. नवकार तणी कोइ आद न जाणे, इम भाषे भगवंत
    × × ×
    पच परमेष्टी पचग्यान पचदान चारीत्र
    पंच सजाय पच महाव्रत पच सुमति समकीत
    पंच प्रमाद विषय तजि ने पच पालो आचार ।।१६ —वही
९२. वही, छन्द १५
९३. वही, छन्द १३
९४. वही, छन्द ९
९५. अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, हस्तलिखित ग्रन्थाक ४८ और ६८ (घ), पत्र संख्या ८४ से ११४

९६. हस्तलिखित ग्रन्थांक ४८

९७ वही, ग्रन्थांक ६८ (घ)।

९८. अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, ग्रन्थांक ६८ (घ) से उद्धृत।

९९. ग्रन्थांक ६०२

१००. (क) जगदम्बा छन्द, रा० प्रा० वि० प्र०, उदयपुर, ग्रंथांक ६०२

(ख) भंवानी छन्द, (I) एल० डी० इस्टीट्यूट आफ इंडालोजी, अहमदाबाद, ग्रन्थांक ला० द० २४९३; (II) श्री अगरचन्द नाहटा से प्राप्त प्रतिलिपि।

१०१. श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर से प्राप्त प्रति से उद्धृत।

१०२. परम्परा, भाग १३, पृ० १८९, राजस्थानी छन्द शास्त्रों की परम्परा।

१०३. डिंगल गीत-साहित्य, पृ० १४०, १९७१ ई०

१०४. राजस्थान-भारती, भाग १, अंक ४, पृ० २२, जैन कवि कुशललाभ और उनका 'पिंगल-शिरोमणि' छन्द शास्त्र।

१०५. वरदा—जनवरी-मार्च १९७३, पृ० ४८—५०

१०६. परम्परा, भाग १३, पृ० १८०

१०७. डॉ० ब्रजमोहन जावलिया, पिंगल-शिरोमणि का रचियता और रचना-काल (अप्रकाशित लेख)।

१०८ ग्रन्थांक ३२८७०

३

कुशललाभ के साहित्य में चरित्र-विधान

कुशललाभ के साहित्य मे विविध प्रकार के पात्र पाये जाते हैं। इनकी सृष्टि पात्रों के चरित्र की उत्कर्षता बढाने के साथ ही घटना-क्रम के सफल सयोजन के लिए तथा पाठकों एव श्रोताओ मे कुतूहल-वृत्ति जागृत करके रोचकता उत्पन्न करने के लिए की गई है। इस उद्देश्य के लिए कवि ने मानव-अमानव, देवी-देवता, राक्षस, विद्याधर, बावनवीर, सिकोत्तरियो तथा पशु-पक्षियो आदि विविध पात्रो को ग्रहण किया है। इस प्रकार यहाँ लौकिक-अलौकिक, मानव-अमानव का भेद लुप्त हो गया है। पशु भी मानवीय गुणों को धारण करके बातचीत करते है, प्रेमियों के प्रेम की पूर्ति करते हुए संकट के समय उनकी सहायता करते है।

मानवीय सम्बन्धो मे भी यहाँ राजा और निम्न जाति के व्यक्तियों के बीच कोई अन्तर दृष्टिगत नही होता। आगिया वैताल, खापरा चोर और कोड़िया जवारी की मित्रता से जहाँ विक्रमादित्य प्रजा-रक्षक के रूप मे पाठको के समक्ष आया है,[१] वही रेवारी के वचनो का धैर्य पूर्वक अनुमोदन कर ढोला अपनी पत्नी मारवणी से मिल सकने मे समर्थ हुआ है।[२] वस्तुत. कवि ने पात्रो की सवेदनशीलता का इतना निखार किया है कि उसमे मानव ही नही मानवेत्तर सृष्टि भी समाविष्ट हो गई है।

पात्रों का वर्गीकरण

कुशललाभ के साहित्य मे प्रयुक्त पात्रो को हम मुख्य रूप से निम्नलिखित दो वर्गों मे विभाजित कर सकते है—

१. लौकिक पात्र २. अलौकिक पात्र

इनका विस्तृत वर्गीकरण सामने के पृष्ठ तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

१. लौकिक-पात्र

(क) मानव-पात्र

(अ) दैवी-शक्ति वाले मानव पात्र : योगी-योगिनी

दैवी-शक्ति वाले मानव-पात्रो मे ऐसे व्यक्ति होते है, जो अपनी सिद्धियो और करामातो से अलौकिक कार्य सम्पन्न करते है। कुशललाभ के साहित्य मे ऐसे पात्र

पात्र-वर्गीकरण
(१) लौकिक-पात्र
(२) अलौकिक-पात्र
(क) मानव-पात्र
(ख) मानवेत्तर पात्र
(क) दिव्य-पात्र
(देवी-देवता, यक्ष,
विद्याधर, विद्याधरियाँ
एवं अप्साराएँ)
(ख) अदिव्य-पात्र
(राक्षस-व्यंतरी,
सिकोत्तरियाँ)
(अ) दैवी शक्ति वाले
मानव-पात्र
(योगी-योगिनी)
(आ) साधारण
मानव-पात्र
(य) पुरुष-पात्र
(नायक, प्रति नायक,
सेवक अथवा मित्र आदि)
स्त्री-पात्र
(नायिका, प्रति नायिका,
सखी, दूती आदि)
(अ) पशु-पात्र
(आ) पक्षी-पात्र
(इ) प्रकृति के पात्र
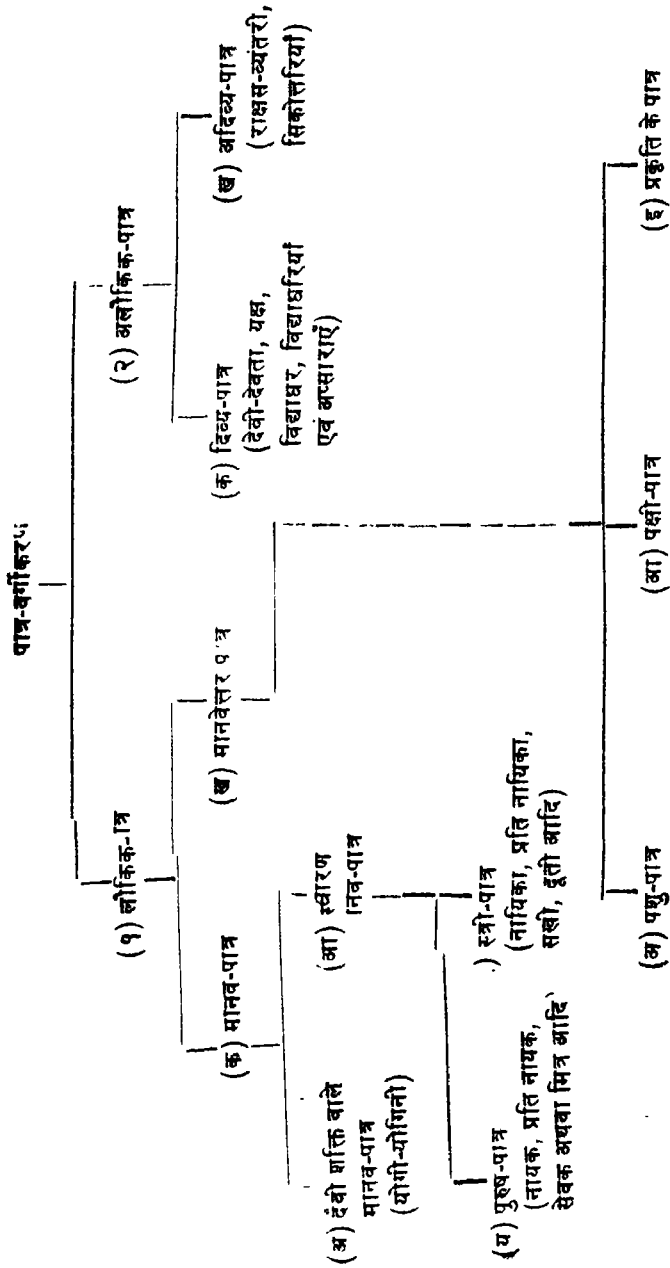
हैं योगी और योगिनी। योगिनी 'ढोला मारवणी चौपई' की पात्र है। इसे सर्वत्र नार्योचित्त भावों से सपृक्त एव परोपकारिणी-रूप मे चित्रित किया गया है। साथ ही कवि ने इस पात्र के माध्यम से कथा मे घटनात्मक मोड दिया है।

कुशललाभ की रचनाओ मे योगी के दो रूप मिलते है—सहायक एवं संहारक। सहायक रूप में योगी 'ढोला मारवणी चौपई' एवं 'तेजसार रास चौपई में वर्णित है। 'ढोला मारवणी चौपई' में योगी अपनी शक्ति के प्रभाव से औषध-आलेपन कर मारू को पुनर्जीवित करता है। इसी भांति 'तेजसार रास चौपई' का प्रथम योगी भयभीत तेजसार को सात्वना देते हुए दो सिद्धियाँ देता है, जिनके द्वारा तेजसार राक्षस को पराजित करता है।[३] इसी कृति का दूसरा योगी सहारक के रूप मे चित्रित है। वह अपनी सिद्धि के लिए बिजयश्री की बलि देना चाहता है, किन्तु तेजसार समय पर पहुँच कर उसे बचा लेता है।[४]

(आ) साधारण मानव-पात्र

कुशललाभ ने अपनी रचनाओ के मानव पात्रों का चरित्र सहज रूप मे चित्रित किया है। इनमे तार्किकता का प्राय. अभाव ही है। इन पात्रो का मुख्य लक्ष्य आदर्श प्रेम के लिए प्रिय-मिलन की प्राप्ति एव उसके द्वारा शम से धर्म-पालन करना है। इसी उद्देश्य की पूर्ति निमित्त कुशललाभ के नायक नायिका सर्वत्र साहसी, निर्भीक, कष्ट-सहिष्णु, धीर, शील, प्रेम-निष्ठ दिखाये गए है। प्राय· सभी प्रतिनायक क्रूर और लम्पट रूप में चित्रित हुए है। नायक-नायिका के मित्र मन्त्री-पुत्र से निम्न वर्गीय खवास, भाट, दीपधारिणी तक है, जो उनके मिलन और सकट के समय सहायक हुए है। इस प्रकार कुशललाभ के साहित्य मे चित्रित मानव-पात्र अपने वर्ग के प्रतिनिधि पात्र हैं। इसीलिए इनमे प्रमुख पात्रो विशेषत. नायक-नायिकाओ की चारित्रिक रेखाएँ तो प्राय स्पष्ट दिखाई देती है, पर गौण-पात्रो का चरित्र अधिक नही उभर पाया है।

(य) पुरुष-पात्र

(१) **माधवानल अथवा मा[illegible]** यह 'माधवानल कामकदला चौपई' का नायक है। कवि ने इसे अत्य[illegible]वान बताया है। उसके रूप पर न केवल नायिका कामकदला ही आ[illegible]पितु नगर की समस्त स्त्रियाँ भी उसके लावण्य पर बलिहारी हैं। मा[illegible]म सुनते ही वे घर के सभी कार्यों को छोड़ कर माधव की ओर दौड़ती [illegible]अन्त मे स्त्रियो की यही कामासक्तता माधव के निष्कासन का कारण होती है। पर माधव इस निष्कासन को अत्यन्त साहस एव निर्भीकमना: स्वीकार भी करता है। जीवन की प्रत्येक गतिविधियो को वह कर्म का फल मानता है।.

कुशललाभ ने माधव को कलाप्रिय, कलामर्मज्ञ एव सच्चे प्रेमी के रूप मे प्रस्तुत किया है। माधव की कला मर्मज्ञता पर प्रसन्न होकर कामसेन मुकुट के अतिरिक्त अन्य सभी आभूषणादि से माधव को पुरस्कृत करता है, जिसे वह पुन. कामकदला की कला के सत्कार पर ही न्योछावर कर देता है।[५] माधव का कामकदला के प्रति सच्चा प्रेम है।

उसके साथ विवाह करने के लिए वह कटिबद्ध है। इस प्रयत्न मे वह राज-कोप, लोक-निन्दा आदि की भी चिन्ता नहीं करता। इस प्रकार माधव एक धीर ललित नायक है।

(२) **विक्रमादित्य**—यह भी 'माधवानल कामकन्दला चौपई' का पात्र है। कवि ने इसे पर-दुःख भंजनकारी के रूप में प्रदर्शित किया है।[७] अपने इसी गुण के कारण जब तक वह माधव को कामकदला नहीं दिलवा देता, वह चैन से नहीं बैठता। ऐसा वह भावुकतावश नही करता, अपितु अपनी दूर दर्शिता द्वारा कामकदला की प्राप्ति के पूर्व माधव और कामकदला के प्रेम की वह पृथक्-पृथक् रूप में परीक्षा करता है।

(३) **गोपीचन्द और कामसेन**—भी उक्त कृति के पात्र ही हैं। इन दोनों राजाओं मे राजसिक गुण है। ये कला प्रिय और न्याय प्रिय है। अपनी कला-प्रियता के परिणाम स्वरूप ही वे विभिन्न समारोह आयोजित करते हैं और उनमे कलाकारों को पुरस्कृत करते हैं। किन्तु अपनी सामन्ती प्रवृत्ति के कारण वे शीघ्र क्रोधित हो उठते हैं। इसीलिए ये कई बार कलाकार का समुचित आदर नही कर पाते। कामसेन द्वारा माधवानल का निष्कासन इसका प्रमाण है।[८]

(४) **ढोला अथवा साल्ह कुमार**—ढोला 'ढोला मारवणी चौपई' का नायक है। वह धीर ललित है। उसमे नायक के सभी गुण, यथा कुलीनता, रूप-यौवन और उत्साह से युक्त तेजस्विता, चतुराई, सुशीलता आदि निहित है। ढोला के प्रेम का उदात्त स्वरूप हम याचको द्वारा मारू के विरह-सन्देश की प्राप्ति के पश्चात् ढोला द्वारा मारू से सयोग के प्रति उत्कष्ट प्रयत्नो एव मारू की मृत्यु पर योगी-योगिनी प्रसग में देख सकते हैं। ढोला की दानवीरता का भी इस कृति मे उल्लेख हुआ है। मारू के भेजे हुए याचकों को वह विपुल दान देता है।[९]

(५) **ऊमरा-सूमरा**—ऊमरा-सूमरा 'ढोला मारवणी चौपई' का खलनायक है। वह सर्वत्र ढोला के मार्ग मे अवरोधक के रूप मे ही चित्रित हुआ है। ऊमरा-सूमरा सम्पन्न, वाचाल एवं षडयन्त्रकारी पात्र है। उसके पास चतुर गुप्तचर है। साथ ही उसमे बदला लेने की मनोवृत्ति भी है। वह समय का लाभ लेना जानता है। अपने इसी गुण के कारण वह षडयन्त्रकारी योजनाओं के आरम्भ करने मे सफल होता है, पर भाग्य उसका सदा साथ नही देता।

(६) **नल**—नल नलवरगढ़ का अधिपति एव ढोला का पिता है। यद्यपि उसमे राज्योचित शालीनता है, फिर भी उसमे धैर्य का अभाव ही है। वह उग्र स्वभावी एवं कठोर-हृदयी है। इसीलिए वह पिंगल को सूचित किये बिना ही अपने पुत्र ढोला का विवाह मालवदेस की राजकुमारी मालवणी के साथ कर देता है तथा ढोला को मारू के साथ हुए उसके विवाह की सूचना भी नही देने देता है।[१०]

(७) **पिंगल** पिंगल पूगल का अधिपति एवं कथा की नायिका मारवणी का पिता है। वह आखेट प्रिय एव रूप लिप्सी है। विपत्ति में भी न झुकने की उसमे प्रवृत्ति है। पर दूसरो की भावनाओ का सत्कार करना उसे आता है। अपने इसी गुण के कारण वह नल के प्रथम प्रस्ताव पर ही मारू के साथ ढोला के सम्बन्ध की स्वीकृति नल को दे देता है।

(८) **सामन्तसी** – सामन्तसी मारू की माता ऊमा देवड़ी का पिता एवं जालोर का अधिपति है। जैसल खवास के साथ हुई बातचीत से यह स्पष्ट होता है कि वह अपने वचनों के प्रति दृढ़ रहने वाला व्यक्ति है। उसके हृदय में अपनी पत्नी के प्रति भी अपार श्रद्धा है। वह अपनी पत्नी झाली के आग्रह पर ही पिंगल के साथ पुत्री ऊमा देवड़ी के विवाह का प्रस्ताव स्वीकारता है। उसका चरित उदात्त एव धीरत्व प्रधान भी है। अपने इन्हीं गुणो के आधार पर पिंगल की बारात की विदाई के समय उदयचन्द के आक्रोश को शान्त करने मे वह समर्थ होता है।

(९) **भाऊ भाट**—भाऊ भाट नलवरगढ़ का एक घुमक्कड़ प्रवृत्ति का पात्र है। सर्वप्रथम दान की लालसा से पूंगल जाते हुए उसका परिचय जगल मे पिंगल राजा से हुआ था। उसमे विपत्तियो मे सहायता करने का उत्तम गुण है। ढोला को मारू से मिलवाने मे उसका विशिष्ट सहयोग रहा है।

(१०) **जैसल खवास**—जैसल खवास राजा पिंगल का निजी सेवक है। भाऊ भाट की भांति ही सकटकालीन स्थितियों में इसने पिंगल की सहायता की है। पिंगल का ऊमा देवड़ी के साथ विवाह की कल्पना उसीके द्वारा सार्थक हुई। साथ ही मारवणी को ढोला से मिलवाने मे भी इसके ही प्रयत्न सार्थक हुए।

(११) **जिनपाल और जिनरक्षित**—ये 'जिनपालित जिनरक्षित सन्धि गाथा' के पात्र हैं। कृति के रोमान्चक कथानक से स्पष्ट होता है कि इन दोनों भाइयों मे अपूर्व भ्रातृत्व-भाव है। माता-पिता के प्रति आज्ञाकारिता भी उनमे समाहित है। जिनरक्षित मे जिनपाल की अपेक्षा मानवीय दुर्बलताएँ अधिक हैं। वस्तुत: ये दोनों कवि के जातीय चरित्र हैं। अपने उद्देश्यानुरूप उसने पात्रो मे ऐसी चारित्रिक दुर्बलता एव सबलता का समावेश किया है।

(१२) **अगड़दत्त**—अगड़दत्त कुशललाभ की कृति अगड़दत्त रास का नायक है। वह धीर ललित एव धीर उदात्त गुणो से युक्त है। अपने साहस एव निडरता के परिणाम स्वरूप ही वह मार्ग की अनेक कठिनाइयों का सामना करने में सफल होता है। आरम्भ मे यद्यपि अगड़दत्त दुर्गुणों से सम्पन्न है, किन्तु भुजगम चोर से अपनी ही कथा सुनकर वह सुचरित्र धारण करता है। दीक्षित हो जाने पर उसकी समस्त आचार-संहिता ही वह बदल लेता है। अब उसके लिए नारी का प्रेम कुटिल एव अविश्वसनीय है।[१०]

(१३) **सोमदत्त**—सोमदत्त अगड़दत्त के पिता सूरसेन का मित्र है। व्यवसाय से वह अध्यापक है। अतः उसका निरीक्षण भी सूक्ष्म है। अपनी सूक्ष्म दृष्टि के कारण ही वह अगड़दत्त और मदन मजरी के प्रेम को आडम्बर न बना कर स्वय राजा के पास जाकर उनके विवाह का निर्णय करवाता है। इस प्रकार सोमदत्त तत्कालीन प्रचलित तपोवन शिक्षा प्रणाली के शिक्षक का प्रतिनिधित्व करता है।

(१४) **भुजंगम चोर**—'अगड़दत्त रास' का पात्र भुजगम असत् प्रवृत्तियों का प्रतीक है। किन्तु असत् प्रवृत्तियो मे भी सद्-प्रवृत्तियो का सचार सम्भव है। इस सत्य को भी भुजगम चोर सिद्ध करता है। कवि ने आरम्भ मे उसे चोर रूप मे चित्रित किया है, किन्तु मदन मजरी द्वारा अपने पति (अगड़दत्त) के साथ किये व्यवहार को देखकर उसकी

मान्यताएँ बदल जाती हैं। भुजगम चोर द्वारा इस आचरण का पालन कवि ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त किया है।

(१५) **तेजसार**—तेजमार 'तेजसार रास चोपई' का नायक है। वह अपने पिता का मनोतियों से प्राप्त इकलौता पुत्र है। कवि ने उसे विमाता द्वारा प्रदत्त कष्टों से से पीड़ित बताया है। किंतु अदम्य साहस, शौर्य और निर्भीकता का वह आकर है। उसके इसी वैभव पर राजकुमारियाँ आसक्त होकर उससे परिणय निमित्त वन-वन भटकती हैं।[१२] उपकारिता से भी तेजसार ओत-प्रोत है। अपने इसी गुण के कारण वह योगी द्वारा बन्दी की हुई विजयश्री एव पद्मावती राजकुमारियों को मुक्त करवाता है। अपनी धीर-ललित प्रवृत्तियो के कारण अन्य राजस्थानी आख्यानों के नायको की भाँति अनेक नारियों (विद्याधरियो) से विवाह करता है, पर इन सभी के साथ वह एक आदर्श प्रेमी की भाति कर्त्तव्य निभाता है। व्यतरी की कन्या एणामुखी से विवाह करने के पश्चात् वह अपनी पूर्व विवाहिता पाँचो विद्याधरियों को भी वहीं बुलवा लेता है। इन सभी विशेषताओं के साथ तेजसार के चरित्र की प्रमुख विशेषता उसकी आज्ञाकारिता है। यद्यपि वह अपनी विषमता एव पिता के क्रोध से तिरस्कृत हो वन-वन भटक रहा है, किन्तु पिता का संदेश प्राप्त कर वह शीघ्र ही उनके पास पहुँचता है।[१३]

(१६) **भीमसेन**—राजा भीमसेन श्रीपुर नगर का गौरवशाली शासक एव 'भीमसेन हसराज चोपई' का नायक है। वह प्रजा की भावनाओं का आदर करने वाला तथा कला का पोषक है। अपने इन्ही गुणों के आधार पर वह सामान्य नागरिक के कहने पर तुरन्त एक बगीचे का निर्माण करवाता है। मदनमजरी के पत्र को प्राप्त कर उसके साथ विवाह करना भी भीमसेन के इसी गुण की ओर संकेत करता है। प्रजा की भाँति ही अपने परिवार के प्रति भी उसका घनिष्ठ स्नेह है। पुत्र हसराज के देर तक न लौटने पर वह स्वय सेना के साथ पुत्र की खोज के लिए रवाना होता है।

(१७) **हंसराज**—हसराज अपने पूर्व भव में हस जाति का पक्षी था। वह भी अपने पिता के समान ही अदम्य वीरता एवं साहस का पुंज है। बंदर के मना करने पर भी वह विकराल एवं नृशंसी सिंह का संहार करके विजन वासियो को स्वच्छन्दता प्रदान करता है। पिता के मना करने पर भी जिज्ञासावश वह नदी-तट पर पहुँचकर राजकुमारी की रक्षा करना चाहता है। ये सब उसके साहस के ही परिणाम हैं।

(१८) **सगरराय**—'भीमसेन हसराज चोपई' का प्रति नायक है सगरराय। अतः उसका ईर्ष्यालू एव वैमनस्यपूर्ण व्यवहार का चित्रण कृति मे स्वाभाविक ही बन पड़ा है।

इन पुरुष-पात्रो के अतिरिक्त कुशललाभ के साहित्य मे शकरदास पुरोहित, द्वारपाल (माधवानल कामकंदला चोपई मे); सेठ माकदा और उसकी पत्नी (जिनपालित जिनरक्षित सधि गाथा मे); शूरसेन, अभगसेन, महाजन सागरदत्त (अगड़दत्त रास में); वीरसेन, समरसेन, शूरसेन (तेजसार रास चोपई मे); हितसागर, रिणकेसरी, सुमती, स्यंघराज (भीमसेन हसराज चोपई मे) आदि पात्रों का भी उल्लेख है। किन्तु इनकी चारित्रिक रेखाएँ पूर्ण रूप से नही उभर पाई हैं।

(र) स्त्री-पात्र

१. कामकंदला—कामकदला 'माधवानल कामकदला चौपई' की नायिका है। यद्यपि वह वेश्या है, किन्तु उसमें जो चारित्रिक उच्चता मिलती है, उससे वह सीता और सावित्री के पवित्र चरित्रों के समकक्ष जा बैठी है। अपने प्रेमी माधव की प्राप्ति के समक्ष वह राजकोप की भी चिन्ता नही करती। उसकी प्रेमनिष्ठा की पराकाष्ठा उस अवसर पर व्यक्त होती है, जब राजा विक्रमादित्य से माधव की मृत्यु के मिथ्या समाचार को सुनकर अपने प्राण त्याग देती है।[१४]

२. मारवणी—मारवणी 'ढोला मारवणी चौपई' की नायिका और पूगल की राजकुमारी है। पूगल मे भयकर अकाल के समय उसका विवाह पुष्कर मे डेढ़ वर्ष की आयु मे ही नलवरगढ के राजकुमार साल्हकुमार ढोला से कर दिया गया था। मारवणी को काव्य मे रूपवान, विरहदग्ध एव पति परायणा चित्रित किया गया है। वह ललित कला-प्रिय एव विलक्षण है।

३. मालवणी—मालवणी मालवदेस के राजा भीमसेन की पुत्री एव 'ढोला मारवणी चौपई' की प्रति-नायिका है। तज्जनित ईर्ष्या, द्वेष और वाचालता उसके चरित्र मे निहित है। वह इतनी पटु है कि मारवणी के सदेश-वाहको को नलवरगढ़ की सीमा तक आने ही नही देती। उसमे पति के साथ तर्क करने का भी साहस है। इन्ही तर्कों के सहारे पूरे एक वर्ष तक वह ढोला को पूगल जाने के लिए रोके रहती है। मालवणी की यह प्रवृत्ति जहाँ उसके प्रेम की एकाग्रता सूचित करती है, वही उसके ईर्ष्यालू मानस को भी स्पष्ट करती है।

४. मदनमंजरी—कुशललाभ कृत 'अगड़दत्त रास' की मदनमजरी स्त्री के मिथ्या चरित्र की प्रतिनिधि पात्रा है। उसके जीवन का मूल ही विषय-वासना है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह अगड़दत्त से प्रणय प्रस्ताव करती है। गवाक्ष मे बैठी वह अगडदत्त के साथ प्रणय की कल्पना करती हुई उसे निहारती ही रहती है।[१५] चोरो के साथ प्रेम-प्रस्ताव एव पर-पुरुष के साथ सम्भोग की घटनाएँ भी उसकी कामुकता की परिचायक है। वस्तुतः उसमे प्रेम के आदर्श की अपेक्षा मिथ्याडम्बर ही अधिक है। उसका ऐसा चरित्र प्रस्तुत करना जहाँ कवि की उद्देश्य पूर्ति थी, वहीं नारी-सत्य का उद्घाटन भी।

५. कोशा—यह कवि की 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' की नायिका है। यद्यपि यह वेश्या है, किन्तु प्रेम के प्रति वह बड़ी ईमानदार है। आरम्भ से ही उसका प्रेम स्थूलिभद्र से रहा है। जब वह गुरु की आज्ञा से चातुर्मास बिताने पुनः कोशा की चित्रशाली मे आता है, तब वह स्थूलिभद्र से सम्भोग के लिए अनेक निवेदन करती है। पर स्थूलिभद्र तनिक भी विचलित नहीं होता। इसके विपरीत जब अन्य श्रावक मात्र सम्भोग की कामना से ही उसकी चित्रशाली मे चातुर्मास-यापन को आता है, तो वह उसे आदर्श उपदेश देती है। इस प्रकार कोशा मे सच्चे प्रेमी की परीक्षा का गुण भी निहित है।

६. मदनमंजरी—मदनमंजरी 'भीमसेन हसराज चौपई' की नायिका है। प्रेम

के प्रति उसका एक निश्चित दृष्टिकोण है—वर की योग्यता। योग्य वर भीमसेन की प्राप्ति निमित्त वह स्वय अग्नि-प्रवेश के लिए भी तत्पर है। प्रेम की अनन्यता के कारण ही वह पोपट (तोते) को पत्र देकर भीमसेन के पास भिजवाती है तथा पिता की अवज्ञा कर त्रिपुरा देवी की मनौती के लिए चल पड़ती है।[१६]

७. **कमलावती**—कमलावती 'भीमसेन हसराज चौपई' की नायिका मदनमजरी की माता है। वह अपनी पुत्री का विवाह-सम्बन्ध अधिक दूर नहीं करना चाहती। चाहे दूर का वर कितना ही योग्य क्यों न हो इससे स्पष्ट है कि वह सामन्ती एवं रुढ़िग्रस्त मान्यताओं की पोषिका है। इस विचारधारा से उसके सहज स्वभाव की अभिव्यक्ति भी होती है, जो तद्‌युगीन नारी की प्रमुख विशेषता थी।

८. **विजयश्री**—विजयश्री 'तेजसार रास चौपई' की पात्रा है। इसकी माता का नाम चम्पकमाला और पिता कनककेतु है। यह सात भाईयों की अकेली बहन है। राजस्थानी समाज मे ऐसी बहन बडी भाग्यशालिनी मानी गई है।

कवि के अनुसार विजयश्री रूप लावण्य की रानी है। भारतीय नारी का शील उसकी धरोहर है। इसीलिए योगी द्वारा अपहृत होने पर अपनी रक्षार्थ वह मात्र तेजसार को ही पुकारती है। तेजसार के अतिरिक्त सभी पुरुष उसकी दृष्टि मे उसके भाई है। तेजसार से बिछुड जाने पर व्याकुल हो उठती है। वह सच्ची पति परायणा है। इसीलिए वह अवसर पाते ही विद्याधर का सिर तलवार से काट देती है—

विजयासिरी ते अवसरि लही, खडग झालि तसु पूठि रही।
कत वैर वालवा जगीस, विद्याधर नउ छेद्यो सीस॥ चौ० २२१

९. **एणामुखी**—यह भी तेजसार रास की ही पात्रा है। यह अवन्तीपुरी के शासक जयनृप की कन्या है, जिसका जन्म योगी द्वारा दिए गए फल से विधवा तिलकाउरी की कोख से हुआ है।

मृगों को चराती हुई एणामुखी का सम्भोग तेजसार से हुआ। वह तभी से उस पर आसक्त है। उसने तेजसार के साथ विवाह का भी दृढ सकल्प कर लिया है। माता उसकी प्रतिज्ञा को पूर्ति करती है और अपनी व्यतरी रूप मे तेजलपुर नगर का भी निर्माण करती है।

इन प्रमुख स्त्री-पात्रों के अतिरिक्त प्रसगवश, घटना सयोजन एव उसके विकास के लिए कवि ने कुछ और स्त्री-पात्रों को ग्रहण किया है, जो इस प्रकार हैं—रुद्रादेवी, भोग विलासिनी वेश्या (माधवानल कामकदला चौपई), रेबारिन, ऊमा देवड़ी, नल की पत्नी, दीपधारिनी (ढोला मारवणी चौपई), सोहग सुन्दरी, वीरमती (अगड़दत्त रास), श्रीमती पद्मावती (तेजसार रास चौपई), प्रीतममजरी, कनकवती, रूपमती और नारदपुरी की राजकुमारी (भीमसेन हसराज चौपई) आदि।

(ख) मानवेतर पात्र

कवि ने अपनी कथाओं की उद्देश्य-पूर्ति, विकास एव कौतूहल-निर्माण के लिए

मानवेतर-पात्रों को भी अपनी रचनाओं में पात्र-रूप में स्थान दिया है। ऐसे पात्र हैं— ऊँट, घोडा, हाथी, गधा, बदर, तोता, हंस, क्रौंच, चकवा-चकवी, सांप, पतंग आदि। इनमें से ऊँट, बदर, हाथी, हंस, तोता, क्रौंच आदि मानवेतर पात्रों ने मानव-पात्रों की किसी-न-किसी रूप में सहायता की हैं। शेष पात्र उपमान रूप में अथवा विध्वंसक रूप में प्रस्तुत हुए हैं। 'ढोला मारवणी चौपई' का ऊँट जहाँ ढोला को उसकी परिणिता मारवणी से मिलवाने के लिए कटिबद्ध है, वही 'भीमसेन हंसराज चौपई' का तोता भी मदनमंजरी का विवाह किसी भी भाँति भीमसेन के साथ करवाने को उत्सुक है। क्रौंच पक्षी भी मारवणी के सदेश को उसके प्रियतम ढोला तक पहुँचाने के लिए प्रयत्नशील है।[१७] हस स्वयं भीमसेन के पुत्र के रूप मे जन्म लेता है[१८] तथा घोड़ा और बंदर हंसराज के साथ विविध रोमांचक कार्यों का संयोजन करते है।[१९]

२. अलौकिक पात्र

कुशललाभ के साहित्य मे अलौकिक पात्रो की सृष्टि निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति करती है—

१. दुष्ट व्यक्तियो के विनाश के निमित्त।
२. प्रेम-पथ के पथिकों की सकट के समय सहायता करने के लिए।
३. नायक-नायिका या अन्य पात्रो की परीक्षा लेने के लिए।
४. कथा को सुखान्त बनाने के लिए प्रेमी-प्रेमिका की मृत्यु पर उन्हे पुनर्जीवित करने के निमित्त। और
५. कथा में कुतूहल एव चमत्कार उत्पन्न करने के लिए।

(क) अलौकिक दिव्य-पात्र

१. देवी-देवता—'महामाई दुर्गा—सातसी' म देवताओ ने विभिन्न असुरो से अपने उद्धार के लिए देवी की स्तुति की है।[२०] जगदम्बा छन्द[२१] अथवा 'भवानी छन्द'[२२] में भी कवि ने देवी के अनेक नामों एव रूपो का स्तवन किया है, किन्तु विशेष रूप मे अन्य रचनाओ मे कुशललभ ने हरसिद्धि देवी, चक्रेश्वरी, हिंगुलाज औरा पद्मावती नाम ही दिए है। 'भीमसेन हंसराज चौपई' मे उल्लेख है कि मदनमजरी ने भीमसेन से विवाह करने के लिए मनौती रूप मे हिंगुलाज की स्तुति की[२३] तथा हंसिनी ने भी अपने पति के विवाह के अवसर पर भीमसेन की कुलदेवी चक्रेश्वरी और कुलदेवता की पूजा की।[२४]

२. शिव-पार्वती—शिव और पार्वती दयालु देवी-देवता कहे गए है। इसी रूप मे कुशललाभ ने इनको अपने साहित्य मे ग्रहण किया है। माधवानल कामकदला चौपई मे वर्णन है कि उमा-रमण की इच्छा से तपस्या भग होने पर वह इस स्खलन से पुरोहित शंकरदास के पुत्र-सकट को दूर करते है[२५] और मारवणी को ढोला जैसे श्रेष्ठ वर की प्राप्ति भी गौरी पूजन का ही कारण है।[२६]

३. इन्द्र—देवराज इन्द्र को वैभव और ऐश्वर्य के अधिष्ताता देवता के रूप मे चित्रित किया गया है। इन्द्र के इस महत्त्व पर ही समाज में इन्द्रमहोत्सव की प्रथा है।

कुशललाभ कृत 'माधवानल कामकंदला चौपई' में कामसेन इन्द्रमहोत्सव का आयोजन करता है[२७] तथा इन्द्र के आदेश की अवज्ञा पर जयन्ती अप्सरा शाप की भागिनी होकर मृत्यु लोक में जन्म लेती है।[२८] 'शत्रुंजय यात्रा-स्तवन' मे भी इन्द्र की विशेष महत्त्व से पूजा करने का उल्लेख है।[२९]

४. **यक्ष**—यों तो राजस्थानी प्रेमाख्यानो में यक्ष का क्रूर रूप ही मिलता है किन्तु कुशललाभ की 'जिनपालित जिनरक्षित सधि गाथा' में यक्ष शैल एक दयावान एव सहायक के रूप में चित्रित है। वह दक्षिण बनखण्ड मे सिकोत्तरी से जिनपालित और जिनरक्षित की रक्षा कर जिनपाल को उसके घर तक पहुंचाता है।[३०]

५. **विद्याधर और विद्याधरियाँ**—कुशललाभ के काव्य में विद्याधर की अपेक्षा विद्याधरियों की बहुलता है। विद्याधरियों ने कुशललाभ के नायक के साथ विवाह किया है,[३१] जबकि विद्याधर प्रेमी-प्रेमिकाओं को पुनर्जीवित कर उनके संयोग में सहायक बना है। किन्तु कुशललाभ की 'तेजसार रास चौपई' मे उसका विध्वमक रूप भी देखने को मिलता है। इसमें विजयश्री आदि विद्याधरियों के साथ तेजसार को बैठा देखकर विद्याधर आपत्ति करता है[३२] और वह तेजसार से अपनी विभिन्न शक्तियों द्वारा युद्ध करता है।[३३] 'अगड़दत्त रास' मे विद्याधर मदनमंजरी को पुनर्जीवित कर तथा मदन मजरी के आचरण का उद्‌घाटन कर प्रेमी अगड़दत्त का सहायक सिद्ध हुआ है।[३४]

६. **अप्सराएँ**—यहाँ 'माधवानल कामकन्दला चौपई' में अप्सरा जयन्ती का उल्लेख हुआ है जो देवराज इन्द्र की सभा में प्रमुख नर्तकी है। जयन्ती ने इन्द्र के दरबार की मर्यादा भंग करके माधव से प्रेम किया।[३५] इस प्रेम की इतनी सात्विकता है कि कामकदला रूप में अपने दूसरे जन्म मे भी उसने माधव के साथ प्रेम निर्वाह किया।

(ख) अलौकिक अदिव्य-पात्र

१. **दानव और राक्षस** कवि ने नायक के अद्‌भुत साहस एव शौर्य के प्रदर्शन निमित्त यथा-प्रसग दानव और राक्षसादि को भी पात्रो के रूप मे ग्रहण किया है। 'तेजसार रास चौपई',[३६] 'महामाई दुर्गा सातसी'[३७] कृतियों में ऐसे ही पात्रों द्वारा नायक अथवा नायिका के साथ युद्ध करवाकर पात्रों के चरित्र की उदात्तता स्पष्ट की है।

२ **वैताल**---वैताल दिव्य शक्ति सम्पन्न पात्र एव विक्रमादित्य के सहयोगी के रूप मे ही सर्वत्र चित्रित हुआ है। 'माधवानल कामकदला चौपई' में वर्णित है कि वैताल अपनी अदिव्य शक्ति द्वारा पाताल लोक से अमृत लाया और माधव तथा कामकदला को उसके द्वारा पुनर्जीवन प्रदान कर अपने साथी विक्रमादित्य को सकट से बचाया।[३८]

३. **सिकोत्तरियाँ**—कुशललाभ के साहित्य मे सिकोत्तरियाँ विध्वंसक रूप में चित्रित हुई हैं। कवि की रचना 'तेजसार रास चौपई' की पडिलाइन सिकोत्तरी है, जो अपने पति के छात्रों का उपयोग अपनी सिद्धियो के लिए करती है।[३९] सिकोत्तरी की इस प्रवृत्ति का प्रतिशोध तेजसार लेता है। इसी भाँति 'जिनपालित जिनरक्षित सधि गाथा' में भी सिकोत्तरी का जिनरक्षित के साथ ऐसे ही छद्म रूप में विवाह का उल्लेख है।[४०]

पात्रों की ऐतिहासिकता

इस प्रकार कुशललाभ की कथाओं के पात्र विभिन्न प्रवृतियों को लिए हुए हैं, किन्तु सभी पात्र इतिहास-शून्य नही लगते। ढोला (साल्हकुमार), मारवणी, मालवणी, नल, पिंगल, विक्रमादित्य इत्यादि इतिहास-प्रसिद्ध पात्र हैं। ग्वालियर और मारवाड़ राज्य के इतिहास इसके साक्षी है। प्रचलित व्रतादि सम्बन्धी कथाओं में भी इनका यथा-प्रसग उल्लेख हुआ है। इन सभी की व्यापक व्याख्या हमने अगले अध्याय में की है।

कामसेन, तेजसार, भीमसेन आदि पात्र भी ऐतिहासिक होने चाहिए। इनके शासन-स्थल पुष्पावती नगरी, कामावती नगरी, कुसुमपुर, पाडलिनगर, चंपावती, श्रावस्ती आदि का ऐतिहासिक उल्लेख विपुल मात्रा में प्राप्त है।[४१] अतः इनका अस्तित्त्व इन नगरों में कभी न कभी अवश्य रहा होगा।

मुहता नैणसी री ख्यात में रावल भीमसिंह की कुण्डली (जन्म पत्रिका) दी गई है।[४२] यह कुशललाभ के आश्रयदाता रावल हरराज का पुत्र था। इनका जन्म वि० सं० १६१८ मे हुआ। इस समय तक कुशललाभ ने दो पुष्ट रचनाओं का निर्माण कर लिया था। सम्भव है इसी भीमसिंह को कवि ने 'भीमसेन हंसराज चौपई' के नायक रूप मे भीमसेन नाम मे स्वीकार किया हो। यह धारणा रचना के अन्त में दी गई विभिन्न राजाओ की सूची से भी पुष्ट होती है। चूंकि जैसलमेर का विधिवत् विस्तृत इतिहास अभी तक प्रकाश में नही आया है, अतः यह सूची धूमिल ही है और इस रचना की ऐतिहासिकता भी सदिग्ध ही। कुल मिलाकर यह स्पष्ट है कि कवि के पात्रों में ऐतिहासिकता ढूंढी जा सकती है।

सन्दर्भ

१. मो० द० देसाई, आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० क० चौ०।
२. डॉ० जावलिया की प्रति, ढोला-मारवणी चौपई।
३. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्र० २६५४६
४. जोगी तोइ न मानै वात, थायउ नारी करेवाघात
कुमर जोगी बाहै धर्यउ, सबलउ देखि योगी मुनि डर्यउ ।।८६

× × ×

कुमर लीय उखड गउ टालि, पछइ करइ नारी संभालि।
खडग साथि तिणि काट्या बधि, कुमरि तै मनि अति आणद ।।६१
५. माधव जिहां नगर मांहि फिरइ, देखई ते नारी मन हरई।
जिम संभलइ माधव नो नाम, तिम धावई मूकै घर काम ।।१२६
६ आ० का० म०, मौ० ७, चौ० २१४
७. वही, परदुख भजण विरूद जासु, इहक जन पूरवई आस ।।३७१
८. आ० का० म०, मौ० ७, चौ० २१६-२१९

९. वीस तीहां आपिया ग्रहास, फदिआ दिआ सहस पंचास।
वागा वस्त्र अपूरब वली, संतोष्या पुगी मन रली ॥३२६
१०. अणी अवसिर नलवर पट घणी, आलोचे श्रेवड आपणी।
परणी स्त्री तिं मारू तणी, मति कहो कोई ढोला भणी ॥१९२
११. अगड़दत्त मनिमेकरि कलेस, संभलि धर्म तणउ उपदेस।
कुटिल चरित बहू नारी तणां, अंग उपाग कह्या अति घणा ॥३११
१२. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्र० २६५४६, चौ० १०८-१०९, २८४-२८५।
१३. आव्यउ तेजसार भूपाल, परदल भाजि गया ततकाल

× × ×

जाई मत्रेई नइ लागउ पाय, हरषित खोलइ तेड़इ माय।
साचउ तू सपुत्र माहरो, मुझ ने ए पडीयो पांतरो ॥३५१-३५४
१४ आ० का० म०, मौ० ७, चौ० ५७९, ५८५
१५. ते गुषई बइठी सुन्दरी, पेषिउ कुमर प्रीति मनि धरी ॥३९
१६. सुणो पिताजी बोलूं सांच, वृथ न जायइ माहरी वाच ॥१६३

× × ×

ते अनुक्रमि आवी वन मांहि, देवी भुवन पडी दुष दाहि।
देइ उलंभा देवी भणी, माहरी भगति तुम्हे नविगिणी ॥१६८
१७. डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०।
१८ एल० डी० इस्टीट्यूट, अहमदाबाद, ग्रन्थ ला० द० १२१७, भी० ह० चौ०।
१९. वही
२०. अनूप संस्कृत लायब्रेरी, ह० लि० ग्र० ६८ (घ)
२१. रा० प्रा० वि० प्र०, उदयपुर, ह० लि० ग्र० ६०२
२२. श्री पूज्य जी के संग्रह की प्रति, ग्रं० ५७ वाई १०१२
२३. जय-जय माता जगदीश्वरी, मेटी भावइ भवनेश्वरी
हुं हुं तुम्ह सेवक हीगलाज, कृपा करी मुझ सारो काज ॥१४२
—आरियण्टल इन्स्टी० आफ इंडोलोजी, अहमदाबाद, ग्र० ला० द० १२१७
२४. वही, चौ० ४९४
२५. आ० का० म०, मौ० ७, चौ० ३८-५०
२६. एक कहे तुठो किरतार, पूजी गोरू घणे प्रकार।
तोहिज मारवणी ढोले मीली, बहुं सारीषी जोडी जुडी ॥७३३
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढोला मारू चौ०।
२७. आ० का० म०, मौ० ७, चौ० १६६
२८. वही, चौ० २४
२९ चैत्र सुदि पंचमि विरची पूज विसाल
सहु संघ समुच्यइ तिहां पहिरावी इन्द्र माल ॥७४
—अभय जैन ग्रन्थालय, ग्रं० ७७४४

३०. *जिण पालग सेलग पूठइ रहयउ जी, सायर लंघिउ न सेस*
चंपापुरि जबइ पहुंचा हिया जी, जिन घर करइ प्रवेस ॥६७
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २७२६६

३१. वही, ग्रन्थ २६५४६, ते० रा० चौ०।

३२. रीसइ भर्यो बहिन प्रति मणै, एकुण नर पासै तुझ तणै ॥१५८ —वही।

३३. विद्याधर बल फेरी रूप, विद्याधर थयउ हाथी रूप ॥१६२

३४. विद्याधर ते देखी कुमार, दयावंत अति थयउ अपार।
विषनउ दडउ माहरउ, हो उगर इस धारिताहरउ ॥२५७
मयण मजरी साजी थई, अगड़दत्त नी चिंता गई॥२५८
कहि विद्याधर सुणउ कुमार, ताहरइ एह सिउ प्रेम अपार।
पण नारी हुइ नीठर जाति, विद्याधर कहि बातकवात॥२५९
—भ० प्रा० वि० मं०, पूना, ग्रं० ६०५

३५. आ० का० म०, मौ० ७

३६. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्र० २६५४६

३७. अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, ग्र० ६८ (घ)

३८. आ० का० म०, मौ० ७

३९. पिढ्याणी पापिणी जै खरी, ते छड सूधी सीकोत्तरी ॥२१
कुमरइ सगलुं दीठुं नरी, सही ए सूधी सिकोत्तरी।
जिण दिन नही धरे खउ घास, तिण दिन नेसालीया विणास ॥५८

४०. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २७२६६

४१. विजयेन्द्र कुमार माथुर—ऐतिहासिक स्थानावली, १९६९ ई०

४२. स० नारायण सिंह भाटी—मुहता नैणसीरी लिखी मारवाड़ रा परगना री विगत, तृतीय भाग, पृ० ३५० (प्रथम सस्करण)।

४

कुशललाभ की प्रेमाख्यानक रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन

कुशललाभ ने लगभग आठ (जैन एवं जैनेत्तर) प्रेमाख्यानकों का प्रणयन किया।[1] इनमे जैनेत्तर प्रेमाख्यानकों का उद्‌गम लोक मे प्रचलित कथाएँ है। जैन रचनाओं का मूल स्रोत जैन-आगम ग्रन्थ ही हैं। इन सभी का यथा-प्रसग विवेचन किया गया है। कवि की दो प्रेमाख्यानक रचनाएँ जिनपालित जिनरक्षित संधि गाथा 'तेजसार रास चौपई' एव 'भीमसेन हसराज चौपई' सम्बन्धी पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती कोई रचना उपलब्ध नही होती। इन दोनो ही रचनाओं मे क्रमशः श्री सुव्रत स्वामी[2]; ऋषि श्रीराम और नवम् गणधर अचल भ्राता का उल्लेख हुआ है। मुनि सुव्रत स्वामी का उल्लेख जैन-उत्तर पुराण तथा जैन-धर्म के मौलिक इतिहास[3] मे प्राप्त है। इसमें तेजसार नाम के शिष्य का तो वर्णन नही मिलता, किन्तु उनके अनेक शिष्यों के होने की चर्चा अवश्य की गई है। इस आधार पर 'तेजसार रास चौपई' का उद्‌गम-स्रोत जैन उत्तर पुराण को कहा जा सकता है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा कि कुछ सग्रहालयों में जयमन्दिर द्वारा रचित तेजसार रास की प्रतियाँ भी सग्रहीत है। किन्तु अन्वेषण पर यह रचना कुशललाभ की ही सिद्ध होती है। अतः इसे पूर्ववर्ती रचना कहना अनुचित होगा।

'भीमसेन हसराज चौपई' मे वर्णित ऋषि श्री राम का उल्लेख किसी जैन-आप्त ग्रन्थ मे नही मिलता। हाँ महावीर स्वामी के नवम् गणधर अचल भ्राता आगम प्रसिद्ध चरित्र है। कुशललाभ ने अपनी इस रचना का स्रोत उन्ही के द्वारा अपने शिष्य पिंगल को राजहस के वृत्तात को सुनाने से माना है (चौपई ६१६)।

यहाँ हम पहले कुशललाभ के जैनेतर प्रेमाख्यानकों का उद्‌गम एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करेंगे तदुपरान्त जैन काव्यो का।

(क) माधवानल कामकंदला चौपई और माधवानल कथा के अन्य रूप

माधवानल कामकदला एक लौकिक प्रेमाख्यान है, जिसका सम्बन्ध उज्जैनी के सम्राट विक्रमादित्य से सम्बन्धित सिहासन द्वात्रिंशिका से है। विक्रमादित्य की न्याय-प्रियता को लेकर कई एक कहानियाँ-लोक में प्रचलित हो गई थी। सिंहासन द्वात्रिंशिका उन्हीं में से छंटी हुई ३२ कहानियों का संग्रह है। सस्कृत मे विरचित इस संग्रह के लौकिक

भाषाओं में भी अनेक अनुवाद हो चुके हैं। विक्रमकुमार रास, विक्रमसेन रास चौपई, वैताल पच्चीसी आदि और भी इसी वर्ग की कथा-कृतियाँ हैं । उक्त माधवानल कामकंदला कथा सिंहासन द्वात्रिंशिका की २६वीं कथा है ।

माधवानल कामकदला सम्बन्धी प्रेमाख्यान यद्यपि 'ढोला-मारू' और 'सदयवत्स-सावलिंगा' की कथा की भाँति ही लोक प्रसिद्ध है, फिर भी इसका स्रोत विवादास्पद ही बना हुआ है । वैदिक वाङमय एव पुराणों में माधवानल या कामकंदला से सम्बन्धित कोई कथा नही मिलती । इसके पश्चात् प्राकृत और अपभ्रंश की लोक-कथाओं के मानक ग्रन्थ 'कथा सरित्सागर,' 'सिंहासन द्वात्रिंशिका', 'वेताल पचविंशति' मे विक्रमादित्य की कथाएँ तो मिलती है पर माधवानल अथवा कामकंदला के नाम का उल्लेख नही मिलता । किन्तु 'कथा सरित्सागर' मे ईल्लक नाम के वणिक् की स्त्री के विरह से मृत्यु, श्रीधर की बात में कुमुदिका का श्रीधर पर प्रेम[४] तथा क्षेमकर की 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' की २६वीं बात मे उल्लिखित धनद-श्रेष्ठी द्वारा बताये गए द्वीप के देवालय मे लिखित लेख को पढ़कर विक्रम द्वारा खड्ग ग्रहण कर स्त्री एव पुरुष को पुनर्जीवन देने के लिए अपने मस्तक को काटने की घटना[५] आदि में इस कथानक का उद्‌गम ढूंढ़ा जा सकता है ।

स्व० पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इस कथा का स्रोत विक्रम की पहली शताब्दी के लगभग मानते हैं।[६] यह मान्यता स्वीकारी जा सकती है, किन्तु साहित्य मे इसका आरम्भ आनन्दधर कृत कामकंदला आख्यान और कनक सुन्दर कृत 'माधवानल नाटक' से ही कहना उचित होगा । दोनों ही में रचनाकाल का कोई उल्लेख नहीं है, अत: इनकी प्राचीनता के विषय मे कुछ नहीं कहा जा सकता । कायस्थ कवि गणपति के माधवानल, कामकंदला, दोग्धक प्रबन्ध, कुशललाभ की माधवानल कामकंदला चौपई और दामोदर की 'माधवानल कथा' मे आनन्दधर के सस्कृत के श्लोकों से आनन्दधर की प्राचीनता का अनुमान लगता है। पर उक्त दोनो ही रचनाओ में इन कथाओं मे आई माधव और कदला के शाप की कथा का उल्लेख नही है। बहुत सम्भव है जयन्ती और माधव का प्रसग (माधवानल और कामकदला के पूर्वजन्म की कथा) कायस्थ कवि गणपति की ही मौलिक कल्पना रही हो ।

'माधवानल आख्यान' की परम्परा ही बाद में देश भाषाओं से होती हुई वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओ में आई । उर्दू और फारसी के कवियो ने भी इन्ही कथा-रूपान्तरो का अनुवाद अपनी भाषाओ मे किया । माधवानल से सम्बन्धित अद्यावधि प्राप्त रचनाएँ निम्नलिखित हैं--

१. 'माधवानल आख्यान' आनन्दधर विरचित ।[७]
२. माधवानल कामकदला दोग्धक (अपभ्रंश मिश्रित गुजराती) कायस्थ कवि गणपति कृत, रचना-संवत् १५८४ वि० ।[८]
३. माधवानल कामकदला (संस्कृत, अपभ्रंश, डिंगल, ब्रज मिश्रित)—अज्ञात कवि कृत, र० स० १६०० वि० पूर्व ।[९]
४. माधवानल कामकदला रस-विलास (राजस्थानी, ब्रज, हिन्दी) माधव शर्मा कृत, र० स० १६०० वि० ।[१०]

५. माधवानल कामकन्दला चौपई (लौकिक राजस्थानी) कुशललाभ कृत, र० सं० १६१६ वि०।[११]
६. माधवानल कथा चौपई (हिन्दी) पुरुषोत्तम वत्स, र० सं० १६३० वि०।[१२]
७. माधवानल कथा (हिन्दी) लाल कवि कृत।[१३]
८. माधवानल कामकंदला (अवधी) आलम कृत, र० सं० १६४० वि०।[१४]
९. मनोहर माधव विलास—अज्ञात कवि कृत, र० सं० १६८६ वि०।[१५]
१०. माधवानल कथा (राजस्थानी) दामोदर कवि कृत, लि० का० १७१७ वि०।[१६]
११. माधव चरित (हिन्दी) जगन्नाथ जोशी, र० सं० १७११ वि०।[१७]
१२. माधवानल नाटक (ब्रज) कवि केस कृत, र० सं० १७१७ वि०।[१८]
१३. विरहवारीश (बुंदेल खंडी) बोधा कृत, र० स० १७६९ वि०।[१९]
१४. माधवानल कथा (हिन्दी) हरिनारायण कृत, र० स० १८१२ वि०।[२०]
१५. माधव विलास (हिन्दी गद्य-पद्य) लल्लू लाल।[२१]
१६. माधोनल कामकुंडला (उर्दू अनुवाद) मजहर अली खाँ, र० सं० १८५७ वि०।[२२]
१७. माधवानल कामकदला (फारसी) हकीरिया।[२३]

२. कथा-रूप

अब हम कुशललाभ द्वारा विरचित माधवानल कामकदला कथा का अन्य पूर्व-वर्ती कवियों द्वारा रचित प्रमुख माधवानल विषयक कथा रूपों एव आलम की माधवानल[२४] कथा-रूप से तुलना करते है। यह अध्ययन हम निम्नांकित कृतियों के आधार पर करेंगे—

१. आनन्दधर कृत माधवानल आख्यानम्।
२. गणपति कृत माधवानल कामकंदला दोग्धक।
३. अज्ञात कवि कृत माधवानल कामकदला (र० स० १६०० के आसपास)।
४. दामोदर कृत माधवानल कथा।[२५] तथा
५. आलम कृत माधवानल कामकदला।

१. जयन्ती और माधव के पूर्व जन्म के प्रम की कथा

कुशललाभ द्वारा विरचित 'माधवानल कामकंदला चौपई' में इन्द्र की आज्ञा पर उसकी राज वेश्या जयन्ती का गर्व के कारण नृत्य न करना तथा इसके परिणाम स्वरूप इन्द्र के शाप से मृत्यु रूप मे शिला के रूप में अवतरण और माधव नाम के रूपवान ब्राह्मण-पुत्र के साथ उसी रूप मे जयन्ती के विवाह करने पर उसका उद्धार होने[२६] तथा माधव और जयन्ती के विरह-जनित प्रेम का उल्लेख है। इस प्रकार यहाँ इन्द्र जयन्ती को दो बार शाप देता है। दूसरी बार के शाप पर वह कामसेन की राजवेश्या बनती है।[२७] माधव सम्बन्धी उक्त कथा रूपो मे यह प्रसंग नही है।

माधव का जन्म

माधव के जन्म के विषय में कुशललाभ ने अविचल समाधिस्थ शंकर की उमा के

साथ रमण की इच्छा के परिणाम स्वरूप स्खलन की कथा कही है[२८] जबकि गणपति कृत 'माधवानल कामकदला दोग्धक' में शिवभक्त शुकदेव की रति और कामदेव द्वारा तपस्या भंग करने के परिणाम स्वरूप कुरंगदत्त ब्राह्मण के घर माधव का जन्म होना कहा गया है।[२९] संस्कृत और हिन्दी के कथा रूपों मे यह प्रसंग नही दिया गया है। किन्तु माधव के ललित गुणों का वर्णन आनन्दधर आदि सभी कवियों ने किया है।

३. माधव का पालन-पोषण

कुशललाभ ने माधव को गंगा के तट की झाड़ियों के मध्य पुष्पावती के राजा गोविन्दचन्द के पुरोहित शंकरदास को स्वप्न मे दर्शन देकर उपलब्ध कराया है।[३०] यहाँ पुत्र की प्राप्ति के लिए पुरोहित के अनेक अनुष्ठानों के आयोजनों का वर्णन भी है।[३१] इसके विपरीत कायस्थ कवि गणपति ने कुरगदत्त ब्राह्मण के घर जन्मे पचवर्षीय कामदेव रूपी माधव को यक्षिणी द्वारा जगल में भिजवाया है, जहाँ पुष्पावती के राजा गोविन्दचन्द ने उसकी रक्षा की और अपने साथ उसे लिवाकर अपने पुरोहित रुद्रदत्त को सौंपा और उसी ने उसका पालन-पोषण किया।[३२] आनन्दधर, दामोदर, आलम आदि कवियो की कथाओं मे यह प्रसंग भी नही है।

४. माधव के प्रति नगर की स्त्रियों की आसक्ति एव माधव का निष्कासन

माधव के रूप-लावण्य और उसके वीणावादन के स्वर पर पुष्पावती की सभी स्त्रियाँ आसक्त थी। पत्नियो के इस व्यवहार पर उनके पति अत्यन्त दुखी थे। अत: एक दिन एक महाजन साहस कर कुछ व्यक्तियो के साथ राजा के पास पहुँचा और माधव पर दुश्चरित्रता का अभियोग लगाकर राजा को उसके निष्कासन का निवेदन किया। राजा ने अपनी रानियो एव अन्य स्त्रियो के साथ माधव की आसक्ति की परीक्षा की। जब माधव का वीण-वादन सुनकर वे स्खलित हो गई तो राजा ने माधव को निष्कासित कर दिया।[३३]

आनन्दधर, अज्ञात कवि कृत माधवानल कथा एव आलम के कथा रूपो मे भी यह प्रसग विद्यमान है। गणपति कृत माधवानल कामकदला दोग्धक और दामोदर की माधवानल कथा मे यह प्रसग परिवर्तित रूप मे है। इन कथा रूपों में नगर की स्त्रियों के साथ गोविन्दचन्द की पटरानी रुद्रादेवी भी माधव पर आसक्त है।[३४] गणपति कृत कथा की रुद्रादवी अपने द्वारा प्रस्तुत काम-प्रस्ताव के माधव द्वारा ठुकराये जाने पर रूठकर माधव को निष्कासित करवाती है।[३५] इस कथा रूप मे राजा किसी भाँति की सत्यता किसी भी माध्यम से प्रमाणित नही करता। किन्तु दामोदर की 'माधवानल कथा' में माधवानल के कामोत्तेजक रूप के प्रभाव की परीक्षा राजा ने रानियों को लाल कपड़ा पहनाकर और काले तिलो पर बिठाकर की है।[३६]

५. माधव का कामावती पहुँचना

पुष्पावती के राजा गोपीचन्द द्वारा निष्कासित होने पर सभी कथा-रूपो मे माधव का कामावती मे पहुँचने एव अपने कला-पारखी गुण से वहाँ के राजा द्वारा सम्मानित

होना वर्णित है। किन्तु गणपति और दामोदर ने इस घटना के पूर्व एक और प्रसंग अपनी कथाओं में लिया है। जब माधव पुष्पावती को छोड़कर अमरावती पहुँचा तो नगरी की सभी प्रौढ़ाएँ और नव-यौवनाएँ उस पर आसक्त हो गईं। उसे देखकर अनेक स्त्रियों के गर्भपात हो गया। इस घटना को सुनकर वहाँ के राजा ने माधव को अपने देश से चले जाने को कहा तब माधव यहाँ से रवाना होकर कामावती पहुँचा।[३७]

'माधवानल-कथा' में पुष्पावती नगरी से आए माधव को अमरावती नगरी का मंत्री अपने घर लाता है, जहाँ उसकी गर्भवती स्त्री उस पर आसक्त हो गई और उसका गर्भपात हो गया। इस दुर्दशा को देखकर मनोवेगी राजा के पास पहुँचा और वस्तु स्थिति से उसे अवगत करवाया। तब राजा ने माधव को तीन बीड़े भिजवाए जिसका तात्पर्य उसके देश को छोड़कर चले जाने का आदेश था। यह संकेत समझकर माधव अमरावती को छोडकर कामावती नगरी पहुँचा जहाँ कामसेन राज्य करता था।[३८]

६. माधव को कामकदला की प्रतीति

कामसेन के दरबार मे नृत्य-रत कामकदला के द्वारा न्यास पवन द्वारा कुच-दर्शन करते हुए भ्रमर का उडाया जाना सभी कथा रूपो मे वर्णित है। किन्तु कुशललाभ ने माधव मे कामकंदला को कही देखा है'[३९] की अनुभूति करवाकर माधव और कदला के पूर्वजन्म की कथा एव प्रसग के साथ पूर्वापर सम्बन्ध स्थापित किया है। अत: कथा-सगठन की दृष्टि से यह उसका प्रशसनीय कौशल कहा जाएगा।

७. व्यथित माधव का उज्जैनी-प्रस्थान

आनन्दधर कृत 'माधवानल आख्यानम्'[४०] तथा दामोदर विरचित 'माधवानल कथा'[४१] मे कामावती से निष्कासित होने पर मार्ग चलते हुए माधव को एक ब्राह्मण मिला जो विक्रमादित्य की एक समस्या कामसेन के पास ले जा रहा था। उसने उसे दु:खभजक सम्राट विक्रमादित्य की नगरी उज्जैनी को जाने का परामर्श दिया। माधव ने उसका कहना मानकर एक विरहजनित पत्र कामकदला के लिए उसे दिया तथा एक ब्राह्मण के घर भोजन कर के वह उज्जैनी की ओर रवाना हुआ। अज्ञात कवि कृत कथा रूप मे भी माधव को समस्या ले जाता हुआ ब्राह्मण मिलता है, जिसकी पूर्ति माधव मार्ग मे ही कर देता है।[४२] अपने कार्य की सफलता पर ब्राह्मण अपने साथ ही माधव को उज्जैनी ले गया।[४३] इसके विपरीत आलोच्य कवि ने यह प्रसग न लेकर उसे घूमते-घूमते ही उज्जैनी पहुँचाया है[४४] और वहाँ ६ माह तक रहने के उपरान्त माधव ने एक पथिक के साथ कामकदला को विरह-सन्देश भिजवाया।[४५] यह प्रसग स्वाभाविकता की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

८. माधव को पुन: कामकंदला की प्राप्ति

उज्जैनी के महाकाल मन्दिर मे भोग विलासिनी वेश्या की सहायता से विक्रमादित्य द्वारा विरहदग्ध माधवानल की खोज एव माधव और कामकदला के प्रेम की की परीक्षा के उपरान्त विक्रमादित्य का कामसेन से माधव को कामकदला के समर्पण

की कथा उक्त सभी कथा-रूपो मे वर्णित है। आनन्दधर[४६] और गणपति[४७] के कथा-रूपों मे वेश्या का नाम भोगविलासिनी दिया गया है जबकि कुशललाभ[४८] तथा अन्य कवियों ने भोगविलासिनी। बहुत सम्भव है प्रतिलिपिकारों के प्रमाद से ही 'भोगविलासिनी' का 'गोगविलासिनी' हो गया है। वैसे भी 'गोग' शब्द निरर्थक-सा लगता है।

इसी भाँति कुशललाभ के अतिरिक्त सभी कवियों ने कामसेन और विक्रमादित्य के घमासान युद्ध के उपरान्त कामसेन द्वारा विक्रमादित्य को कंदला दिलवाई है। आनन्दधर के 'माधवानल आख्यानम्' में यह प्रसग दो बार उद्भूत हुआ है। पहली बार उसने दूत के द्वारा कामकदला को प्राप्त करने के लिए सदेश भेजा है,[४९] तत्पश्चात् कामसेन और विक्रमादित्य का युद्ध[५०] करवाया है। दूत और राजा के बीच यहाँ काफी प्रतिवाद का प्रसग भी कवि ने उपस्थित किया है। कुशललाभ द्वारा युद्ध-प्रसग प्रस्तुत न करने के दो कारण सम्भव है। प्रथमतः, कुशललाभ जैन यति था। अतः हिंसा का प्रसग उसके धार्मिक सिद्धान्तो के विरुद्ध पड़ता था और दूसरा कारण है—उसका नैतिक दृष्टिकोण, यह उसके द्वारा गृहीत सस्कृत सूक्तियो द्वारा स्वतः सिद्ध है।

६. माधव का पुष्पावती को लौटना

उक्त सभी कथा रूपों में कामकदला की प्राप्ति के पश्चात् माधव और कंदला के पूर्व की भाँति उज्जैन मे ही सुखमय जीवन व्यतीत करने की बात कही है, पर कुशललाभ ने इस प्रसग को नवीनता प्रदान की है। कुशललाभ के अनुसार उज्जैन लौटने पर कुछ महीनो तक विक्रमादित्य के पास रह कर माधव उससे आज्ञा प्राप्त कर पुनः पुष्पावती लौटता है। वहाँ अपने माता-पिता और सन्तान के साथ उसके सुख-वैभवमय जीवन का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है—

> **"मिलिया माय ताय परिवार, माधव मनि आणंद अपार।**
> **कामकंदला साथइ सदा, सुख भोगवइ सदा सम्पदा॥**
> **दिन प्रति राय दियइ बहु मान, सुख विलसर देवता समान**
> **च्यार पुत्र जाया सन्तान, प्रगट्या मंदिर नवे नधान॥"[५१]**

इस प्रकार कुशललाभ कृत 'माधवानल कामकदला' सम्बन्धी कथा से उसके पूर्ववर्ती कवियो के कथा-रूपों मे निम्नलिखित साम्य और वैषम्य मिलता है—

साम्य

१. माधवानल पुष्पावती नगरी का एक रूपवान और सर्वगुण सम्पन्न ब्राह्मण है।
२. अपने रूप, यौवन और सगीत कला की मोहनी शक्ति के कारण ही उस पर स्त्रियाँ आसक्त हैं तथा इसी कारण उसे पुष्पावती नगरी से निष्कासित किया जाता है।
३. माधव को देश-निकाला प्रायः परीक्षोपरान्त ही दिया गया है।
४. पुष्पावती से निष्कासित होकर माधव का कामावती पहुचना तथा अपनी सगीत पारखी दृष्टि से उसका कामसेन के दरबार मे सम्मान प्राप्त करना।
५. कामकदला द्वारा अपने कुच-दशन पर भ्रमरो को न्यास पवन द्वारा उड़ाना तथा

माधव का उसकी कला पर प्रसन्न होकर राजा द्वारा प्राप्त उपहार को उसपर न्योछावर करना।

६. इस व्यवहार को अपना अपमान समझ कर कामसेन द्वारा माधव को देश-निष्कासन।
७. कामावती से माधवानल के निष्कासन पर माधव और कामकदला का प्रेमालाप, आत्मसमर्पण तथा माधव का उज्जैनी प्रस्थान।
८. उज्जैनी के महाकाल के मन्दिर में माधव द्वारा विरहजनित गाथा-लेखन तथा विक्रमादित्य की माधव को खोज निकलवाने की प्रतिज्ञा।
९. वेश्या द्वारा माधवानल की खोज के उपरान्त विक्रमादित्य की माधव को शिक्षा।
१०. माधव और कदला के प्रेम की परीक्षा तथा उनकी मृत्यु पर बैताल द्वारा विक्रमादित्य की रक्षा और दोनो प्रेमियों को पुनर्जीवित करने का वर्णन।
११. कामावती मे पहुँचकर विक्रमादित्य का कदला को दिलाना और दोनो का मिलन।

वैषम्य

१. जयन्ती का इन्द्र से अभिशप्त होना।
२. मृत्यु लोक में जयन्ती का शिला रूप में पड़ा रहना।
३. माधव द्वारा शिला रूपिणी जयन्ती से खेलते हुए विवाह एव उसका उद्धार।
४. जयन्ती और माधव का प्रेम।
५. जयन्ती का पुनः अभिशप्त होकर मृत्यु लोक में नर्तकी कामकदला के रूप मे जन्म।
६. गोपीचन्द द्वारा माधव का निष्कासन।
७. कामसेन और विक्रमादित्य का युद्ध। तथा
८. माधव और कदला के पुर्नमिलन पर कुछ दिनो के पश्चात् विक्रमादित्य से आज्ञा प्राप्त कर पुनः पुष्पावती आगमन तथा वहाँ माता-पिता और सन्तान सहित सुखमय जीवन-यापन।

(ख) ढोला-मारवणी चौपई और ढोला-मारू कथा के अन्य प्राप्त रूप

'ढोला-मारू' की कथा देशज-भाषाओं की प्राण रही है। राजस्थानी भाषा के अतिरिक्त ब्रज, अवधि, भोजपुरी, हरियाणवी, सिंधी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, गुजराती, मैथिली आदि अनेक प्रान्तीय भाषाओ और बोलियो मे इस कहानी का कोई न कोई रूप मिल ही जाता है। इसका मूल स्रोत कहाँ है, इसका प्रामाणिक आधार बताना कठिन है, पर 'मुहणोत नैणसी की ख्यात' के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ढोला १०वी शताब्दी मे विद्यमान था।[४२] मूल मे 'ढोला' शब्द व्यक्ति विशेष के नाम का बोधक था, पर कालान्तर मे वही 'ढोला' शब्द पति अथवा नायक के अर्थ मे पूर्णतः रूढ़ रूप में प्रचलित हो गया जो हेमचन्द्र सूरि (११९२ वि०) के निम्नाकित उद्धरणों से स्पष्ट है—

(क) ढोला सामला धण चपावण्णी ॥
णाइ सुष एणरेह, कसवट्टइ दिएण्णी ॥८।४।३३०

(ख) ढोला मइ तुह वारिया, मा करू दीहा माणु
निद्दह गमिही रत्तडी, दडवड़ होइ विहाणु ।।८।४।३३०

(ग) ढोल्ला एहु परिहासडी, अइमण क़वणहिं देसि ।
हउ भिज्जउ तउ केहि तुहु, पुण अभहि रेसि ।।८।४।४२५[५३]

ढोला का मारू के साथ विवाह हुआ—यह ऐतिहासिक[५४] और लौकिक सत्य है। राजस्थान-प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान उदयपुर की एक प्रति मे ढोला और मारू के विवाह की तिथि का उल्लेख है,[५५] जिसे डॉ० भगवतीलाल शर्मा ने ढोला-मारू के रचनाकाल की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है।[५६] ठाकुर वीरसिंह तवर के मतानुसार मारू ढोला की पत्नी एव बुद्धसिह भाटी की पुत्री है।[५७] ब्रज, हरयाणवी एव भोजपुरी के ढोला-मारू कथा रूपो मे मारू के पिता का नाम बुद्धसिंह ही बताया है। पर राजस्थानी की ढोला-मारू मे यह नाम नही मिलता।

इन सब तथ्यो से यह स्पष्ट है कि प्राकृत एव अपभ्रंश भाषाओ मे नायक अथवा पति के रूढ अर्थ मे प्रयुक्त ढोला शब्द ही राजस्थानी भाषा मे विरचित ढोला-मारू कथा का प्राचीनतम सूत्र है और इसी सन्दर्भ मे ढोला-मारू की प्रेम कथा को साहित्य के अनेक रूपो मे प्रस्तुत करने का क्रम चला। राजस्थानी एव इसकी बोलियों में रचित ढोला-मारू की कथा के मुख्यत. ख्याल, समझाय, वार्ता, गाथा, दूहा, चौपई, वात आदि अनेक रूप मिलने हैं।

आधुनिक युग मे भी यह विषय अछूता नही रह सका। गद्य एव पद्य दोनो ही रूपो मे आज भी ढोला-मारू से सम्बन्धित अनेक कथाएँ एव कविताएँ लिखी जा रही है। अनन्त चौरासिया कृत 'ढोला-मारू कहानी,' डॉ० सत्य प्रकाश जोशी कृत गीति काव्य 'ढोला-मरवण', डॉ० मनोहर शर्मा द्वारा विरचित 'मरवण' तथा भरत व्यास का 'ढोला-मरवण नाटक' इस युग की उपलब्धि है।

ढोला-मारू की प्रेम-कथा ने अपने पूर्ण रूप मे जहाँ राजस्थानी के अनेक प्रेमाख्यानो को प्रभावित किया है, वही अपने पडौसी प्रान्तो की भाषाओ को भी स्वयं पर रचना करने को आकर्षित किया। इस दृष्टि से गुजराती की 'ढोला-मारू नी वार्ता' ब्रज के ढोले, हरयाणवी की ढोला-मारू की कथा अपने प्रादेशिक रूपों मे श्रेष्ठ रचनाएँ है।

राजस्थानी भाषा मे ढोला-मारू-कथा के अनेक रूपान्तर मिलते है। प्रो० नरोत्तमदास आदि प्रभृत विद्वानो ने इन्हे चार भागो मे विभक्त किया है—(१) जिसमे केवल दूहे है और जो प्राचीन है, (२) जिसमे दूहे और कुशललाभ की चौपइयाँ है, (३) जिसमे दूहे और गद्य-वार्ता है तथा (४) जिसमे दूहे, कुशललाभ की कुछ चौपइयाँ और गद्य-वार्ता है।[५८] रचना-क्रम, कथा-विन्यास एवं काव्यत्व की दृष्टि से इनमे से प्रथम दो रूपान्तर ही महत्त्वपूर्ण ही है। शेष दो रूपान्तरो में प्रक्षिप्तांश बढ़ते ही गए है।

इस प्रकार आरम्भ मे ढोला-मारू की कथा सर्वप्रथम सवत् १००० वि० के आस-पास लिखी गई होगी, कालान्तर मे वही 'ढोला-मारू रा दूहा' नाम से अभिहित हुई। यह रूप प्राय· जनता द्वारा निर्मित ही रहा। किन्तु वि० स० १६१७ मे कुशललाभ ने इन दूहो के साथ चौपइयाँ और बांध दी। इस विधि मे कथा को कही-कही नवीनता भी

प्राप्त हुई है। अतः यहाँ हम कुशललाभ की ढोला-मारवणी चौपई से दूहा रूप में रचित कथा की तुलना के साथ ही अन्य प्रादेशिक भाषाओं की ढोला-मारू-सम्बन्धी कथा की तुलना करेंगे।

(२) विभिन्न कथा-रूपों का तुलनात्मक अध्ययन

१. कथा का आरम्भ

'ढोला-मारवणी चौपई' में लम्बी प्रस्तावना के उपरान्त उमा देवड़ी के साथ भाऊ भाट की सहायता से घात-प्रतिघात युक्त राजा पिंगल के विवाह का विस्तृत वर्णन किया गया है। तदनन्तर मारवणी (मारू) और ढोला के जन्म की सूचना से कथा आगे बढ़ती है। ये सभी वर्णन सविस्तार हैं। ढोला का जन्म एक परदेसी द्वारा निर्दिष्ट पुष्कर जी की मनौती से होता है।[५६]

इसके विपरीत 'ढोला-मारू रा दूहा'[६०] में राजा पिंगल के संक्षिप्त राजसिक ठाट-बाट के उल्लेख के पश्चात् कथा का सूत्र तीव्र गति के साथ बढ़ता जाता है।

ब्रज-प्रदेश में प्राप्त ढोला-मारू-कथा[६१] मे कथा का आरम्भ ढोला के पिता नल के जन्म की कथा से हुआ है। यहाँ नरवर का राजा पिरथम अपनी पत्नी मझा को निष्कासित कर देता है। वन में नल का जन्म होता है। वणिक की सहायता से होनहार होकर दमयन्ती के साथ विवाह कर वह पुन: नरवरगढ़ को प्रस्थान करता है।

भोजपुरी मे भी प्रायः यही रूप मिलता है।[६२] पर विवाहोपरान्त प्रत्यागमन के समय नल द्वारा बाघिनी के बच्चे का शिकार नवीन घटना है, जिसमें १४ वर्ष पश्चात् पिंगलगढ़ की कन्या के साथ उसके पुत्र के विवाह के समय बदला लेने की बाघिनी द्वारा की गई प्रतिज्ञा का भी वर्णन है।[६३]

हरियाणवी[६४] और छत्तीसगढी[६५] में प्रचलित ढोला-मारू-कथा-रूपों में कहीं ऐसी घटनाओ अथवा पृष्ठभूमि का वर्णन नही मिलता।

२. पिंगल और नल का पुष्कर मे मिलना तथा ढोला-मारू का विवाह

कुशललाभ ने पूंगलगढ़ मे अकाल पड़ने पर राजा पिंगल की पुष्कर-यात्रा का उल्लेख किया है,[६६] जहाँ नलवरगढ़ का राजा नल भी अपने पुत्र ढोला की मनौती के लिए आया हुआ है।[६७] यही पर राजा नल पिंगल के डेरे मे सोई हुई मारू के लावण्य पर मुग्ध हो अपने पुत्र ढोला के साथ उसके विवाह का प्रस्ताव प्रधान द्वारा प्रस्तुत करता है।[६८] इस प्रकार यहाँ वर पक्ष की ओर से प्रस्ताव किया गया है, जिसे राजा पिंगल सहर्ष स्वीकार कर लेता है।[६९] पर मारू की माता ऊमा देवड़ी इस सम्बन्ध को उचित नहीं मानती।[७०]

ढोला मारू रा दूहा मे यह प्रस्ताव स्वयं मारू की माता ने किया है।[७१] यहाँ माता का नाम नहीं दिया गया है।

ब्रज-रूपान्तर में ढोला-मारू के विवाह का कारण मारू का रूप-सौन्दर्य न होकर राजा नल की मजबूरी है। जूए मे दोनों (नल और बुधसिंह मारू का पिता) अपनी

आसन गर्भा पत्नियो की सन्तानो के विवाह की शर्त करते है।[७२] इस प्रकार यहाँ राजस्थानी कथानक की भाँति ढोला और मारू का क्रमश: तीन और डेढ़ वर्ष की आयु में विवाह न होकर माताओं के गर्भ मे ही कर दिया गया है। साथ ही, पिंगल के राजा का नाम यहाँ बुधसिंह है और जूए में हारने के उपरान्त राजा नल रंगी तेली के घर ठहरता है।

भोजपुरी ढोला-मारू-कथा[७३] मे राजा नल पुष्कर और रगी तेली के बजाय निरजन नामक तेली के घर पर ठहरा है। अत: निरंजन और रगी में अर्थ-भेद भले ही न हो भाषा-भेद के कारण भेद अवश्य है। यहाँ पिंगलगढ़ के राजा बुधसिंह ने नारद जी की योजनानुसार तथा बघिनी के शाप से यही अपनी पुत्री मारू का विवाह राजा नल के पुत्र ढोला के साथ किया।

छत्तीसगढ़ी रूपान्तर में उक्त सभी घटनाओ की अपेक्षा केवल नरहुल के राजा नल के इकलौते पुत्र ढोला लाल एव पिंगला-नरेश वेन की पुत्री मारू के बचपन मे ही विवाह का उल्लेख है।[७४]

३. मारवणी का गौना

सभी रूपान्तरो मे ढोला और मारू के विवाह के पश्चात् मारू का उसके पीहर मे ही रह जाने का उल्लेख है। किन्तु राजा नल के पुष्कर से नलबरगढ़ को प्रस्थान से पूर्व पुरोहित को भेज कर मारवणी को बुलवाना[७५] तथा पिंगल का उसकी अल्पायु के कारण ७ वर्ष बाद गौना करवाने का निवेदन[७६] की घटनाएँ कुशललाभ की मौलिक कल्पना है।

इसके पश्चात् जब ढोला बड़ा होता है तो पूंगल से कोई समाचार न मिलने पर राजा नल उसका विवाह मालवपति भीम की कन्या मालवणी से कर देता है।[७७] वह सभी परिजनो को सूचित करता है कि ढोला को मारवणी के साथ हुए उसके विवाह की सूचना कोई न दे, अन्यथा वह मारू के गौने के लिए जाएगा।[७८] इस प्रकार यहाँ राजा नल के कारण ढोला गौना नही कर पाता।

इसके विपरीत ब्रज-प्रदेश में प्रचलित ढोला मारू की कथा में रेवा जादूगरनी गौने के लिए जाते हुए ढोला के लिए बाधक हुई है। वह ढोला को अपने चंगुल मे फसा लेती है और उसे कही नही जाने देती।[७९] इस प्रकार यहाँ ढोला के साथ मालवणी के विवाह का षड़यन्त्र नही मिलता।

भोजपुरी कथा रूप मे बाघिनी के शाप के भय से ढोला का गौना नही करवाता। उसने इस शाप से बचने के लिए ढोला का विवाह गढ़ उपमा के राजा परमजीत की कन्या रेवा के साथ कर दिया और ढोला के पूर्व विवाह की सूचना न देने की डौंडी पिटवा दी।[८०] यही कथा हरयाणवी मे भी वर्णित है।[८१]

किन्तु ढोला-मारू के छत्तीस गढ़ी रूपान्तर मे नवीन तथ्य से परिचय होता है। यहाँ राजा नल अपने राज्य की जादूगरनी रेवा के भय से ढोला लाल को तनिक भी राज-महल से बाहर नही निकलने देता। किन्तु १२ वर्ष के बाद भ्रमण के समय राजकुमार ढोला लाल अचानक रेवा के सुग्गे का शिकार कर लेता है और इसके दण्ड स्वरूप रेवा

उसे बन्दी बनाकर उससे विवाह कर लेती है।[८२]

४. सन्देश-प्रेषण

ढोला और मारवणी के एक-दूसरे के साथ विवाह सम्बन्धों की सूचनाओ और तत्पश्चात् उनकी विरहव्यथा के सन्देश-प्रेषण आदि के माध्यम भी इन कथाओं में अनेक तरह के मिलते हैं। कुशललाभ कृत 'ढोला-मारवणी चौपई' में ढोला को मारवणी के साथ हुए उसके विवाह की सूचना उसकी माँ से उस समय मिलती है जब उसकी दूसरी पत्नी मालवणी उसकी माँ से अभद्र व्यवहार करती है।[८३] अपने विवाह से अनभिज्ञ मारवणी को उसके विवाह की सूचना कवि नलवरगढ से आए घोड़ों के सौदागर और खवास के पारस्परिक वार्तालाप में आए प्रसंग के माध्यम से दिलाता है।[८४]

ढोला और मारू दोनों मे उक्त सूचनाएं विरह की उदीप्ति का कारण बनती हैं और दोनों एक-दूसरे को अपना विरह सन्देश भेजने को आतुर हो उठते है। सन्देशवाहक का कार्य मध्यकाल में पशु-पक्षियों अथवा विशिष्ट गुण-सम्पन्न व्यक्तियो के माध्यम से करवाया जाता था। पक्षियों मे तोता-मैना, कुरझां, कबूतर और मनुष्यों मे बणज्यारें, सौदागर, ढाढ़ियों आदि सन्देश-प्रेषण का कार्य किया करते थे। कुशललाभ कृत चौपई में मारू अपना विरह-सन्देश कुरझां (क्रौंच पक्षी) के द्वारा भिजवाती है,[८५] तो मदारी कृत व्रज-कथा, हरियाणवी लोक-कथा[८६] तथा छत्तीसगढी भाषा[८७] मे प्राप्त कथाओं मे यह सन्देश सुआ ले जाता है। व्रज-कथा में सुआ (तोता) यह सन्देश ढोला को उस अवस्था में जाकर देता है जब वह रेवा द्वारा बन्दी बनाया जाकर उससे विवाह कर लेता है।[८८]

ढोला-मारू के कुशललाभ कृत रूप में मारू की विरहावस्था का ज्ञान उसकी माता को मारवणी की सखियों के इन शब्दों द्वारा होता है—

"माता धानी उभी रही, सखि श्रते मारवणी कहि।
मुझ नींद नि आवे श्राज, विरह व्यापि मूंकीलाज॥"[८९]

जबकि भोजपुरी-कथा में मारू की सखी प्रत्यक्ष रूप से मारवणी के विरह की सूचना उसके माता-पिता को देती है।[९०]

मारू के माता-पिता भी इन कथाओ मे ढोला तक मारू के विरह का सन्देश पहुंचाने मे सहायक होते हैं। कुशललाभ कृत काव्य मे मारू के माता-पिता उसकी इच्छानुसार याचकों को ढोला तक सन्देश पहुँचाने के लिए भेजते है[९१] तो भोजपुरी कथा मे मारू के माता-पिता मारू की सहेली चम्पा के पिता को ही इस कार्य के लिए नियुक्त करते हैं।[९२]

कुशललाभ कृत चौपई में भाऊ भाट की योजनानुसार याचक संध्या को जब मालवणी बगीचे में गई होती है, गाकर मारवणी का सन्देश ढोला को सुनाते हैं[९३] तो भोजपुरी कथा में चम्पा का पिता मारू के विरह-सन्देश से अंकित साड़ी ढोला के माता-पिता नल-दमयन्ती को जा देता है और ढोला इन संकेतों को पढ़कर सन्देश प्राप्त करता है।[९४] हरियाणवी कथा में भी सन्देश साड़ी पर अंकित करके ढोला तक पहुँचाया जाता है। इस कथा में सन्देश युक्त इस साड़ी का वाहक बणज्यारा है।[९५]

५. ढोला का पूंगल-प्रस्थान

कुशललाभ की 'ढोला-मारवणी चौपई' मे मालवणी के अनेक तर्क-वितर्कों के उपरान्त ढोला मारवणी मे मिलने के लिए दहेज के ऊँट पर बैठ कर पूंगल रवाना हुआ। अरावली को पार करने पर उसे ऊमरा-सूमरा का दूत मिला जो मारू की कुरूपता का वर्णन कर मारू के प्रति उसके हृदय मे घृणा उत्पन्न करनी चाही किन्तु पिंगल के बारहठ (चारण) सूचना से उसकी यह शंका निर्मूल हो गई। पूंगल पहुँचने पर ढोला को वाटिका मे ठहराने और मारू के रात को देखे अपने स्वप्न को साकार हुआ पाकर प्रसन्न होने का उल्लेख भी कवि ने किया है।

ढोला-मारू के दूहा संस्करण एव मदारी कृत ढोले[९६] मे भी लगभग यही कथा है। पर 'ढोला मारू रा दूहा' में राजा पिंगल ढोला को मार्ग में मिले वीसू चारण को ही ढोला की अगुआनी के लिए भेजता है,[९७] जबकि चौपई रूपान्तर में स्वयं पिंगल ढोला के स्वागत के लिए कुंए तक सपरिवार आया।[९८]

यद्यपि हरयाणवी एवं छत्तीसगढ़ी रूप मे भी यही कथानक है किन्तु इनमें ऊँट के विषय में कुछ नहीं कहा गया है।

६. ढोला-मारू-मिलन और सत् की परीक्षा

'ढोला मारू की दासी एव सखी ढोला से उनके प्रेम चिह्न की जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रश्न पूछ कर सत् की परीक्षा करती है। साथ ही केलि-क्रीड़ा के समय ढोला और मारू अपने इतने लम्बे वियोग पर पश्चाताप प्रकट करते है।[९९]

'ढोला-मारू रा दूहा' में यह प्रसग अष्टायाम-वर्णन एवं पहेली बुझौवल की पारस्परिक प्रणाली द्वारा सम्पादित किया गया है।[१००] यहाँ सत् की परीक्षा का प्रसग नहीं मिलता। मदारी कृत ढोला के सत् की परीक्षा पहले नाइन और बाद में अपनी छोटी बहन कारू तथा ब्राह्मणी को ढोला के पास पानी के गिलास के द्वारा भेज कर करती है।[१०१]

ढोला-मारू की भोजपुरी लोक-कथा में भी सत् की परीक्षा जल-पूरित गिलास द्वारा ही की जाती है, पर मारू की बहन का नाम तारा दिया गया है।[१०२] हरयाणवी[१०३] और छत्तीसगढ़ी[१०४] कथा-रूपो मे इस घटना का उल्लेख नहीं है।

७. ढोला-मारू का नलवरगढ़ प्रस्थान

कुशललाभ कृत चौपई मे उल्लेख है कि ढोला एक माह तक ससुराल मे रहकर अनेक दास-दासियों एव दहेज को प्राप्त कर नलवरगढ़ को रवाना हुआ। मार्ग में पीवणा सर्प द्वारा मारू के दंशन पर ढोला का उसके साथ जल मरने का प्रण, सामन्तों द्वारा मारू की छोटी बहन चम्पावती से विवाह का आश्वासन, योगिनी की प्रार्थना पर योगी का औषधि द्वारा मारू का पुनर्जीवित करना, ऊमरा-सूमरा के साथ ढोला का मद्यपान तथा डूमणी के सकेत द्वारा मारू का ढोला के साथ नलवरगढ़ तक पहुँचने की रोमांचक यात्रा का वर्णन कुशललाभ की कथा में हुआ है।

यही सब वर्णन अन्य रूपान्तरों में भी विद्यमान है, किन्तु कुछ परिवर्तनों के साथ। 'ढोला-मारू रा दूहा' मे मारू की बहन का नाम नहीं दिया गया है। योगी औषधि की अपेक्षा यहाँ अभिमंत्रित जल द्वारा मारू को पुनर्जीवित करता है और ढोला इसकी भेंट स्वरूप स्वयं के और मारू के सभी शृंगार प्रसाधन उतार कर उन्हे देता है।[१०५] इसी भाँति ऊमरा-सूमरा के दूतो द्वारा ढोला का पीछा करने का भी यहाँ कोई उल्लेख नहीं मिलता, जबकि चौपई रूपान्तर में चतुरंगिनी सेना के साथ ऊमरा-सूमरा ने ढोला का पीछा किया है।[१०६]

ब्रजभाषा में प्राप्त कथा-रूप में ऊमरा-सूसरा की अपेक्षा ढोला के साथ जैसलमेर के सेठ मल्ल ने छल किया है। तत्पश्चात् मोती बनिया से युद्ध में ढोला विजयी होता है।[१०७] भोजपुरी रूपान्तर में यही षड़यन्त्र मारू की बहन तारा के पति ने किया है। वह ढोला को शराब पिलाता है। पर सूए की सूचना पर मारू षड़यन्त्र को समझ कर ढोला को ऊँट पर बिठा कर तुरन्त नलवरगढ़ की ओर बढ जाती है।[१०८] शेष दो कथा-रूपों में यह प्रसंग नही मिलता।

८. ढोला का मारू और मालवणी के साथ सुखमय-जीवन (कथा का अन्त)

ब्रज प्रदेश की ढोला-मारू की कथा के अतिरिक्त सभी कथाओं में ढोला-मारू एवं मालवणी अथवा रेवा के सुखमय जीवन-यापन ने कथा को सुखान्त बना दिया है। कुशललाभ की 'ढोला मारवणी चौपई' मे ढोला का सन्तान सहित मारवणी और मालवणी के साथ सुखमय-जीवन बिताने का उल्लेख है[१०६] जबकि 'ढोला मारू रा दूहा' में केवल मारू और मालवणी के साथ का।[११०] मदारी कृत ढोला का अन्त दुखान्त है। यहाँ ढोला-मारू के नलवरगढ़ पहुँचने पर मारू अपने श्वसुर के अपराध को दूर करने के लिए ढोला के साथ सूखे तालाब मे बैठकर अपने प्राण दे देती है।[१११] छत्तीसगढी-कथा मे गौने के पश्चात् ढोला पुनः नलवरगढ़ नही लौटता। अपने श्वसुर राजा वेन को पुत्र-सन्तान न होने से वह वही घर जंवाई बनकर सुखमय जीवन व्यतीत करता है।

इस प्रकार सक्षेप मे उक्त रूपान्तरों में निम्नलिखित साम्य और वैषम्य का उद्घाटन हुआ है—

साम्य

१. कथा का नायक ढोला ही है, जिसे ढोला, ढोलन, ढोला लाल आदि नाम से भी वर्णित किया गया है। इसे राजा नल का पुत्र एवं मारू का पति कहा गया है।
२. सभी कथाओं में पिंगल के राजा की पुत्री मारू ही नायिका है जिसे यौवनागम पर विरह की प्रतीति होती है। अनेक प्रयत्नों के उपरान्त वह अन्त में अपने वास्तविक पति ढोला से संयोग-सुख प्राप्त करने में सफल होती है।
३. प्रायः सभी रूपान्तरों में ढोला को उसके मारू के साथ हुए विवाह की घटना को छिपाकर उसका अन्यत्र विवाह किया गया है, तथा मारू के संदेशों पर ढोला ने ही मारू का गौना करने का निश्चय किया है। इस प्रसंग में मारू की सपत्नी और

ढोला का पिता मुख्य रूप से अवरोधक रहे हैं।
४. मारू को ढोला से मिलवाने में उसकी सखियाँ, सुग्गे एवं पुरोहित अथवा याचकों का प्रमुख सहयोग रहा है।
५. ढोला को पिंगल के बगीचे मे ही ठहराया गया है तथा वहाँ विभिन्न प्रकार से उसके सत् की परीक्षा करवाई गई है।
६. गौने पर आते समय एवं पुनः नलवरगढ लौटते हुए ढोला को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है।
७. दोनों सौतों में झगड़े की कथा भी प्रायः इन कथाओं मे किसी न किसी रूप में वर्णित है। इस सन्दर्भ को ढोला ने अपनी चतुराई द्वारा शान्त किया है।

वैषम्य

१. राजा नल के माता-पिता, नल-दमयन्ती की प्रणयाख्यान एव राजा पिंगल के घात-प्रतिघात युक्त विवाह का वर्णन।
२. पिंगल के राजा का अकाल अथवा जुआ के दाव मे नल के ढोला कुमार के साथ अपनी पुत्री मारू के विवाह की शर्त।
३. मारू के माता-पिता के नामादि की विभिन्नता।
४. स्थानो, नायक-नायिकाओं एवं मार्ग की घटनाओं सम्बन्धी विभिन्नता।
५. मारू और ढोला के पुनः नलवरगढ़ प्रत्यागमन के समय की कठिनाइयाँ, पीवणे साँप की घटना, योगी-योगिनी का आगमन एव मारू के पुनर्जीवन सम्बन्धी घटनाओ का अन्तर।

राजस्थानी के अतिरिक्त अन्य कथा-रूपों में इन घटनाओं का अभाव है। इसका प्रमुख कारण सम्बन्धित प्रान्तो मे प्रचलित विश्वास है।

(ग) अगडदत्त रास और अगडदत्त कथा के अन्य प्राप्त रूप

जैन-साहित्य मे अगडदत्त से सम्बन्धित कथा को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जैन समाज मे यह कथा अति प्राचीन काल से प्रचलित रही है। जैन लेखकों ने इसे लोक से ग्रहण किया है अथवा किसी प्राचीन साहित्य-कथा-चक्र से, यह उस समय तक निश्चय कर पाना दुष्कर कार्य है, जब तक इसके प्रमाण स्वरूप कोई सूत्र हमे नहीं मिले। जैन समाज मे इसके प्रचार का सबसे बडा प्रमाण यही है कि अति प्राचीनकाल से इस कथा को आधार बनाकर जैन विद्वानों ने अनेक आख्यानों और काव्यों की सरचना की।[११२] कई-एक ग्रन्थो मे इस कथा को दृष्टान्त रूप मे उद्धृत किया गया है। सस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी, गुजराती और अन्य अनेक भाषाओं में अगड़दत्त को आधार मानकर साहित्य रचा गया है। यह साहित्य गद्य और पद्य दोनों रूपों मे समान रूप से उपलब्ध है।

उक्त भाषाओं में लिखित अगडदत्त सम्बन्धी सर्वाधिक प्राचीन रूप का निर्धारण तो नही किया जा सकता, किन्तु सबसे प्राचीन रूप जो अब तक प्राप्त हुआ है वह है पाँचवी शताब्दी मे सघदास गणि द्वारा रचित 'वसुदेव हिन्दी कथा' एवं अवान्तर कथा

रूप में इसका उपविभाग 'धम्मिल हिन्डो'।[113] आठवीं शताब्दी के जिनदास गणि ने अपनी 'उत्तराध्ययन चर्णिकां' मे इसका प्रयोग दृष्टान्त रूप में किया है। इसके पश्चात् यही कथा वादि वेताल शान्ति सुरि कृत उत्तराध्ययन की प्राकृत (पाइय) टीका में, सं० ११२९ में नेमिचन्द रचित 'उत्तराध्ययन टीका' में ३२८ प्राकृत पद्यों में दी गई है। श्री विनय भक्ति, सुन्दर भक्ति, सुन्दर चरण ग्रन्थमाला की ओर से सस्कृत में किसी अज्ञात कवि कृत 'अगड़दत्त-चरित्र' ३३४ श्लोको में प्रकाशित हुआ है। पर, रचना-संवत् के अभाव में इसकी प्राचीनता का अनुमान नही लगाया जा सकता।

अस्तु, इस कथा की परम्परा का आरम्भ १६वीं शताब्दी में लिखित गुजराती और राजस्थानी भाषा के अगड़दत्त-सम्बन्धित कथा-साहित्य से माना जा सकता है, जिसकी अविच्छिन्न धारा १८वी शती के अन्त तक अबाध गति से बहती हुई हमें स्पष्ट दिखायी देती है। अगडदत्त-सम्बन्धी अद्यावधि प्राप्त काव्यों की सूची इस प्रकार है—

१. अगड़दत्तरास (स० १५८४ आषाढ बदी १४ शनिवार) भीमकृत।[114]
२. अगड़दत्त मुनि चौपई (सं० १६०१) सुमति।[115]
३. अगडदत्त रास (सं० १६२५ का० सु० १५ गुरुवार)—कुशललाभ।[116]
४. अगड़दत्त प्रबन्ध (स० १६६६)—श्री सुन्दर।[117]
५. अगड़दत्त चौपई (स० १६७०)—क्षेमकलश।
६. अगड़दत्त रास (र० सं० १६७९)—ललित कीर्ति।
७. अगड़दत्त रास (र० सं० १६८५)—स्थान सागर।
८. अगड़दत्त रास (अपूर्ण लि० स० १७वीं शताब्दी)—गुणविनय।
९. अगडदत्त चौपई (र० स० १७०३) —पुण्य-निधान।
१०. अगडदत्त रास-कल्याण सागर।
११. अगडदत्त ऋषि चौपई (र० स० १७८७)—शान्ति सौभाग्य।
१२. अगड़दत्त रास (अपूर्ण)।

इनमे से कुशललाभ द्वारा रचित 'अगड़दत्त रास' की संक्षिप्त कथा यहाँ प्रस्तुत की जाती है—बसन्तपुर में राजा भीमसेन राज करता था। उसकी पटरानी का नाम सोम सुन्दरी था। सूरसेन नाम का उसका एक बलशाली सामन्त था, जिसके अगड़दत्त नाम का एक रूपवान पुत्र था। सूरसेन की ख्याति सुनकर एक सुभट वहाँ आया। राजा की अनुमति से सुभट और सूरसेन में युद्ध हुआ जिसमें सूरसेन मारा गया। राजा ने सुभट को अपना सेनापति बनाया और उसका नाम अभंगसेन रखा।

पिता की मृत्यु के पश्चात् अगड़दत्त की माता ने अत्यन्त दु:खी अवस्था मे उसका पालन-पोषण किया। पति के इच्छानुसार उस पुत्र को आठ वर्ष की आयु में चम्पापुरी के ब्राह्मण सोमदत्त के पास अध्ययन के लिए भेज दिया। चम्पापुरी पहुँचकर अगड़दत्त ने सोमदत्त को सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

सोमदत्त ने उसकी व्यवस्था एक व्यवहारी के घर कर दी, अगड़दत्त शिक्षा ग्रहण करने लगा। एक दिन वाटिका के पास गवाक्ष में बैठी व्यवहारी की मदनमंजरी नाम की

रूपवती कन्या को अगड़दत्त ने देखा। कुँवर अगडदत्त एकदिन वाटिका में सो रहा था तभी मदनमंजरी गवाक्ष से वृक्ष की डालियों पर होती हुई उसके पास आई और अपना प्रणय निवेदन किया। मदनमंजरी के आग्रह पर उसने उसका ठीक से अध्ययन-परीक्षण कर उसके साथ विवाह करने का उसे वचन दिया।

सोमदत्त इस घटना से परिचित था। अगडदत्त ने अध्ययन के उपरान्त अपने घर लौटने की आज्ञा माँगी। गुरु कुँवर अगडदत्त का मदनमजरी से विवाह का प्रस्ताव लेकर राजा के पास पहुँचा। परिचय प्राप्त करके राजा ने उसे सम्मान दिया। इसी समय चोरों के उत्पात से भयभीत नगर के महाजनो ने राजा से अपना दुख-दर्द सुनाया। राजा ने चोरों को पकड़ने के लिए बीडा फिराया और चोर को पकडकर लाने वाले को सवा लाख रुपये का पुरस्कार भी देने की घोषणा की। अगड़दत्त ने बीडा झेल लिया तथा सात दिन में चोर को पकड़कर लाने का वचन दिया।

वेश्याओ, जुआरियों आदि के स्थानो पर चोर की खोज में उसने छ: दिन बिता दिए, पर चोर नहीं मिला। सातवें दिन चिंतितमना वह एक वृक्ष के नीचे बैठा था, तभी उसने एक योगी को जाते हुए देखा। योगी की पृच्छा पर उसने बताया कि वह एक जुआरी है और सारा धन जुए में हार चुका है, अत: वह चोरी करने को निकला है। उत्तर सुनकर योगी ने उसे अपने साथ ले लिया। कुँवर ने भी अनुमान लगा लिया कि यही चोर है, अत: वह उसके निर्देशानुसार ही कार्य करने लगा।

योगी वेश बदलकर अगड़दत्त के साथ चोरी करने निकला और सागरसेवी नाम के व्यवहारी के घर सेंध डाली। डालकर लौटने पर योगी (चोर) ने कुंवर को सोये हुए अनेक मजदूरो के बीच विश्राम करने के लिए भेज दिया। थोडी देर बाद योगी भी वहाँ पहुँचा और सोये हुए मजदूरो को अपनी तलवार से मौत के घाट उतारने लगा। योगी के आचरण को देखकर कुंवर ने उस पर प्रहार किया। मरते समय योगी ने उससे कहा कि वह उसकी तलवार सामने पर्वत पर खड़े पीपल के वृक्ष मे रह रही उसकी बहिन वीरमती को दे दे और उससे विवाह कर ले। बहिन की यही प्रतिज्ञा थी कि जो उसके भाई का वध करेगा, उसी के साथ वह विवाह करेगी।

अगडदत्त पीपल के वृक्ष की ओर गया। उसने वहाँ गुफा मे वीरमती से भेंट की। अपने भाई की हत्या का बदला लेने की दृष्टि से अगडदत्त को पलग पर बैठाकर वह ऊपर चली गई। अगडदत्त त्रिया-चरित्र से परिचित था, अत: वह एक ओर हट गया। वीरमती ने ऊपर से एक शिला गिरा दी। पर जब वह नीचे आई तो अगड़दत्त को जीवित पाकर स्तभित रह गई। उसने पुन: अगडदत्त पर तलवार से वार किया, पर कुंवर फिर भी सुरक्षित ही रहा। वीरमती और उसके खजाने को लेकर वह राजा के पास आया।

राजा ने मदनमजरी के साथ उसका विवाह कर दिया। कुँवर अगड़दत्त मदन-मंजरी को साथ लेकर सोना सहित वसन्तपुर की ओर चला। गोकुल नामक स्थान पर उसे कुछ लोगो ने बताया कि वह मार्ग भूल गया है। जिस मार्ग से वह जा रहा है उस पर उसे नदी, केहरी सिंह, सर्प और चोर, इन चार सकटों का सामना करना पड़ेगा। मदन-मजरी के मना करने पर भी वह उसी मार्ग पर बढ़ता रहा और मार्ग में उसे उक्त सकटों

का सामना करना पड़ा। कठिनाइयों को पार कर वसन्तपुर पहुँचने पर उसके परिवार ने उसका स्वागत किया।

अभगसेन को उसने एक सरोवर के समीप स्वागतार्थ आमन्त्रित कर द्वन्द्वयुद्ध में मौत के घाट उतार दिया। माता-पिता को विदा कर कुंवर अगड़दत्त मदनमंजरी के साथ सरोवर पर ही रुक गया। मदनमंजरी को अगड़दत्त की अनुपस्थिति में पर पुरुष से संभोग करते देखकर आकाश मार्ग मे विहार करता एक विद्याधर वहाँ उतर आया और उसे मारने को तत्पर हुआ। इसी बीच एक साँप ने मदनमजरी को डस लिया। अगड़दत्त को जब उसकी मृत्यु का पता चला तो वह विलाप करता हुआ पत्नी को लेकर उसके साथ अग्नि-प्रवेश करने लगा। विद्याधर ने नारी के लिए मरने को व्यर्थ बताया, पर अगड़दत्त ने इसे स्वीकार नहीं किया, अपितु विद्याधर से उसे जीवित कर देने की प्रार्थना करने लगा।

विद्याधर ने मंत्रप्रयोग द्वारा मदनमंजरी को पुनर्जीवित किया। तत्पश्चात् मदन-मजरी के परपुरुष के साथ सभोग की समस्त आँखों देखी घटना कुमार को सुना दी। कुमार ने विद्याधर को नवसरहार भेंट कर विदा किया।

विद्याधर के जाने के बाद मदनमजरी ने कुंवर को समीप के देहरे मे चलकर विश्राम करने का निवेदन किया। देहरे मे पहुँचकर मदनमजरी ने वहाँ उसे प्रकाश करने के लिए कहा। अगड़दत्त आग की खोज मे निकला। इसी अवधि मे कुंवरी की भेंट तीन चोरो से हुई। परिचयोपरान्त मदनमजरी ने उनसे अपने पति की हत्या करके उसे अपने साथ ले चलने का आग्रह किया। सशकित चोरों ने पहले तो इन्कार किया पर बाद में उन्होने स्वीकृति दे दी। मदनमजरी ने चोरों के दीपक को प्रज्वलित किया। अगडदत्त ने लौटने पर देहरे मे प्रकाश देखकर मदनमजरी से उसके विषय मे पूछताछ की। मदन-मजरी ने उसे कुंवर द्वारा लाई गई आग का प्रतिबिंब कहकर उसके सदेह को दूर किया। कुमार ने अपना खड्ग उसे दिया और स्वय अग्नि प्रज्वलित करने लगा। मदनमंजरी ने उसका वध करने के लिए उस पर खड्ग प्रहार किया, पर खड्ग दूर जा गिरा। कुमार की पृच्छा पर उसने उत्तर दिया कि उसने खड्ग को उल्टा पकड लिया था, अतः वह गिर गया।

चोर इस घटना को देखकर बहुत भयभीत हुए। वे सोचने लगे कि ससार स्वार्थी है। पत्नी भी स्वार्थवश अपने पति की हत्या कर सकती है। इस दृश्य से प्राप्त सत्य ने उन्हे विरागी बना दिया। वे चले गए। मार्ग मे उन्हें एक मुनि मिला। उन्होने उससे दीक्षा ली।

अगड़दत्त पत्नी सहित घर पहुँचा और पुत्रवान हुआ। एक दिन अगड़दत्त अपने प्रधान के साथ घूमता हुआ उस स्थान पर पहुँचा जहाँ भुजंगम नामक चोर साथी चोरों सहित तपस्या कर रहा था। अगडदत्त ने उनके वैराग्य का कारण पूछा तो उसने बताया कि यह अगडदत्त का उपकार है। अगड़दत्त ने उस अगडदत्त का परिचय पूछा तो चोर ने मदनमजरी के दुराचरण, पर पुरुष के साथ संभोग एवं देहरे में घटित सारी कहानी उसे सुना दी।

यति चोर से अपनी ही कहानी सुनकर कुँवर दुखी हुआ। उसने समझ लिया कि त्रिया-चरित्र अत्यन्त कुटिल है, उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इसके पश्चात् अगड़दत्त भी भुजंगम चोर के पास दीक्षित हुआ और नवम गवाक्ष को प्राप्त कर शिवपुरी पहुँचा।

इस प्रकार कुशललाभ कृत 'अगड़दत्त रास' प्राकृत-भाषा में लिखित 'अगड़दत्त चरित और १६वीं शताब्दी में रचित भीमकृत अगड़दत्त रास की ही परम्परा में विकसित रूप है। अत: इसकी तुलना वसुदेव हिण्डी, नेमिचन्द्र रचित उत्तराध्ययनटीका, भीमकृत 'अगड़दत्त रास' तथा सुमति के अगडदत्त मुनि चौपई आदि पूर्ववर्ती कृतियों में वर्णित कथाओं से निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत की जा सकती है।

(१) **अगड़दत्त का परिचय**—कुशललाभ ने स्वकृत अगड़दत्त रास में अगड़दत्त को वसन्तपुर के सेनापति शूरसेन का पुत्र कहा है।[११८] जबकि वसुदेव हिण्डी में वह उज्जयिनी के अमोघरथ सारथी का पुत्र कहा गया है।[११९] नेमिचन्द और सुमति क्रमश: शंखपुर के राजा सुन्दर[१२०] अथवा सुरसुन्दर[१२१] का पुत्र घोषित करते हैं, तो भीमकृत अगड़दत्त रास में वह चम्पानगरी के राजा वीरसेन का पुत्र कहा गया है।[१२२] वसुदेव हिण्डी, सुमतिकृत अगडदत्त मुनि चौपई' और कुशललाभ कृत अगड़दत्त रास में उसकी माता के विषय में कहीं कुछ भी नहीं कहा गया है, जबकि नेमिचन्द उसकी माता का नाम सुलसा[१२३] देता है और भीम वीरमती।[१२४]

(२) **अगड़दत्त की शिक्षा**—कुशललाभ के अनुसार अपने पति की मृत्यु के उपरान्त राज्य मे अपना अनादर होता देख अगड़दत्त की माता अपने पुत्र को विद्याध्ययन के लिए अपने स्वर्गीय पति के इच्छानुसार उनके मित्र उपाध्याय सोमदत्त के पास चम्पापुर भेजती है।[१२५] यही वृत्तात 'वसुदेव हिण्डी' मे वर्णित है, किन्तु यहाँ स्थान का नाम कौशाम्बी तथा गुरु का नाम आचार्य दृढ प्रहरी दिया गया है।[१२६] इसके विपरीत उत्तराध्ययन वृत्ति,[१२७] भीमकृत 'अगड़दत्त रास'[१२८] तथा सुमति द्वारा रचित 'अगडदत्त मुनि चौपई'[१२९] मे यह प्रसंग इतर रूप मे प्रस्तुत हुआ है। इन 'कथा' रूपों मे नगरवासियो द्वारा अगड़दत्त पर व्यभिचारिता का लांछन लगाया जाता है। परिणामस्वरूप राजा उसे देश-निकाला देता है और वह उज्जैन अथवा बनारस पहुँचकर गुरु से शिक्षा ग्रहण करता है।

(३) **मदनमंजरी का प्रणय-निवेदन**—कुशललाभ आदि कवियों ने मदनमंजरी के अगड़दत्त के प्रति आसक्ति एवं प्रणय-निवेदन का कारण उसके पति का विदेश-गमन कहा है। किन्तु भीमकृत 'अगड़दत्त रास' मे इसका कारण उसके पति का कुबड़ा होना वर्णित है। इस अतृप्त-वासना-वश वह अगड़दत्त पर गवाक्ष से कंकर मारा करती है।[१३०]

(४) **मदनमंजरी और उसके पिता के नाम**—अगड़दत्त से प्रणय-निवेदन करने वाली नायिका के नाम और उसके कुल तथा पिता के नाम के विषय में भी इन कथारूपों में अन्तर दिखाई देता है। कुशललाभ के 'अगड़दत्त रास' में नायिका का नाम मदनमंजरी है और पिता का नाम सागरसेठ।[१३१] 'वसुदेव हिण्डी' मे इसका नाम सामदत्ता और पिता का नाम गृहपति यज्ञदत्त वर्णित है,[१३२] जबकि भीम ने नायिका का नाम विषया देकर उसे

विनयसागर राजा के प्रधान मतिसागर की पुत्री कहा है।[133] सुमति ने इस नायिका का नाम त्रिलोचना दिया है और उसके पिता का नाम बंधुदत्त।[134]

(५) **अगड़दत्त का विवाह**—अगड़दत्त द्वारा चोर की खोज एवं मदमस्त हाथी को अपने वश मे कर लेने के पश्चात् प्रायः सभी रूपान्तरों में राजा की पुत्री का विवाह अगड़दत्त के साथ होना वर्णित है। किन्तु कुशललाभ ने इस विवाह के पश्चात् मदनमंजरी की धाय को अगड़दत्त के पास भिजवाकर उसे मदनमंजरी के साथ विवाह का स्मरण भी करवाया है।[135] कुशललाभ ने राजा की पुत्री के नाम का उल्लेख नहीं किया है, पर नेमिचन्द और सुमति ने पुत्री का नाम क्रमशः कमलसेना[136] तथा कनकसुन्दरी[137] दिया है। 'उत्तराध्ययन वृत्ति' में वर्णित अगड़दत्त की कथा,[138] सुमति द्वारा विरचित अगड़दत्त रास[139] कुशललाभ कृत अगड़दत्त[140] में वीरमती भुजंगम चोर की बहन का नाम है।

(६) **अभंगसेन का वध**—कुशललाभ ने 'अगड़दत्त रास' में चम्पानगरी से लौटते हुए मार्ग की अन्य कठिनाइयों के साथ अगड़दत्त द्वारा उसके पिता के हत्यारे अभंगसेन (सुभट) के वध का उल्लेख किया है।[141] यह प्रसंग अन्य कथारूपों में नहीं मिलता।

(७) **विद्याधर-मदनमंजरी-प्रसंग**—कुशललाभ ने स्वकृत 'अगड़दत्त रास' में बसन्तपुर की सीमा पर मदनमंजरी को पर पुरुष के साथ रमण करते हुए बताया है, जिसे देखकर आकाश मे उड़ता हुआ विद्याधर उसकी हत्या करने की सोचता है।[142] किन्तु तभी मदनमजरी को सर्प डस लेता है और अगड़दत्त भी उसके साथ विलाप करने लगता है। अगड़दत्त के करुणार्द्र निवेदन पर विद्याधर मदनमजरी को पुनर्जीवित करके नारी-आचरण का सकेत करता है।[143] वसुदेव हिण्डी[144] और उत्तराध्ययन वृत्ति[145] मे वर्णित कथाओं मे विद्याधरयुगल का उल्लेख है तो भीम के अगड़दत्त रास में एक ही विद्याधर का उल्लेख है। जो अगड़दत्त को समल राजा और कामुक मोह के दृष्टान्त से प्रतिबोधित करता है।[146] इस प्रकार कुशललाभ ने नारी जाति की कुटिलता को मानव जाति के माध्यम से ही स्पष्ट किया है, जबकि भीम ने इस प्रवृत्ति को जन्तु-समाज में भी व्याप्त बताकर इसका सामान्यीकरण किया है।

(८) **अगड़दत्त का दीक्षित होना**—कुशललाभ द्वारा वर्णित कथा में अगड़दत्त देवस्थान मे मिले चोरो के नायक से अपना चरित्र सुनकर संसार की असारता का ज्ञान प्राप्त कर दीक्षित होता है। जबकि वसुदेव हिण्डी मे अगड़दत्त दीक्षित होकर अपने चरित्र का स्वयं उद्घाटन करता है। नेमिचन्द-विरचित 'उत्तराध्ययन वृत्ति' में कवि ने अगड़दत्त को दीक्षा देने वाले ऋषि का नाम चारण ऋषि दिया है।[147]

(९) **शिल्प विधान**—भीम का अगड़दत्त रास पाँच खण्डों में विभक्त है, जिसमें कुल ४६० छन्द (दूहा-चौपई) हैं। कुशललाभ ने ऐसा शिल्प ग्रहण नही किया है। उसने तो अन्य पूर्ववर्ती कवियो के शिल्प को ही अपनाया है। साथ ही उसने वसुदेव हिण्डी, भीम, सुमति आदि की भाँति काव्य मे विस्तृत प्राकृतिक वर्णनो एव नख-सिख-वर्णन को भी महत्त्व नही दिया है। उसने सरस्वती की आरम्भ मे वन्दना तो की है, पर धार्मिक दृष्टि का ही उसमें आचरण है।

उक्त अध्ययन के उपरान्त हम कुशललाभ की अगड़दत्त कथा में अन्य पूर्ववर्ती कथाओं के साथ निम्नलिखित साम्य एव वैषम्य का अनुभव करते हैं—

साम्य

१. अगड़दत्त रूपवान नायक है, जिस पर प्रत्येक नारी आसक्त है।

२. उपाध्याय (गुरु) ने उसे माता-पिता की आज्ञा पालन का आचरण दिया।

३. परिव्राजक चोर का पता सात दिनों में लगा लाने तथा मदमस्त हाथी को वश में करने का बीड़ा अगड़दत्त ही उठाता है।

४. छः दिन तक भटकने के उपरान्त सातवे दिन परिव्राजक रूप में चोर को वह ढूंढ लेता है और उसको मारकर राजा के समक्ष उपस्थित होता है।

५. राजा उक्त दोनो साहसिक कार्यों के बदले अगडदत्त का विवाह अपनी पुत्री से करता है।

६. मार्ग की कठिनाइयाँ एवं उन पर अगडदत्त की विजय प्राप्ति।

८. विद्याधर द्वारा नायिका को जीवित करना तथा नारी की कुटिलता का अगडदत्त को प्रतिबोध कराना।

८. देवस्थल पर चोरों के साथ नायिका का प्रणय एव अगड़दत्त पर खड्ग-प्रहार तथा चारो चोरो का दीक्षित होना।

९. रमणोपरान्त अगडदत्त का दीक्षित होना।

वैषम्य

१. अगड़दत्त का प्रदेश-गमन।

२. मदनमजरी एव अगडदत्त के विवाह का प्रसंग।

३. अटवी मे भुजगम चोर को मारकर पुन. चम्पानगरी को नही लौटना।

४. अपने पिता के हत्यारे अभगसेन (सुभट) का वध।

५. भीमसेन द्वारा अगड़दत्त को पुन. वसन्तपुर बुलवाना तथा नगर की सीमा पर माता-पिता द्वारा उसका स्वागत एव मदनमजरी के साथ अगडदत्त का मार्ग में ही रुक जाना।

६. नायिका एव सरस्वती का नख-सिख-वर्णन।

७. पात्रो एव स्थानो के नामो का अन्तर।

सूक्ष्म दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो नामो का यह अन्तर विभिन्न कथा-रचयिताओ के बुद्धि-कौशल का चमत्कार प्रदर्शन मात्र है। धनजय का अर्थ ही भुजगम होता है और अन्य अर्थ अर्जुन भी। अतः धनंजय, भुजगम अथवा अर्जुन नामो मे कोई अन्तर नही। केवल पाठको (श्रोताओ) को समझाने मात्र के लिए ऐसा किया गया है। मदनमजरी, विषया और वीरमती भी एक ही अर्थ के बोधक नाम है।

(घ) स्थूलिभद्र छत्तीसी एव स्थूलिभद्र कथा के अन्य प्राप्त रूप

जैन-साहित्य मे स्थूलिभद्र का बड़ा महत्त्व है। आगम-साहित्य मे भगवान

महावीर और गौतम के पश्चात् तृतीय मंगल के रूप में स्थूलिभद्र का ही स्मरण किया गया है।[१४८] स्थूलिभद्र आरम्भ मे एक कामुक प्रेमी था। पाडली नगर की प्रसिद्ध वेश्या कोशा से उसका प्रेम था। श्रावक बनने के उपरान्त उसके संयम का चित्रण करना ही आगम की इस कथा का मूल लक्ष्य रहा है।

आगम-प्रचलित इसी कथा को मध्यकालीन जैन कवियों और साधुओं ने ग्रहण कर सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, राजस्थानी, गुजराती भाषाओं में अनेक सरस ग्रन्थों का निर्माण किया। कुछ कवियों ने इस कथा पर प्रबन्ध रचे तो कुछ एक ने लघु फागु तो शेष ने फुटकर कवित ही। कुशललाभ ने आगम-प्रसिद्ध स्थूलिभद्र की कथा को फुटकर ३७ पद्यों मे निबद्ध किया है।

१२वीं १८वी शताब्दी तक रचित स्थूलिभद्र से सम्बन्धित निम्नलिखित कृतियाँ मिलती हैं—

१. स्थूलिभद्र कथा—अज्ञात[१४९]
२. स्थूलिभद्र फाग (वि० सं० १३९०)—जिनपद्मसूरि[१५०]
३. स्थूलिभद्र फाग (वि० सं० १४०१)—हलराज[१५१]
४. स्थूलिभद्र बारहमासा (वि० स० १४६५)—हीरानन्दसूरि[१५२]
५. स्थूलिभद्र कवित्त (वि० स० १४८१)—सोमसुन्दरसूरि[१५३]
६. स्थूलिभद्र काक (वि० सं० १४९१)—देवाल[१५४]
७. स्थूलिभद्र छन्द (वि० १५वी शती)—मेरूनदन[१५५]
८. स्थूलिभद्र फाग (वि० १६वी शती)—जगमल[१५६]
९. स्थूलिभद्र अट्ठावीसऊ (वि० स० १५३०)—पद्मसागर[१५७]
१०. स्थूलिभद्र एकवीसो (वि० स० १५५३)—लावण्य समय[१५८]
११. स्थूलिभद्र बासठीओ—जय वल्लभ[१५९]
१२. स्थूलिभद्र गुण रत्नाकर छन्द (वि० स० १५७२)—सहजसुन्दर[१६०]
१३. स्थूलिभद्र मदन युद्ध (वि० स० १६०४)—गोवर्धन[१६१]
१४. स्थूलिभद्र कोशाप्रेम-विलास फाग (वि० १६वी शती)—जयवन्तसूरि[१६२]
१५. स्थूलिभद्र मोहन वेलि (वि० स० १६४४)—जयवन्तसूरि[१६३]
१६. स्थूलिभद्र छत्तीसी—वाचक कुशललाभ[१६४]
१७. स्थूलिभद्र (फाग) धमालि चौपई—मालदेव[१६५]
१८. स्थूलिभद्र स्वाध्याय (वि० स० १६२२)—आणदसोमा[१६६]
१९. स्थूलिभद्र रास (वि० स० १६२२)—समयसुन्दर[१६७]
२०. स्थूलिभद्र रास (वि० स० १६४४)—रगकुशल[१६८]
२१. स्थूलिभद्र रास (वि० १७वी शती)—समयसुन्दरोपाध्याय[१६९]
२२. स्थूलिभद्र चौपाई रास (वि० १७वी शती)—साधुकीर्ति[१७०]
२३. स्थूलिभद्र रास (वि० स० १६६८)—ऋषभदास[१७१]
२४. स्थूलिभद्र कोश्याभास -नयसुन्दर[१७२]
२५. स्थूलिभद्र रास—उदयरत्न[१७३]

२६. स्थूलिभद्र रास (वि० सं० १७५९)—जिनहर्ष[174]
२७. स्थूलिभद्र चौपई (वि० सं० १८२४)—चरित्र सुन्दर[175]
२८. स्थूलिभद्र शीयल वेली (वि० सं० १८६२)—वीरविजय[176]
२९. स्थूलिभद्र गीत (वि० स० १८८९)—समयसुन्दर[177]
३०. स्थूलिभद्र सज्झाय—देवकुमारी(?)[178]
३१. स्थूलिभद्र रास—तुंहलराज[179]
३२. स्थूलिभद्र—ऋषिवर कथा[180]
३३. स्थूलिभद्र चरित सरणार्थ[181]
३४. स्थूलिभद्र बारह मासादि[182]
३५. स्थूलिभद्र फाग (?)[183]

इन सभी कवियो ने सम्बन्धित रचनाओ में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किए हैं। अधिकाश कवियो ने राजा नन्द के मत्री शकडाल के पुत्र स्थूलिभद्र को कोशा के प्रति प्रेम एव उसकी चित्रशाला के उद्दीप्त वर्णन के साथ स्थूलिभद्र के वैराग्य को ही अपनी रचना की विषय-वस्तु बनाया है। शकडाल, वररुचि और रथिक का कथावृत्त दो-तीन कृतियों मे ही मिलता है। कुशललाभ ने भी स्थूलिभद्र एव कोशा के इस प्रेम कथानक मे किंचित परिवर्तन किए है। कुशललाभ कृत स्थूलिभद्र छत्तीसी मे अन्य प्राप्त रूपो की तुलना मे निम्नलिखित अन्तर लक्षित होते है—

१. पूर्ववर्ती कथाओ मे नवम् राजा नन्द का उल्लेख करते हुए स्थूलिभद्र एव श्रीवत (श्रीकत) को उसके मन्त्री शकटार अथवा शकडाल का पुत्र बताया गया है, जबकि यहाँ ऐसा कोई उल्लेख नही है। यहाँ तो कवि ने केवल स्थूलिभद्र के द्वारा श्रावक बनकर प्रेमिका कोशा की चित्रशाला मे सयम से चातुर्मास बिताने का ही वर्णन किया है।

२. वररुचि और शकडाल की कथा का उल्लेख केवल आगम मे वर्णित कथाओं मे ही हुआ है। अन्य परवर्ती कृतियो मे इसका कोई उल्लेख नही किया गया है। कुशल-लाभ ने भी इस प्रसग पर मात्र सूत्रात्मक परिचय ही दिया है।

३. यहाँ स्थूलिभद्र के हृदय परिवर्तन की घटना का विस्तृत वर्णन नहीं किया गया है। केवल सकेत दिया गया है कि वह सभूति विजय से दीक्षित हुआ।

४. मधुछत्र एव कूप की कथा का दृष्टात कवि की मौलिक सूझ है। इस दृष्टांत का अन्य पूर्ववर्ती कृतियो मे उल्लेख नही हुआ है।

सन्दर्भ

१. कुशललाभ के प्रेमाख्यानकों का नामोल्लेख दूसरे अध्याय में किया जा चुका है।
२. यह जैनियो के २०वें तीर्थङ्कर है। इनके श्रावकों की सख्या एक लाख बहत्तर हजार तथा श्राविकाओ की सख्या साढ़े तीन लाख कही गई है।
३. आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज—प्रथम भाग, तीर्थङ्कर-खण्ड, पृ० १३४
४. मोहनलाल दलीचन्द देसाई, आनन्द काव्य महोदधि, मौक्तिक ७, पृ० १५९

५. वही
६. डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव, भारतीय प्रेमाख्यान, पृ० २१९-२२०
७. एम० आर० मजूमदार : माधवानल कामकदला प्रबन्ध : भाग १, परिशिष्ट-१, पृ० ३४१—३७९
८. वही, पृ० १—३४०
९. डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव : भारतीय प्रेमाख्यान, पृ० २७९
१०. श्री अगरचन्द नाहटा, माधवकृत माधवानल कामकंदला रस विलास, मरुवाणी अंक ४
११. मो० द० देसाई, आनन्द काव्य महोदधि, मौक्तिक ७
१२. श्री अगरचन्द नाहटा, माधवानल कथा-सम्बन्धी अन्य कथाएं, हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ११, अक ४, पृ० ४०
१३. श्री अगरचन्द नाहटा, माधवानल कामकदला सम्बन्धी दो अज्ञात रास, हिन्दी-अनुशीलन, भाग ४, अक २, पृ० ३०
१४. रा० प्रा० वि० प्र०, जयपुर, ग्र० ७१२२
१५. श्री अगरचन्द नाहटा, माधवानल कथा-सम्बन्धी अन्य कथाएँ, हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ११, अक ४, पृ० ४०
१६. एम० आर० मजूमदार, मा० का० कं० प्र०, भाग १, पृ० ४४३—५०९
१७. अगरचन्द नाहटा, माधवानल कामकदला सबधी दो अज्ञात रास, हिन्दी अनुशीलन, भाग ४, अक २, पृ० ३२
१८. डॉ० सत्येन्द्र जी वर्मा, माधवानल नाटक
१९. डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव : भारतीय प्रेमाख्यान, पृ० २३३-२४०
२०. हिन्दुस्तानी, भाग १९, अक ४ (श्री अगरचन्द नाहटा का लेख)
२१. डॉ० सत्येन्द्र जी वर्मा, माधवानल नाटक, भूमिका, पृ० ४
२२. डॉ० रज़ाज हुसैन, उर्दू साहित्य का इतिहास, पृ० २२८
२३. हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ११, अक २, (डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय का लेख)
२४. यद्यपि यह रचना कुशललाभ से परवर्ती है, फिर भी हिन्दी के प्रतिनिधि रूपान्तर के रूप मे इसे अध्ययन मे सम्मिलित किया है।
२५. भाषा और शैली के आधार पर यह कृति कुशललाभ के रचनाकाल से पूर्व रचित प्रतीत होती है। इसलिए इसे भी अध्ययन में सम्मिलित किया है।
२६. आनन्द काव्य महोदधि, मौ० ७, चौ० १२-१४, ३३, ७०, ७६
२७. वही, चौ० १११-११२
२८. वही, चौ० ३८, ४३
२९. माधवानल कामकदला प्रबन्ध, गायकवाड़ सीरीज, भाग XCIII, चौ० ११८, पृ० १६
३०. आ० का० म०, मौ० ७, चौ० ५५
३१. वही, चौ० ४७-४८

३२. मा० का० क० प्र०, गायकवाड़ सीरीज, भाग XCIII, चौ० १२३–१५३, पृ० १८-२० (प्रथम अग)
३३. आ० का० म०, मौ० ७, चौ० १२७-१३३, १४५-१४८
३४. (क) मा० का० क० प्र०, गा० सी०, भाग XCIII, चौ० २५, पृ० ४२ (तृतीय अग)।
(ख) वही, माधवानल कथा, गा० सी०, भाग XCIII, चौ० १४-१६, पृ० ४४४
३५. मा० का० क० प्र०, गा० सी०, भाग XCIII, मा० का० क० दो०, चौ० ६०, पृ० ४७, (तृतीय अग)।
३६. वही, चौ० ६६, पृ० ४४८
३७. वही, चौ० २५, १४४-१५३, २२५-२२६, २७२-२७६, २६३-२६४ (चतुर्थ अंग)।
३८. वही, छ० १७८, १८३, २३५, पृ० ४५७ और ४६१
३९. आ० का० म०, मौ० ७, चौ० १६७
४०. मा० का० क० प्र०, गा० सी०, भाग XCIII, पृ० ३६४-३६५
४१. वही, छ० ६००-६०२, पृ० ४६१-४६२
४२. डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव, भारतीय प्रेमाख्यान, पृ० २६०
४३. वही
४४. आ० का० म०, मौ० ७, चौ० ३६६-३६७
४५. वही, चौ० ३८०-३८१
४६. मा० का० क० प्र०, गा० सी०, भाग XCIII, माधवानल आख्यानम्, पृ० ३७०
४७. वही, मा० का० क० दो०, छ० २३१, पृ० २७५ (सप्तम् अग)।
४८. आ० का० म०, मौ० ७, चौ० ४८८
४९. मा० का० क० प्र०, गा० सी०, भाग XCIII, पृ० ३७७
५०. वही, पृ० ३७७ (अन्तिम गद्याश)
५१. आ० का० म०, मौ० ७, चौ० ६४८-६४९
५२. दूगड एव ओझा, मुहणोत नैणसी री ख्यात, भाग १, २
५३. ज० क० पटेल, सिद्धहेम शब्दानुशासन, पृ० ४
५४. दूगड़ एव ओझा, मुहणोत नैणसी री ख्यात, भाग २, पृ० ४४५
५५. सवत नवे अठोतरे हुआ दुदुग्रह उछाह।
ढोला मारू परणीया, हुवा बघेरे व्याह ॥१२

—ग्रन्थाक ४१८, ढोला-मारवणी री बात।

५६. ढोला मारू रा दूहा मे काव्य-सौष्ठव, सस्कृति एव इतिहास, पृ० ३६
५७. कछवाहों का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ९
५८. ढोला मारू रा दूहा मे भूमिका, पृ० १०
५९. एक परदेसी इम उच्चरे, जे पुहकर तणी जात्रपत गरे
कुटुब सहीत पोहचे तणीधान, तो सही होशे पुत्र सतान ॥
मनिवात रायमन धरी, पहुकर तणी जात्रपत गरी।

अनुक्रमे रांणी हुयो ग्रभ आधान, हरख्या नगर लोक राजान ।।
पुत्र जन्म हरख्यो परीवार, राजा मनि आणद अपार ।
घरी घरीउछव मंगल घणा, किआ बधावणा पुत्रहतणा ।।

—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० १४६-१५१

६०. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित ।

६१. ब्रजभारती, वर्ष १२, अक २-३, श्री चन्द्रभान 'राधे-राधे' का लेख मदारी कृत ढोला ।

६२ डॉ० भगवतीलाल शर्मा, ढो० मा० रा दू० में का० सौ० सं० एव इति०, पृ० २९६-२९८

६३ वही, पृ० २९६

६४. वही, पृ० २९४-२९५

६५. वही, पृ० २९५-२९६

६६. प्यगल थी उचाला कीआ, धण गोदल सवि साथे लीआ ।
नगर लोक सहु परवर्या, आवि गढ़ पुहकर ऊतर्या ।।

—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० १४०

६७. राजा सुहिणो पाम्यो राति, जांणू जोवु पुहकर जात ।

× × ×

राज भलाके मुहता भषी, राजा चाल्यो जात्रा मणी ।। —वही, चौ० १५४-१५५

६८. रंग रमे बेहूं राजान, बोल्यो नल राजा परधान ।।१७३
प्रीत बीहु ढोला तणी, सगपणी होइ तो वाधे घणी ।।१७४

—डॉ० जावलिया की प्रति ।

६९. पिंगल राजा कियो पसाउ, करी सगपण सतोष्यो राय । —वही, चौ० १७७

७०. आषे ऊमा देवडी, वालभ होइ विचार
मनह सकोड़ी मारवीणा, दीन्ही समदा पर ।।१८० —वही

७१. ना० प्र० स०, काशी, ढोला मारू रा दूहा, पृ० २

७२. ब्रजभारती, वर्ष १२, अक २-३, पृ० ४५

७३. डॉ० भगवतीलाल शर्मा, ढोला मारू रा दूहा मे का० सौ० स० एव इति०, पृ० २९७

७४. वही, पृ० २९५

७५. नल केहेवाड़यो प्रोहित पास, मारवणी मूकी अम्ह साथि ।।

—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० १८८

७६. पोहचासां सात वरसां पछि, तां लगि कुमरी कि कां अछिइ ।। —वही, चौ० १८९

७७ समाचार सोझ न कोइ, अलगि सग घणे ए परि हुई ।।

× × ×

कीयो नातरो ढोला तणे, बिहु राजा आणद मनि घणो ।

—वही, चौ० १९१ और १९८

७८. अणी अवसीर नलवर पट वणी, आलोचे त्रेवड आपणी
 परणी स्त्री ति मारू तणी, मती कहो कोई ढोला मणी ॥
 मारवणी परणी जांणसी, आणा काजि जाई आणसी। —वही, चौ० १९२-१९३
७९. ब्रजभारती, वर्ष १२, अंक २-३, पृ० ४५
८०. डॉ० भगवतीलाल शर्मा, ढोला मारू रा दूहा में का० सौ०, सं० एवं इति०, पृ० २९७, संस्क० १९७० ई०
८१. वही, पृ० २९४
८२. वही, पृ० २९५
८३. सासू बहू प्रते उचरे, कांई बड़ाई इतरी करे
 जो मारवणी अलगी रही, तो तु करें वड़ाई सही ॥
 × × ×
 सहु वात ढोले सांभली, मालवणी मनि थई आकुली।
 —डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० २६४ और २६६
८४. समाचार सहु ढोला तणा, सोदागरी कहिआ अति घणा ॥
 मारवणी तणी वेला वली, छांनि सहु वात सांभली।
 साची मनि सोदागर कही, मारवणी हीयड़े संग ही ॥
 —वही, चौ० २१५-२१६
८५. उत्तर दीसी उपराठियां, दिक्षिण सांमहियां
 कूझी एक सदेसड़ो, ढोला ने कहीयां ॥
 —वही, चौ० २१९ एव अन्य छन्द जो ढोला मारू चौपई के सम्पादित रूप ढोला मारू रा दूहा के परिशिष्ट थ मे भी मिलते हैं।
८६. डॉ० भगवतीलाल शर्मा, ढोला मारू रा दूहा मे का० सौ०, स० एव इति०, पृ० २९४
८७. वही, पृ० २९५
८८. ब्रजभारती, वर्ष १२, अक २-३, पृ० ४५
८९. डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० २४९
९०. डॉ० भगवतीलाल शर्मा, ढोला मारू रा दूहा में का० सौ, स० एव इति०, पृ० २९७
९१. पछे प्रोहित राषीयो, तेड़या मांगणहार
 जाणे भेदग गीता तणा, बात करे सो विचार ॥
 —डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० १७४
९२. डॉ० भगवतीलाल शर्मा, ढोला मारू रा दूहा में का० सौ०, सं० एवं इति०, पृ० २९७
९३. साझे समुझे आविआ सही, नीरष्या नयणे ढोले बेही ॥
 × × ×
 मारू तणा दूहा जो कह्या, ढोले लें हीयड़े सग्रह्या।

९४. डॉ० भगवतीलाल शर्मा, ढोला मारू रा दूहा में का० सौ०, सं० एवं इति०, पृ० २९८
९५. वही, पृ० २९४
९६. ब्रजभारती, वर्ष १२, अंक २-३, पृ० ४६
९७. ना० प्र० स०, काशी, पृ० १२६
९८. सोमेलो मोटे मंडांण, ढोला मिलवा तणी परियांण ।।
—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० ५४२
९९. ढोला—ऐह गुनह षमज्यो माहरो, मि विजोग कीधो ताहरो ।
नीरत पषे जाणे कुणलोइ, अणजाणै नर दोस न कोई ।।
मारवणी—पैले भव-पाप मैं कीआ, तो तुझ विण इतरा दिन गया ।
सैमुष वात करें वाषाण, जीवत जन्म आज सुप्रमांण ।।
—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० ५५४, ५५७
१००. ना० प्र० स०, काशी, पृ० १३७-१४२
१०१. ब्रजभारती, वर्ष १२, अंक २-३, पृ० ४६
१०२. डॉ० भगवतीलाल शर्मा, ढोला मारू रा दूहा में का० सौ०, सं० एवं इति०, पृ० २९८
१०३. वही, पृ० २९५
१०४. वही, पृ० २९३
१०५. ना० प्र० स०, काशी, पृ० १५०, दूहा ६२३
१०६. ऊमर ऊतवलि करइ, पल्लाणीवा पवग ।
षुरसांणी सूघा षरा, चढ़ीआ दल चतुरंग ।।—डॉ० जावलिया की प्रति, दूहा ६७१
१०७. ब्रजभारती, वर्ष १२, अंक २-३, पृ० ४६
१०८. डॉ० भगवतीलाल शर्मा, ढोला मारू रा दूहा में का० सौ०, सं० एवं इति०, पृ० २९८
१०९. बेहु तणे पुत्र संतान, दिन दिन कत अधिक बेहु मान ।
मनि वांछित पाम्यो भोग, सुष संपतीसजन संभोग ।।
—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० ७३५
११०. ना० प्र० स०, काशी, पृ० १६३, दूहा ६७४
१११. ब्रज भारती, वर्ष १२, अंक २-३, पृ० ४६
११२. श्री भंवरलाल नाहटा, अगड़दत्त कथा और तत्सम्बन्धी जैन साहित्य, वरदा, वर्ष २, अंक ३, पृ० २
११३. डॉ० जे० सी० जैन, प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ० ११।६
११४. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ह० ग्रं० २७२३३
११५. वही, ग्रं० ११२४
११६. (क) भण्डारकर प्राच्य विद्या मन्दिर, पूना, ह० ग्रं० ६०५
(ख) प्राच्य विद्या मन्दिर, बड़ौदा, ह० ग्रं० १४२८९

११७. १२ बरदा, वर्ष, अक ३, पृ० २
११८. बसन्तपुर सेनापति जेह, सूरसेन नड नन्दन एक ।। चौ० ५५
—भण्डारकर प्राच्य विद्या-मन्दिर, पूना, ग्रं० ६०५
११९. डॉ० जे० सी० जैन, प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ० १३, १६९
१२०. वही, पृ० १७०
१२१. संषपुरी नगरी छई किसी × × तिणी नयरी सुरसुन्दर राई × ×
अगड़दत्त तसु दीधउ नाम ।। चौ० ९—११
—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, ग्रं० ११२४
१२२. भरथषेत्र महीयलि माणियइ, चंपावह नगरी जाणीयह ।
वीरसेन नामई बलवत, राजा राज करइ जयवत ।।२९
× × ×
दीउड बालक अति अभिराम, अगडदत्त तसु दीधउ नाम ।।३२
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २७२३३
१२३. डॉ० जे० सी० जैन, प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ० १३
१२४. वीरमति घरिराणी इसी, रूपडि रजावे डरिवसि ।।२४
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्र० २७२३३, चौ० ४१-४३
१२५. भण्डारकर प्राच्य विद्या मन्दिर, पूना, ग्र० ६०५, चौ० २५-२७
१२६. डॉ० जे० सी० जैन, प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ० १३
१२७ वही, पृ० १७०
१२८ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाक २७२३३, चौ० ४२-४३
१२९. वही, ग्रन्थाक ११२४, चौ० १५-१८
१३० वही, ग्रन्थाक २७२३३, चौ० १०१-१०५
१३१. इणि अवसरि वाडी नह पामि, सागर सेठी तवाइ आवास ।।३६
साहमइ गडपि सेठि कुअरी सेह नड नाम मदनमजरी ।।३७
—भण्डारकर प्राच्य विद्या मन्दिर, पूना, ग्रन्थांक ६०५
१३२. डॉ० जे० सी० जैन, प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ० ३
१३३. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्र० २७२३३, (अगड़दत्त रास)
१३४ पुहतउ वनह मंझारि, दीठी रभ त्रिलोचना ।।२२
वधुदत्त विवहारीउ, ते माहरउ लात ।।२५
—रा० प्रा० वि० प्र० जोधपुर, ग्रन्थांक ११२४, (अगडदत्त मुनि चौपई)
१३५. भण्डारकर प्राच्य विद्या मन्दिर, पूना, ग्र० ६०५, चौ० १३५-१३६
१३६. डॉ० जे० सी० जैन, प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ० १७०, (उत्त० वृत्ति)
१३७. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थाक ११२४
१३८. डॉ० जे० सी० जैन, प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ० १७०
१३९. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थांक ११२४, चौ० ५०
१४०. भण्डारकर प्राच्य विद्या मन्दिर, पूना, ग्रन्थांक, ६०५, चौ० ६४

१४१. वही, चौ० २३५, २३७
१४२. तेह तणी नारी छजजेह, अन्य पुरुष सिउं लुबधी तेह ।
ते विद्याधरि जाणी बात, करवा मांडिउ नारी घात ॥ —वही, चौ० २४६
१४३. वही, चौ० २५७-२५९
१४४. डॉ० जे० सी० जैन, प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ० १६९
१४५. वही, पृ० १७०
१४६. वलीय विद्याधर भणइ, तू सांभली भूपाल,
कहु कथा कामिणी तणी, सुषि सुन्दर सुविसाल ॥३५०
पाछलि एक राजा हतउ सयल हतउ तस नाम
राजा रूधि होती घणी, करइ राज अभिराम ॥३५१
गोर सर्प्पनह सापिणी, क्रीड़ा करइ मनि रगि,
ते देषी नृप वितवह, हीयडह करह विचार
सापिणी पर नरस्यु रमइ धिग-धिग ए ससार ॥३५२
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थांक २७२३३, (अगड़दत्त रास)
१४७ डॉ० जे० सी० जैन, प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ० १६९-१७०
१४८. स० मुनि हस्तीमल मेवाड़ी, आगम के अनमोल रत्न, पृ० ३८६
१४९ सोम प्रभाचार्य—कुमारपाल प्रतिबोध, पृ० ४४३—४६१
१५०. स० दशरथ शर्मा—रास एव रासान्वयी काव्य, पृ० १३८-१४३
१५१ स्वाध्याय—अक ३, पुष्प ८ (श्री कनुभाई ब्रजलाल शेठ का लेख—अद्यावत अप्रसिद्ध कवि हलराज कृत स्थूलिभद्र फाग)।
१५२. स० मोहनलाल दलीचन्द देसाई, गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ४३९
१५३. वही, पृ० ४३८
१५४. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, स्थूलिभद्रकाकादि, पृ० १—६
१५५ मणिधारी श्री जिनचद्र सूरि अष्टम शताब्दी स्मृति ग्रन्थ, द्वितीय भाग, (अगरचन्द नाहटा), पृ० ६१
१५६. मो० द० दे०, गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ३८-३९
१५७. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ह० ग्रन्थ २७००-२७१३६
१५८. जैन गुर्जर कविओ, भाग-१, पृ० २२५
१५९. वही, पृ० ५१७-५१८
१६०. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ह० ग्रन्थ २७३४५
१६१. जैन गुर्जर कविओ, भाग-३, पृ० ६५३
१६२. वही, पृ० ६७१-६७२
१६३. वही, पृ० ६७१
१६४. सप्तसिंधु, मार्च १९७८, पृ० १५—२६ (डॉ० मनमोहन स्वरूप माथुर का लेख)
१६५. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, प्राचीन फागु संग्रह
१६६. जैन गुर्जर कविओ, भाग-१, पृ० २२५

१६७. वही, भाग-३, पृ० ८४४
१६८. मणिधारी श्री जिनचन्द्र सूरि अभि० श० स्मृति ग्रन्थ, पृ० ६१
१६९. वही
१७०. जैन गुर्जर कविओ, भाग-३, पृ० ७००
१७१. वही, भाग-१, पृ० ४१५
१७२. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थ २०२३
१७३. वही, ग्रन्थ २९७५५, २९६८२
१७४. मणिधारी जिनचन्द्र सूरि अभि० श० स्मृति ग्रन्थ, पृ० ६१
१७५. जयचन्द भण्डार, बीकानेर
१७६. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थ २७३५८
१७७. जैन गुर्जर कविओ, भाग-१, पृ० ३८८
१७८. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ३५५० (४)
१७९. वही, ग्रन्थ ३४०६२
१८०. वही, ग्रन्थ २९०२९
१८१. वही, ग्रन्थ २५०९
१८२. वही, ग्रन्थ ३२७१४
१८३. जैन गुर्जर कविओ, भाग-३, पृ० ४१२

५

कुशललाभ रचित रीति काव्य 'पिंगल शिरोमणि' : विश्लेषण और अध्ययन

काव्यशास्त्र में 'रीति' शब्द विशिष्ट पद रचना, शैली, कथन या अभिव्यक्ति का वाची है,। आज के युग में इसको व्यापक अर्थ में ग्रहण करके रस, अलंकार, शब्दशक्ति, छन्द इत्यादि सभी काव्यांगों को इसमें सम्मिलित कर लिया गया है। राजस्थानी काव्य-शास्त्र में भी रीति-विवेचक प्रवृत्ति के मूल स्रोत संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशादिक भाषाओं के लक्षण-ग्रंथ ही माने गए हैं। स्वयंभू, हेमचन्द्र, मुनि नयनंद आदि के ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इन्होंने भी रीति-विषयक सामग्री को अपनी रचनाओं में स्थान दिया था। मुनि नयनंद की कृति 'सुदर्शन चरित' में नायिका-भेद-सम्बन्धी विवरण प्राप्त होता है।[१]

(क) राजस्थानी के रीति-विवेचक ग्रन्थ और 'पिंगलशिरोमणि'

रीति-विवेचक राजस्थानी भाषा के ग्रंथों में सर्वप्रमुख एवं सर्वप्रथम स्थान कुशललाभ प्रणीत 'पिंगलशिरोमणि' का है। कुशललाभ के पश्चात् कवि सोम विरचित 'दोधक चन्द्रिका', जोगीदास कृत 'हरिपिंगल प्रबन्ध', हमीर रतनू प्रणीत 'पिंगल प्रकास', 'लखपत पिंगल', सेवग मछा राम कृत 'रघुनाथ रूपक गीतां रो', बांकीदास कृत 'कृष्ण चन्द्र चन्द्रिका' एव रस तथा अलकार ग्रंथ, किसना आढ़ा कृत 'रघुवर जस प्रकास', 'उदयराम विरचित 'कविकुल बोध' ग्रथ प्रमुख हैं।

राजस्थानी रीति-विवेचक ग्रंथों की यह धारा पुन: २०वीं शताब्दी तक मरणासन्न हो गई। कारण, इस युग तक आते-आते हिन्दी-आन्दोलन में राजस्थानी के सभी प्रबुद्ध कवि आलोचक कूद पड़े। उन्होंने राजस्थानी को हिन्दी के प्रति समर्पित कर शुद्ध रूप से हिन्दी में लेखन आरम्भ कर दिया। इस प्रकार इस युग के आरम्भ मे राजस्थानी नाम की कोई भाषा नहीं रही। किन्तु कुछ राजस्थानी प्रेमी कवि एवं विवेचकों ने इस संक्रान्तिकाल में भी अपनी भाषा में खुलकर लिखा। आधुनिक काल के ग्रंथो में चारण कवि चिमनाजी कृत 'जसवन्त पिंगल', 'भाषा-प्रस्तार', मुरारीदान कृत 'डिंगल कोश', रणछोड द्वारा सम्पादित 'रणपिंगल', 'हरिकिशन रचित 'रूपदीनपिंगल' प्रमुख ग्रंथ है।

इस प्रकार राजस्थानी के रीति-विवेचक ग्रंथों की एक सुदीर्घकालीन परम्परा

रही है, जो संस्कृत रीति काव्य-परम्परा के समानान्तर है। यहाँ रीतिकालीन आचार्यों की भाँति पृथक् रूप से आचार्य नहीं रहे अपितु कवि ही आचार्य थे और आचार्य ही कवि बन गए। यही कारण है कि राजस्थानी रीति-विवेचक ग्रथों में अलकार, छन्द, गीत का तो विस्तृत विवेचन मिलता है, पर नायिका-भेद, हाव-भावादि के लक्षण-विवेचन का प्रायः अभाव ही है।

(ख) 'पिंगलशिरोमणि' : विश्लेषण

कुशललाभ ने 'पिंगलशिरोमणि' की रचना वि० सं० १६३५ श्रावण शुक्ला नवमी, रविवार को पूर्ण की। इसकी उपलब्ध हस्तलिखित प्रति एक ही है, जो श्री विनय सागर, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जयपुर के निजी सग्रह मे सुरक्षित है। इसी प्रति मे किया गया सम्पादन डॉ० नारायणसिंह भाटी ने 'परम्परा' भाग १३ में प्रकाशित किया है। ग्रथ मे अव्यवस्थित रूप मे विवेचित विषय-वस्तु को निम्नलिखित चार अध्यायों मे व्यवस्थित किया जा सकता है—

(अ)	अध्याय १	छन्द-निरूपण
(आ)	अध्याय २	अलकार-निरूपण
(इ)	अध्याय ३	उडिंगल नाम माला
(ई)	अध्याय ४	गीत-प्रकरण

१. छन्द-निरूपण

'पिंगलशिरोमणि' के प्रथम प्रकाश से चतुर्थ अध्याय तक कवि ने विभिन्न प्रकार के छन्द, उनके भेदोपभेदों, लघु-गुरु, गण, वर्ण, जाति आदि का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है—

वर्णिक छन्द—ससमुखी, धारामती, गायत्री (चूड़ामणि), चूडा, वर्ण, मधुमती, कुमारी, हसमाला, भाणय, बीजूमाला, अर्द्धनाराच (अनुष्टुप), हलमुखी, ससिभुजा, वृहत्ती (कुंभवती), पांणू, अमृतगति, सुध विराटी, मयूरणी, रुक्मवती, हंसी, मत्ता, मनोरमा, चमकमाला (पक्ति), इन्द्र वज्रा, उपेन्द्रवज्रा, सुमुखी, दोधक, मोतीयमाला, भद्रका, तोटक, द्रुतविलबित, मोतीयदाम, भुजंगप्रयात, कामणीमोहणी, भंजवती, चन्द्र कला (अतिजगती) अपराजिका, हेमंत, भणय, अपराजित, प्रहरणी, इन्दु-वदना, मालणी, पंचचामर (सरकरी), निकर, वृद्धि नराइ (वृद्धि), मदाक्रांता (अपटी), मेघ विष्यूरणी, सादूल विक्रड़ित, सुवदना (कृति), मालती, भद्रक, ललित, क्रीडा अरवै, क्रौंचपदा, भुजग-विजृंभित।

संकर छन्द—कवित्त (छप्पय कवित्त), मल्ल, प्रमाण, सखनारी, मालती, तोमर (हणूफाल), मधु भार, अनुकूला।

दण्डक छन्द—घनाक्षरी, दुमिला, मत्तगयद।

मात्रिक छन्द—पद्धरी, विपरजय, विताल, गीया, सरसी, काव्य (वसूत), उधोर, चोपई, दूहा, सोरठा, मोरकला, कुण्डलिया, दड़िया, सकर नीसांणी, पद्मावती, दण्डक-

माला, गाथा, झपटाल (झफालियं), छप्पय, अनुस्टुप, बिअखरी, पादाकुलति, चौबाला उल्लाला, सवाया, अनुक्रमगति, महट्टा, हंसगति, दीपक, लीलावती, गति, लल्ल, चंद्रकला, लोल, कलरजण, कलसार, धार, अमृतधुनि, विक्रति, सुकृति, रड्डा, अरहट्टा और नारी।

डॉ० नारायणसिंह भाटी ने 'पिंगलशिरोमणि' के परिशिष्ट में ७६ छन्दों की एक सारणी संलग्न की है। किन्तु गणना के उपरान्त प्रथम प्रकाश से चतुर्थ अध्याय एवं प्रस्तार सम्बन्धी पंचम अध्याय तक १०४ छन्दों का उल्लेख हुआ मिलता है। सकर, तिड़तियावद्दपट, दढ़िया, छप्पय, वैताल, अनुक्रम गति, अमृतधुनि तथा नारी छन्दों के उदाहरण कवि ने कहीं सूचित नही किये हैं। नारी छन्द का प्रयोग कवि ने 'मेरू प्रस्तार' के उदाहरणार्थ किया है तथा 'अनुक्रम गति' मे केवल प्रस्तार भेद रूप में आए छप्पय छन्दों का ही उल्लेख कवि ने किया है। 'अनुकूला' छन्द का लक्षण ईसर आढा का प्रस्तुत किया गया है। इनके अतिरिक्त कुछ छन्द ऐसे भी हैं, जिनका उप भेदों के रूप में कुशल-लाभ ने उल्लेख किया है।

यद्यपि कुशललाभ ने अधिकांश छदों को सस्कृत से ग्रहण किया है, फिर भी दूहा भेद, छप्पय भेद, कुंडलिया, तोमर, बिअक्खरी, पादाकुलति आदि छदों पर कवि ने मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया है। परवर्ती छन्द शास्त्रियों ने इस विवेचन का अनुसरण किया है।

'पिंगलशिरोमणि' के रचयिता कुशललाभ ने चतुर्थ अध्याय मे मात्रिक दूहा शीर्षक मे दूहा छन्द की २३ जातियों का उल्लेख किया है। ये दूहा-जाति भेद हैं—
हंस, वराह, गयंद, पहु, पिंगल, सरल, तमाल, सायर, सुन्दर, मेर, नर, कुंजर, हर, सुकमाल, दमणी, मरवौ, अहि, पवण, घण, विजू, अणंद, अमोलो तथा पंकति। घण नामक दूहा का मात्र लक्षण ही वर्णित है। शेष दूहों का विवेचन लक्षण और उदाहरण सहित हुआ है। कवि का यह विवेचन इसीलिए पूर्ववर्ती (प्राकृत-अपभ्रश) आचार्यों की तुलना में मौलिक है।

कुशललाभ ने दूहा, सोरठा के विस्तृत विवेचन के उपरान्त मोरकला, कुंडलिया, तिडतियावद्दपट, दढिया, सकर, नीसाणी, पद्मावती, दण्डकमाला आदि छन्दों का विवेचन किया है। इसके पश्चात् कवि ने गाथा और उसके विभिन्न भेदों की व्याख्या प्रस्तुत की है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश में गाथा (गाहा) वह छन्द है जिसमें चार से कम या ज्यादा (तीन या छः) चरण हो, गुरु-लघु का क्रम विलक्षण हो तथा चरणों की सख्या भी विषम हो।[2] गाथा की यही परम्परा राजस्थानी अथवा डिंगल ने ग्रहण की। कुशललाभ ने इसे ५७ मात्राओं का छन्द कहा है, जिसमें २७ गुरु एव तीन लघु मात्रिक अक्षर होते हैं।[3] लक्षण-विवेचन के पश्चात् कुशललाभ ने एक गाथा-यन्त्र द्वारा २८ प्रकार की गाथाओ का गुरु-लघु और मात्रा-योग की सख्या सहित वर्णन किया है। इस रूप मे आलोच्य कवि का गाथा-विवेचन नितान्त मौलिक है।

पूर्ववर्त्ती एवं परवर्त्ती विवेचको ने २६ प्रकार की गाथाओं का ही उल्लेख किया है। लच्छी गाथा के अतिरिक्त अन्य गाथा-विवेचकों की गाथाओ के नामो से नही मिलते, किन्तु कई-एक नाम इनमे पर्याय रूप में रख दिये गए है। इस अवस्था में उनके परस्पर लक्षण भी मिल जाते है। कुशललाभ द्वारा विवेचित गाथाओ के नाम इस प्रकार है—

लछी, रिधि, बुधि, लज्जा, विद्या, क्षमा, देही, गौरी, धात्री, दूती, छाया, कांती, महा-माया, कित्ती, सिधी, माना, रामा, गाही, बिस्वा, वसिता, सोभा, हिरणी, चक्री, सारी; कुररी, सिधी, हंसी और सरपणी। इन गाथाओं के लक्षण के विषय में कहा है कि क्रमानुसार एक गुरु कम हो जाता है और दो लघु बढ़ते जाते हैं। इसी तरह गाथाओं के २८ भेद होते हैं।[४]

छप्पय विवेचन

सिद्धान्ततः राजस्थानी एवं हिन्दी में प्राप्य छप्पय छन्द एक ही है। किन्तु राजस्थानी मे छप्पय का एक अन्य रूप भी दृष्टिगत होता है, जिसके अनुसार आरम्भ में एक दूहा तथा उसके पश्चात् रोला के पद होने का विधान है। इसके प्रथम पद में सिंहावलोकन होता है और अन्त में एक उल्लाला छन्द। श्री महताब चन्द खारेड़ ने इस विधि से बने छन्द को डोड्यी-छप्पय कहा है।[५] 'पिंगलशिरोमणि' में छप्पय का लक्षण इससे भिन्न है। यहाँ आरम्भ मे काव्य छन्द रखकर और उसके नीचे एक उल्लाला छन्द रखने से छप्पय छन्द का निर्माण बताया गया है—

काव्य छंद ऊपर करौ, अध उल्लाला धाख।
सेस सुकवि कवि बच सरस छप्पय लक्खण दाख ।।[६]

छंदीय गुणों के आधार पर छप्पय मात्रिक अर्द्ध समवृत्त है। कवि कुशललाभ ने 'सरप' आदि ७२ छप्पयों का वर्णन किया है। कवि ने इनके गुरु-लघु, अक्षर योग सहित लक्षण की विस्तृत सूची भी प्रस्तुत की है। आलोच्य रचना में विवेचित छप्पय हैं—सर्प, सर, सूर, वसु सद्द, सख, दीप, सुक, सेखर, हीर, भ्रमर, मर, रतन, गगन, गग-मनोहर, छिद्र, गग, ससि, गरुढ, ग्रीष्म, मोहकर, रजण, किसण, कनक, ध्रुव, भुवण, धवल, कमल, तरल, बुध, मद, मदकल, मेर, सरद, सर, सार, दाता, क्रिपण, कांत, जंगम, जड़, विदग्ध, भृंग, अजय, विजय, वय, वलि, वर्ण, वीर, वैताल, व्रहन्नर, मरकट, हरि, हर, ब्रह्म, इन्दु, चदन, सरभ, सिंध, सादूल, कमठ, कोकिल, खर, कुंजर, मदन, मीन, तालंक, सेस, सागर, सिद्धि एवं कजल ध्वज।

७२वें छप्पय का कवि ने कोई नाम नहीं दिया है। लक्षण की दृष्टि से इसे सर्व गुरु अक्षर युक्त छप्पय कहा है।[७] इसके विपरीत कजल-ध्वज, सिद्धि और सागर छप्पयों के लक्षण कवि ने नहीं दिये हैं। इसी प्रसंग मे आलोच्य कवि ने मरहट्टा, दुमलाय, हंस गति, दीपक इत्यादि के माध्यम से छप्पय के एक लाख एक हजार प्रस्तार भेद का यन्त्र-तालिका द्वारा उल्लेख किया है। छप्पय का प्रस्तार के आधार पर विवेचन राजस्थानी छन्द शास्त्र में कुशललाभ की मौलिक उपलब्धि है। कवि कुशललाभ ने इस गणितीय विषय की व्याख्या को चित्रों द्वारा सरल बना दिया है।

छन्द-प्रस्तार

ग्रंथ के पंचम प्रकाश मे कवि ने काव्यशास्त्र मे प्रयुक्त प्रस्तार विधि का कथन

किया है। किस छन्द के कितने भेद हो सकते हैं—इसका ज्ञान कराने वाले प्रत्यय या प्रणाली को 'प्रस्तारादि' कहते हैं। वृत्त-रत्नाकरकार ने इस प्रणाली का विवेचन 'प्रत्यय' शीर्षक से किया है। अग्निपुराण, वृत्त रत्नाकर आदि संस्कृत-काव्य शास्त्रीय ग्रंथों में ये ६ प्रकार के बताये गए हैं—प्रस्तार, नष्ट, उद्दीष्ट, एकद्वयादिलगक्रिया, संख्या तथा अध्वयोग।

आलोच्य कृति में कवि ने उक्त प्रत्ययों में से केवल चार—प्रस्तार, नष्ट, उद्दीष्ट एवं सख्या का ही विवेचन किया है। इस प्रणाली को कुशललाभ ने "सोडसकरम लख्यण' की संज्ञा दी है, जिसका डिंगल् छन्द-शास्त्र में अर्थ है—वह क्रिया जिसके अनुसार छन्द-शास्त्र के आठों प्रत्ययों को समझा जाता है। इस प्रकार संस्कृत की अपेक्षा डिंगल् (राजस्थानी) में आठ प्रत्यय माने गए हैं।

कुशललाभ ने 'पिंगलशिरोमणि' में इन प्रत्ययों का दो स्थानों पर उल्लेख किया है—(१) तृतीय हुलास के अन्त में[८] तथा (२) पचम प्रकास के प्रारम्भ में[९] प्रथम अंश में मात्र उल्लेख है जबकि द्वितीय स्थान पर इनका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। कवि के अनुसार ये आठ प्रत्यय हैं—संख्या, प्रस्तार, सूची, उदिस्ट, नस्ट, मेर, पताका तथा मरकटि। चूंकि ये आठों प्रत्यय वार्णिक एव मात्रिक दोनों रूपों में होते हैं, जिनका योग सौलह (८ वार्णिक, ८ मात्रिक) होता है इसीलिए इसे षोडष कर्मलक्षण कहा जाता है।[१०] कवि ने इन सभी का सोदाहरण विवेचन किया है। इस विवेचन में कुशललाभ ने तुलनात्मक प्रणाली का आश्रय लिया है। सर्व प्रथम आचार्य पिंगल का मत प्रस्तुत किया है, फिर भरत मुनि का मत उद्धृत किया है। दोनों मतों के परिप्रेक्ष्य में कवि ने अपनी समीक्षा दी है। ग्रंथ के इस प्रसंग में गद्य का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है, जिसमें अनेक रीति ग्रंथों एवं आचार्यों का नामोल्लेख है।

कवि ने यहाँ सर्व प्रथम वर्ण प्रस्तारादि पर विचार दिया है, तदनन्तर मात्रा-प्रस्तारादि पर। यहाँ हरराज ने अपने गुरु कुशललाभ से प्रस्तार की उत्पत्ति एव वर्ण-प्रस्तारादि तथा मात्रा प्रस्तारादि मे किसका कथन पहले किया जाए आदि का ज्ञान प्राप्त किया है। कुशललाभ के अनुसार मात्रा-प्रस्तार वर्ण-प्रस्तार से अधिक प्रसिद्ध है। किन्तु यहाँ वर्ण-प्रस्तार पहले कहा गया है, मात्रा प्रस्तार बाद में। इसका कारण हरराज और कुशललाभ की वार्ता से स्पष्ट हो जाता है।[११] इसी सन्दर्भ में कवि ने पाँच मात्राओं तक के पताका यन्त्र, सर्वतोभद्र (चौकोण) यन्त्र, अस्टकल यन्त्र, मात्रकाध्वजा-यन्त्र भी उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये हैं। पर इनके बनाने की विधि का उल्लेख कवि ने प्रस्तुत नहीं किया। बहरहाल, कुशललाभ का प्रस्तार विवेचन नितान्त मौलिक एवं वैज्ञानिक है। इस विधि को न तो कवि के समकालीन आचार्य छू पाए हैं और न ही परवर्त्ती आचार्यों ने इसका स्पर्श किया है।

तुलनात्मक अध्ययन

कुशललाभ ने 'पिंगलशिरोमणि' के प्रणयण में प्राचीन पिंगलाचार्यों के पिंगल-शास्त्रीय ग्रंथों की सहायता ली है। इन ग्रंथों एवं आचार्यों का कवि ने विभिन्न अध्यायों

में यथा-प्रसंग उल्लेख किया है। इनमे से कतिपय आचार्यों के नाम इस प्रकार हैं—भरत, पिंगलाचार्य, शौणिक, शुक मुनि, शुक्राचार्य, वाल्मीकि, वृहस्पति, शिवशेखर, कालिदास, देवल भट्ट, भीम, गंग भट्ट, सकर (शंकर), कासीराम (काशीराम), माघ कवि, चिरजीव भट्टाचार्य, चन्दवरदायी, लल्ल भट्ट, हीरामणि, हमीर, दुरसौ, कवि केसव, भोज, बारहठ सुदर्शन आदि।

उपर्युक्त में से शुक्राचार्य, वृहस्पति आदि को 'वृत्तमौक्तिक' मे आदि छन्द शास्त्री कहा गया है। यो इनके द्वारा विरचित अभी तक कोई ग्रथ उपलब्ध नहीं है। ऋग्वेद, महाभारत, रामायण भारतीय साहित्य और संस्कृति के कोष ग्रथ हैं। अत: कवि ने (१) ऋग्वेद प्रतिशाख्य के कर्त्ता शौणिक (२) रामायण के प्रणेता वाल्मीकि तथा (३) महाभारत के रचयिता व्यास को छन्द-शास्त्री मानकर उन्हें भी अपने ग्रंथ का उपजीव्य बताया है। वस्तुत: इन ग्रन्थो मे वर्णित पद्यों के माध्यम से ही छन्दों का वर्णन हुआ है। छन्दो का लक्षण-विवेचन इन ग्रथो मे नही मिलता। केवल ऋक्-प्रतिशाख्य में शौणिक ऋषि ने वैदिक छदो का उल्लेख किया है।

देवलभट्ट, भीम, काशीराम, चिरजीव भट्टाचार्य, लल्ल भट्ट, हमीर, बारहट सुदर्शन और शिवशेखर आदि के पिंगल ग्रथ अप्राप्य है। कवि ने माघ, भोज और चन्दवरदायी की साक्षी भी 'पिंगलशिरोमणि' मे प्रसगवश दी है। पर इनके द्वारा विरचित कोई स्वतन्त्र रीति-ग्रथ उपलब्ध नही होते। इनकी प्राप्त रचनाओं मे प्रयुक्त छन्दों के आधार पर ही कुशललाभ ने अपने ग्रथ मे लक्षण लिए होंगे। 'पृथ्वीराज रासो' (चदवरदायी कृत) म अवश्य ही यत्र-तत्र नवीन छन्दो का प्रयोग किया गया है। अत: कवि के लिए यह ग्रथ एक प्रमुख आधार अवश्य रहा है। किन्तु इसमे भी काव्य छन्द एव प्रस्तार विधि का कही उल्लेख नही मिलता। सम्भव है कुशललाभ को 'पृथ्वीराज रासो' की ऐसी कोई प्रति मिली हो, जिसमे छन्दों के लक्षणों के साथ प्रस्तार भी दिये गए हो। और उसी को आधार बनाकर उसने उक्त उल्लेख किया हो।

'पिंगलशिरोमणि' मे वर्णित मालती, मालिनी, विद्युन्माला (बीजूमाला), दोधकम् (दोधक), इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, तोटकम्, प्रहर्षिणी, शार्दूलविक्रीडित, दण्डकम्, ललित, वैतालीयम् (वैतालीय), पादाकुलम्, हलमुखी (हलमुखी), पणवः (पाणू), रुक्मवती (रुकमवती), मत्ता, द्रुतविलम्बित, भुजगप्रयात, भद्रकम् (भद्रक), क्रौंचपदा, भुजग विजृंभित, गाथा, नाराच, शुद्ध विराटी इत्यादि छन्द भरतकृत नाट्यशास्त्र, पिंगलाचार्य विरचित छन्दशास्त्र, कालिदास प्रणीत श्रुतबोध एवं छन्दोमजरी से प्रभावित है। अन्तर केवल यही है कि पिंगलाचार्य विरचित छन्दशास्त्र मे इनका विवेचन सूत्र-रूप मे है, जबकि भरत के नाट्यशास्त्र मे कुल वर्णो और मात्राओ के रूप में तथा 'छन्दोमजरी' म गणो के साथ सयुक्त मात्राओं द्वारा लक्षण को स्पष्ट किया गया है। कुशललाभ ने इन तीनों ही शैलियो का प्रयोग किया है।

उक्त ग्रथो मे दूहा का 'दोधकम्', गाथा का 'आर्या' अथवा 'गाथा' और छप्पय का 'षट्पदी' छदो के रूप मे विवेचन हुआ है। किन्तु उनके गुरु-लघु, गण आदि की विधि से वे 'पिंगलशिरोमणि' में लक्षित दूहा, गाथा और छप्पय के अनुरूप नहीं है। यहाँ

'दोधक' छन्द का पृथक् रूप से उल्लेख हुआ है।[१२] प्राकृत और अपभ्रंश के छन्द ग्रन्थों प्राकृत पैंगलम, कवि दर्पण, वृत्त जाति-समुच्चय, स्वयंभु-छन्द, नदिताढ्य कृत गाथा लक्षणम्, रत्न सूरि कृत छन्द कोश आदि मे वर्णित दूहा, गाथा और छप्पय के लक्षणों में 'पिंगलशिरोमणि' में विवेचित लक्षण मिल जाते हैं। संभव है कुशललाभ ने इसी परम्परा से 'पिंगलशिरोमणि' मे उक्त छन्दों को ग्रहण किया हो। फिर भी 'पिंगलशिरोमणि' का छन्द-विवेचन अपनी पूर्व परम्परा से निम्नांकित रूपों में भिन्न है—

१. ऋक्-प्रतिशाख्य, भरत का नाट्यशास्त्र, पिंगल का छन्दसूत्र, कालिदास का श्रुतबोध और गगादास की छन्दोमजरी, छन्द कोश, गाथा-लक्षण, वृत्त जाति समुच्चय, कवि दर्पण में केवल पद्य शैली का प्रयोग हुआ है, जबकि 'पिंगल शिरोमणि' में कवि ने पद्य एवं गद्य दोनों शैलियों को ग्रहण किया है।

२. आलोच्य कृति में कुशललाभ ने सूत्र शैली, लक्ष्य-लक्षण शैली और लक्षण के पश्चात् उदाहरण देने की प्रवृत्ति को ग्रहण किया है।

३. 'पिंगलशिरोमणि' के उपजीव्य ग्रन्थों एवं पूर्ववर्ती लक्षण-ग्रन्थों में छन्द-विवेचन एक निश्चित क्रम मे किया गया है। किन्तु यहाँ इस प्रवृत्ति का अभाव है। कवि ने मात्रिक छन्दों के साथ भी अनेक वार्णिक छन्दो का उल्लेख किया है। प्रस्तार भेद-विवेचन वाले अध्याय में भी कवि ने विषयान्तरित होकर सुवृत्ति, नारी, अरहट्टा आदि छन्दों के नाम एवं लक्षण दे दिए हैं।

४. 'श्रुतबोध' के अतिरिक्त कुशललाभ के सभी आधार ग्रन्थ अध्यायों मे विभक्त हैं। 'पिंगलशिरोमणि' मे भी अध्यायो (प्रकाश अथवा हुलास) का प्रयोग हुआ है, पर कही तो इसका उल्लेख एव अंकन हुआ है और कही नहीं। प्रथम अध्याय के पश्चात् तृतीय हुलास का उल्लेख हुआ है।

५. विभिन्न छन्दो के प्रस्तार भेद से उनकी सख्याओं के साथ उल्लेख केवल इसी ग्रन्थ मे हुआ है। इसकी पूर्ववर्ती परम्परा में इस भांति का वर्णन नही मिलता।

६. पूर्ववर्ती ग्रन्थों मे लक्षण एव उदाहरण कथन शृंगार रस के आलम्बन और आश्रय के माध्यम से हुआ है। पर यहाँ कवि ने राम कथा के माध्यम से छन्दोदाहरण एवं लक्षण कहे हैं। कुशललाभ की यही शैली परवर्ती राजस्थानी के रीति-विवेचक ग्रन्थों— हरिपिंगल प्रबन्ध, रघुवरजस प्रकास और रघुनाथ रूपक गीता रो में भी प्रयुक्त हुई है।

२. अलंकार वर्णन

कुशललाभ ने छन्द के सम्पूर्ण विवेचन के पश्चात् छठे प्रकाश में ७५ अलंकारों का लक्षणों और उदाहरणों सहित विवेचन किया है। यद्यपि विवेचित अलकारों में अधिकांश संस्कृत अलंकार ही हैं फिर भी उनके भेदोपभेदों एव कुछ नवीन अलंकारों की व्याख्या कवि ने अपनी सूझ-बूझ से की है, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि कुशललाभ एक उच्च कोटि का अलकार शास्त्री था।

कुशललाभ कृत 'पिंगलशिरोमणि' के षष्ठप्रकाश में विवेचित ७५ अलंकार ये हैं—१. काव्यलिंग, २. हेतु (हेता), ३. काव्यपति, ४. विध, ५. समाधि, ६. प्रतिबोध,

७. कारकदीपक, ८. निरुक्ति, ६. समुच्चय, १०. अत्युक्ति, ११. परिसंख्या, १२. भाव, १३. परिव्रत, १४. स्वभाव, १५. परजायोक्ति, १६. वक्रोक्ति, १७. जथासंख्य, १८. लोकोक्ति, १६. सार, २०. जुक्त, २१. दीपकालकार, २२. अन्योन्यालकार, २३. अधिक, २४. चित्र, २५. सम, २६. विसम (विषम) २७. असगति, २८. असभव, २६. विभावना, ३०. विरोधाभास, ३१. व्याजनिंदा, ३२. विव्रतोक्ति, ३३. गूढ़ोक्ति, ३४. व्याजोक्ति, ३५. पिहित, ३६. सूखम, ३७. विसेस (विशेष), ३८. उन्मीलित, ३६. अगुण, ४०. अतद्गुण, ४१. पूर्वरूप, ४२. रत्नावली, ४३. मुद्रा, ४४. लेखाआज्ञा, ४५. अवग्या, ४६. उल्लास, ४७. विसाद (विषाद), ४८. ललित, ४६. सम्भावना, ५०. स्लेस (श्लेष), ५१. परिवार, ५२. समासोक्ति, ५३. विभयोक्ति, ५४. सहोक्ति, ५५ व्यतिरेक, ५६. निदर्शना, ५७. द्रस्टांत, ५८. दीपक, ५६. तुल्यजोगिता, ६०. उल्लेख, ६१. विरह, ६२. जातिस्वभाव, ६३. विभावना, ६४. विसेसालकार, ६५. उत्प्रेक्षादि, ६६. रूपक, ६७. प्रतीप, ६८. अनन्वय, ६६. उपमा, ७०. लुप्तोपमा, ७१. अभूतोपमा, ७२. अद्भूतोपमा, ७३. दूसणोपमा, ७४. भूषणोपमा और ७५. दोसोपमा।

'पिंगलशिरोमणि' मे विवेचित अलकार की नामावली और लक्षण के आधार पर उन्हे हम पूर्ववर्ती परम्परानुसार दो भेदो में विभक्त कर सकते है—शब्दालकार और अर्थालंकार। इस दृष्टि से यहाँ ७५ अलकारों में से केवल तीन शब्दालकारो का ही विवेचन हुआ है, शेष अर्थालकार ही हैं। ये तीन शब्दालंकार हैं—श्लेष, वक्रोक्ति एवं चित्र।

चित्रालकार काव्यशास्त्र में एक अनोखा प्रयोग है। इसकी परिभाषानुसार इसमें चित्र के आधार पर अर्थबोध होता है। इसमे क्रमिक वर्ण-विन्यास से वस्तुओं की रूप योजना की जाती है। आचार्य रुद्रट ने वर्णों की इसी विचित्रता को चित्रालकार कहा है।[13] कुशललाभ ने भी विचित्र वचन द्वारा विपरीत फल की इच्छा रखने को चित्र अलंकार की सज्ञा दी है—

> **बोलै वचन विचित्र, इच्छा फल विपरीत उर।**
> **पुरखां मांहि पवित्र, उच्चत तन लहि व्रण ग्रधिक ।।**[14]

'पिंगलशिरोमणि' मे अलकार नाम के षष्ठ प्रकास को समाप्त कर कवि ने कुछ चित्रकाव्य बधो का सचित्र वर्णन किया है। ये बध हैं—कामधेनका बध, अस्वगतकपाट बध, खटदल कमल बध, चरणगूढ़ चित्र, गोमूत्रका चित्र, चौकीबध, म्रदंगबंध, चक्रबंध, कमलबध, अकुशबध और शकटबध।[15]

'कामधेनुका' चित्र को कुशललाभ ने कवित्त छन्द रूप में निरूपित किया है। हरराज और कुशललाभ के मध्य प्रश्नोत्तर प्रणाली द्वारा इस चित्र की व्याख्या की गई है। साहित्य मे यह प्रणाली प्राचीन है। आरम्भ से ही राजकुमारो को उनके गुरु प्रश्नोत्तरों के माध्यम से ही अध्ययन करवाते थे। कवि के अनुसार 'कामधेनुका चित्रबध' की उत्पत्ति वृहस्पति और शुक्र द्वारा इन्द्र को दी गई दीक्षा के रूप में हुई है।[16] चित्र द्वारा गणना करके कुशललाभ ने इसके कुल ३६ करोड़ प्रभेद बताये हैं। पर काव्य में इतने

अधिक प्रभेदों का उपयोग होता कहीं नहीं देखा गया। यह केवल काव्यशास्त्रियों का गणित का कौतुक मात्र है। प्रस्तार भेद की दृष्टि से कवि ने इसे सर्वप्रमुख माना है तथा इसी के द्वारा सब छन्दों का उत्पन्न होना कहा है। इस सन्दर्भ में कवि द्वारा उद्धृत वार्ता के अन्तर्गत इसका लक्षण स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ३१ मात्रा का कवित्त बनाकर उसके चारों पद समान कर लें। उनमें वर्णकोष्ठ रखें; चारों वर्गों का आदि वर्ण गुरु किया जाए। द्वितीय वर्ण गुरु कर उसके तीसरे स्थान तक कोष्ठ (कठ) रखा जाए, फिर चारों ही तुकों को यति दी जानी चाहिए।

कोष्ठकों (कठो) की विधि के लिए कहा है कि दो वर्णों के पश्चात् एक कोष्ठ, चार वर्णों के बाद दूसरा कोष्ठ, छठे वर्ण पर तीसरा कठ (कोष्ठ) चारों वर्णों का हो। छठा कोष्ठ दो वर्णों का हो। सातवां कोष्ठ इन दोनों कोष्ठकों का हो। आठवां कोष्ठ तीन वर्णो का हो। नवा कोष्ठ पाँच वर्णो का, दसवां कोष्ठ दो वर्णों का हो; ग्यारहवां कोष्ठ दो वर्णों का, तथा वारहवां कोष्ठ दो वर्णों का। इस भांति चारों चरण अनुक्रम मेल एवं अर्थ की इच्छा युक्त हों।[१७]

इसी प्रसंग में कुशललाभ ने प्रस्तार-वर्णों के छन्दों की मात्राओं को स्पष्ट करते हुए कहा है कि वर्ण-छन्द सम और विषम दोनों मे होते हैं मत्ता छन्द केवल समवर्णों में होता है, विषम वर्णों में नही। पर कुछ विषम में भी होते हैं।[१८]

अस्व (अश्व) गति एवं कपाटबंध चित्र

कवि ने चार चित्रों के माध्यम से उक्त दो बधों की व्याख्या की है। 'अस्वगत' से तात्पर्य हैं घोड़े के खुरों की गति के चित्र के आधार पर वणित बंध। इस बंध का सचित्र उल्लेख रूद्रट ने अपने काव्यालकार सूत्र मे 'तुरगपद पाठ' शीर्षक से किया है। यहाँ कुशललाभ ने प्रथम तीन पदों के माध्यम से इस चित्र को बनाते हुए चारों पदों का चित्र प्रस्तुत किया है। तीन पद वाले चित्र में प्रथम एवं द्वितीय वर्ग के आधारों को अधोभाग से ऊपर की ओर और उसी प्रकार पद संख्या तीन और दो को भी अधोभाग से ऊपर की ओर पढने पर पूरा दोहा-पढ लिया जाता है। अस्वगत के चारों पदों वाले बध में बायें से दायें पठन से पदों का अर्थ स्पष्ट होता है। इस प्रकार त्रिपदी बंध में घोड़े के तीन पदों को सूचित करने वाली सख्या है—१, २, ३ तथा अस्वगत बंध में १, २, ३, ४।

कपाटबंध से तात्पर्य है—कपाट या किवाड़ के चित्र मे बांधा गया काव्य। यहाँ काव्य पदों के सयोजन से दो किवाडों का चित्र बनता है। दूहे के प्रथम दो चरण किवाड़ संख्या १ पर बायें से दायें तथा दूसरा चरण किवाड़ संख्या २ पर दायें से बायें पढ़ा जाएगा। कुशललाभ ने निम्न दूहे के पाठ को उक्त तीनों चित्रबंधों में बांधकर समझाने की चेष्टा की है -

ग्यानवंत दातां गुणी, रटां रांण हरराज।
दानवंत धातां धणी, भटां भांण कर काज॥

त्रिपदी बंध

ग्या[1]	व	दा	गु	र[3]	रा	ह्	रा
न	त	तां[2]	णी	टां	ण	र	ज
दां	व	धा	ध	भ	भा	क	का

अस्वगत बंध

ग्या[1]	न	व	त	दा[3]	ता	गु	णी
र	टा	रां[2]	ण	ह्	र	रा[4]	ज
दा	न	व	त	धा	ता	ध	णी
भ	टा	भा	ण	क	र	का	ज

कपाट बंध

ग्या	न	न	दा
वं	त	त	वं
दा	ता	ता	धा
गु	णी	णी	धा
र	टां	टां	भ
रां	ण	ण	भां
ह्	र	र	क
रा	ज	ज	का

किवाड़ सं० १ किवाड़ सं० २

इन चित्रो के पश्चात् नस्टोस्टक (नष्टोष्टक) रहित चित्र अलंकार (जिसे सरप-गति या सर्पगति भी कई लाग कहते है)[19], बहिर्लापिका, अन्तर्लापिका, गूढोत्तरा, अनेकोत्तरा, सासोत्तरा आदि छन्द मिश्रित चित्र अलकारो का कवि ने उल्लेख किया है। जिस पद मे प, फ, ब, भ, म इन पांच ओष्ठ्य ध्वनियो का उच्चारण नही होता उसे कवि ने नियमानुसार नस्टोस्टक कहा है। निम्नाकित छन्द मे 'ल' ध्वनि के अतिरिक्त उक्त पांच ओष्ठ्य ध्वनियो का उच्चारण नही है। अतः यह नस्टोस्टक है—

लीक लाज लोला लु लख। लहि सहि कवियण लोक।
हरिया हरि विण हारिजै। सिधु संसार असोक॥[20]

जिसमे एक अक्षर के प्रयोग से ही समस्त रूपक को वर्णित कर दिया जाए उसे कुशललाभ ने 'एक अखरा' (एक अक्षरा) कहा है। कवि ने वार्ताओ मे स्पष्ट किया है कि कवित्त, गीत और दूहा ही एकाक्षर के अन्तर्गत आते है। यह २६ वर्णो तक हो सकता है तथा ३५ मात्रा तक के चित्र इनमे बन सकते है।[21]

कुशललाभ ने जिस पद को सुनने से उसका उत्तर हृदय मे ही प्रतीत हो उसे अन्तर्लापिका तथा जिसका उत्तर बाह्य उपादानो से निकले, उसे बहिर्लापिका कहा है।[22] इसी भांति गुप्त विधि से छद्म उत्तर का जब गान किया जाए वही कवि के अनुसार 'गुढोत्तरा' है। उसके उदाहरण मे कुशललाभ ने हरराज के मुख्यमन्त्री फतेचन्द से सम्बन्धित गूढ घटना को नियोजित बताया है, पर उसे स्पष्ट नही किया है। यही अस्पष्टता 'गुढोत्तर' है।[23]

जब एक ही शब्द अनेक भावों को व्यक्त करे उसे कुशललाभ ने अनेकोत्तरा अलकार कहा है। किस भाव से संसार बनता है ? मित्र किसे कहते हैं ? ग्रन्थ की रचना क्यों की ? ससार में कौन प्रिय है ? तलवार के प्रहार से कौन छूटता है ? दिन मे कौन उदित होता है ? लोभ और मित्रता किसके कारण टूटते हैं ? शेर देखकर कौन भयभीत होता है ? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर 'भांण' शब्द के द्वारा स्पष्ट होता है। उपर्युक्त प्रसंगों में इस एक ही भाण शब्द के प्रसंगानुसार विभिन्न अर्थ होगे और इसी से यह अनेकार्थी कहा गया है। अत: यहाँ अनेकोत्तरा अलकार है।

'सासोत्तरा' शब्द शिष्योत्तर से अथवा सहस्रोत्तर से निष्पन्न हो सकता है। अन्यार्थ मे अनेक प्रश्न, जो एक हजार तक हो सकते हैं, का उत्तर एक ही शब्द से दे दिया जाए उन्हे सासोत्तरा कह सकते है। राजस्थानी में इस अलंकार की परम्परा प्राचीन रही है। कुशललाभ ने इस चित्र के साढ़े तीन सौ दूहो का प्रमाण दिया है।[२४]

इस विवेचन के पश्चात् चरणगूढ चित्र, चौकी बध, मृदगबध, चक्राबंध, कमल-बध, अकुशबध, खटदल (षटदल) कमलबध चित्रो के यन्त्र ही कवि ने प्रस्तुत किए हैं। पर इनको पढने की विधि अथवा लक्षण आदि का कोई विवेचन नही किया है। इसी भाँति अन्त के दो चित्रो का कवि ने नामोल्लेख किया है। उनका न लक्षण दिया है और न ही विधि का विवेचन।

इन शब्दालंकारों के अतिरिक्त शेष सभी अर्थालंकार हैं। इन अलंकारों में से कवि ने सूखम, पिहित, विरोधाभास, लेखा, अनुग्या, अवग्या, अभूतोपमा, दूसणोपमा, दोसोपमा भूसणोपमा पर अपनी नवीन व्याख्या की है। कुशललाभ ने आखेय अलकार को परम्परा से चले आ रहे विरोधाभास अलकार का भेद कहते हुए मूलत: दोनो को एक ही माना है—आखेय पिण उणरो ही भेद जाणणो नही तो विरोधाभास ने आखेय एक हीज है।[२५]

इस भाँति कुशललाभ ने लेखा, अनुग्या, अवग्या (अवज्ञा) तीनो अलंकारों को एक ही अलकार माना है, जबकि अन्य पूर्ववर्ती अलंकार ग्रन्थों में इन्हे पृथक-पृथक माना गया है।

तुलनात्मक दृष्टि

कवि कुशललाभ ने अपने अलकार-विवेचन मे यथा-प्रसग अपने पूर्ववर्ती अलंकार ग्रन्थो अथवा कवियों का उल्लेख किया है। इनमे से कुछ कवि-नाम है—पिंगल, भरत, शुक्राचार्य, वाल्मीकि, शुक, व्यास, शौनिक, महाकवि राम, भूगल, बृहस्पति, भोज इत्यादि। शुक्राचार्य, शुक, व्यास, शौनिक आदि कवि प्राचीन है। इन्होंने छन्द-ग्रन्थो की भाँति ही किसी अलकार ग्रन्थ का भी निर्माण नही किया। सम्भवत: कवि ने इनके द्वारा प्रयुक्त अलकारो को श्रद्धावश ग्रहण कर उन्हें आद्य-अलंकार शास्त्री मान लिया है। महा-कवि राय की भी इसी भाँति कोई अलकार सम्बन्धी कृति उपलब्ध नही होती। भरत के नाट्यशास्त्र में, भोज के सरस्वती कठाभरण मे, विष्णु धर्मोत्तर पुराण और अग्निपुराण मे कतिपय अलकारों का विवेचन हुआ है। किन्तु कवि ने उनकी शैली को कही भी ग्रहण नही किया है। कुशललाभ ने सम्पूर्ण विवेचन अपने तरीके से किया है।

कुशललाभ से पूर्ववर्ती अलंकार विषयक ग्रन्थो मे निरन्तर अलंकारो की सख्या का विकास हुआ है। भरत ने मात्र चार अलकारों—उपमा, दीपक, रूपक और यमक का उल्लेख किया है। इनके पश्चात् अग्निपुराण मे इनकी सख्या २६, विष्णु धर्मोत्तर पुराण में १७ और सरस्वती कठाभरण (भोज) मे ७२ बताई गई है। कुशललाभ के अलकार विवेचन में यह सख्या ७५ तक पहुँची है।

भरत के अतिरिक्त पूर्ववर्ती अलकार ग्रन्थों मे अलंकारो का विवेचन एक निश्चित क्रम एव निम्नलिखित तीन वर्गों में हुआ है—१. शब्दालकार, २. अर्थालकार और ३. उभयालंकार अथवा शब्दार्थालकार। पूर्ववर्ती परम्परा मे अर्थालकारो मे भी सर्व-प्रथम उपमा अलकार का भेद सहित विवेचन हुआ है। 'पिंगलशिरोमणि' मे वर्गीकरण पद्धति का आश्रय नही लिया गया है। उपमालकार का वर्णन भी कवि ने अन्त में किया है, जो पूर्ववर्ती ग्रन्थों से भिन्न कहा गया है—

करण साधारण कथौ, वाचक धर्म बखांण।
इण विधि सहि एकत्र मिलि, जिण नुं उपमा जाण।।[२६]

भरत के नाट्यशास्त्र के अतिरिक्त कुशललाभ से पूर्ववर्ती अन्य सभी ग्रन्थो में उपमालकार के अनेक भेद मिलते हैं। पर यहाँ कवि ने किसी भेद के आधार को प्रस्तुत नही किया है। यहाँ कवि ने उपमा-अलकार के लुप्तोपमा, अद्भूतोपमा, दूसणोपमा (दूषणोपमा), भूसणोपमा (भूषणोपमा), दोसोपमा (दोषोपमा) इत्यादि ६ रूपों का विवेचन किया है। इनमे से केवल अद्भूतोपमा का लक्षण अग्निपुराण में मिलता है।

सूषम (सूक्ष्म) और पिहित अलकारो का विवेचन भी कुशललाभ ने अपनी दृष्टि से ही किया है। सूषम अलकार की व्याख्या करते हुए कवि लिखता है—इसमे अर्थ को अन्तरग रूप से ग्रहण करना चाहिए, बहिरग रूप मे नही।[२७] इसी भाँति पिहित अलंकार भी गुप्त बातो को प्रकट करता है। अतः इसका भी अर्थ अन्तर्गत ही होता है।

इस प्रकार कुशललाभ का अलकार वर्णन लक्षणो की दृष्टि से भले ही पूर्व परम्परा पर आधारित हो, किन्तु उसका प्रस्तुतिकरण नितात मौलिक है। राजस्थानी रीति-विवेचक ग्रन्थो मे तो यह प्रथम कार्य ही है। इस रचना के बाद ही राजस्थानी रीति साहित्य का निर्माण आरम्भ हुआ जिसमे हरिपिंगल प्रबन्ध, पिंगल प्रकास, रघुनाथ रूपक गीता रो, कृष्णचन्द्र चन्द्रिका, रघुवर जस प्रकास, कवि कुलबोध आदि प्रमुख हैं। इनमे अलकारों पर तो अत्यल्प ही लिखा गया है।

३. उडिंगल् नाममाला

शब्दशास्त्र के दो मुख्य अग है—व्याकरण और कोश। व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति तथा उसके अर्थ द्योतन के विविध रूपो का अध्ययन प्रस्तुत करता है, जबकि कोश मुख्यतः शब्दो का अर्थ ही सूचित करता है। किस शब्द मे कौन-सा लिग प्रयुक्त हुआ है—इसकी सूचना भी कोश ही देता है। इस प्रकार अर्थ एव लिग प्रयोग से समृद्ध भाषाओं मे एक ही अर्थ के द्योतक अनेक शब्द तथा एक शब्द के द्योतक अनेक अर्थ होते

हैं। इन विविध और विभिन्न अर्थ-वाचक शब्दों का संग्रह करना ही कोश का मुख्य उद्देश्य एवं उपयोग है। इसी उद्देश्य से शब्द शास्त्रियों ने अनेक प्रकार के शब्द कोशों की संस्कृत एवं अन्य लौकिक भाषाओं में रचनाएँ की। डॉ० आफ्रेक्ट द्वारा निर्मित कोश सूची में कोशों को निम्नांकित तीन भागों में विभक्त किया है—१. एकार्थवाचक शब्द कोश, २. अनेकार्थवाचक शब्द कोश तथा ३. एकाक्षर संग्राहक शब्द कोश।[३८]

१. एकार्थवाचक शब्द कोश—जिन कोशों में एक ही प्रकार के वाचक शब्दों का उल्लेख हो, ऐसे समान अर्थ प्रदर्शित करने वाले कोश एकार्थ वाचक शब्द कोश कहलाते हैं। उदाहरणार्थ पृथ्वी रूप पदार्थ के वाचक शब्द संस्कृत अथवा अन्य भाषाओं में उपलब्ध होते हैं, उन सबको ऐसे कोशों में संग्रहीत करने का प्रयत्न किया है। संस्कृत साहित्य में सर्वाधिक प्रसिद्ध 'अमर कोश' इसी कोटि का है।

२. अनेकार्थवाचक शब्द कोश—इस श्रेणी के कोशों में वे शब्द संग्रहीत होते हैं जो एक से अधिक अर्थ व्यक्त करते हैं। ये नानार्थवाची भी कहे जाते हैं। 'गौ' शब्द के गाय, पृथ्वी, वाणी, स्वर्गादि अनेक अर्थ होते हैं। अतः इस शब्द का प्रयोग उक्त पृथ्वी, वाणी, स्वर्ग और गाय के पर्याय सभी नामों के अर्थ में भी होगा। इसी से 'गौ' शब्द अनेक कार्य-वाची है। ऐसे शब्दों के कोशों को अनेकार्थवाची कोश कहेंगे।

३. एकाक्षरी शब्द कोश—एकाक्षरी शब्द से तात्पर्य है—एक अक्षर वाला शब्द। अतः जिस कोश में एक अक्षर वाले शब्दों का सग्रह किया गया हो, वह एकाक्षरी शब्द-कोश होगा। श्री, भू, गौ, द्यौ, स्वर आदि शब्द एकाक्षरात्मक हैं, जिनका निर्देश उनके अर्थवाचक अन्यान्य शब्दों के साथ किया जाता है। संस्कृत भाषा के शब्दों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उनमें प्रत्येक स्वर और प्रत्येक व्यंजन का अर्थ होता है। स्वर-व्यंजनो के संयोग के प्रस्तार रूप वर्णमाला से बने ऐसे सैकड़ों शब्द हमें संस्कृत कोशों में मिलेंगे। जिन कोशों मे उन्हें पृथक रूप से संग्रहीत कर लिया गया है, वे एकाक्षरी कोश' के नाम से जाने जाते है।

संस्कृत की यही परम्परा प्राकृत-अपभ्रंश भाषाओं के माध्यम से राजस्थानी (डिंगल्) मे अवतीर्ण हुई है। डिंगल् अथवा राजस्थानी की प्रमुख नाममालाएँ हैं—उडिंगल् नाममाला (कुशललाभ), हमीर नाममाला (हमीर रतनू), एकाक्षरी नाममाला, अनेकार्थ नाममाला (उदयराम गूगा), डिंगल्कोश (मुरारीदान) और एकाक्षरी नाममाला (अज्ञात)।

राजस्थानी भाषा में लिखित प्राचीनतम नाममाला (कोश) परक् कृति कुशल-लाभ कृत 'उडिगल् नाममाला' है। इसमे राजा, मंत्रवी (मत्री), जोधा (योद्धा), हाथी, घोड़ा, रथ, व्रखभ (व्रषभ), तरवार, कटारी, फरी, बुरक्षी, तीर, धरती, अकास, पाताल, अपसरा, किन्नर, समुद्र, परबत (पर्वत), ब्रह्मा, विस्णु, (विष्णु) सिव (शिव), देव आदि २३ नामों के विभिन्न समानार्थी शब्दों का उल्लेख किया गया है। इनका विवरण इस प्रकार है—

१. राजा नाम २१—पार्थिव, क्ष्योणिपति, राज, भूपांण, नरवर, ईस, नरेंद, भांणकुल्जा, महिरांणवर, प्रजापाल्गर, जगत-मावीत्र, म्रजाद, धणीमाल्, धणीचौधार,

रायहार, भुजसिंह, अणवीह, सूरपति, नरसिंह, राणराव।

२. **मंत्रवी नांम १६**—मंत्री, गूढावाच, बुद्धिबल, लायक, सचिवां, सचिवाल, राजअंगधार, प्राज्ञोपुरस, प्रधांन, दांणपुरधांसा, पुरोहित, विरतिचख, वरियाम-फौज, फौज-आभरण, जाणमित्त, अकहूंत, लेखाल, मरद, वजीरां, जोधगुर।

३. **जोधा नांम २०**—सिंह, सूर, सामत, जोध, भुजपाल, घड़ाभिड़, फौज-गाहणा, भींचा, जोधार, गिड, अणीभभर, बधि समर, अछरवर, हसा, सबलदल गाहणा, सूरमंडलांमद, रूप फौज, जोधार, महाअडिग, कमधांण।

४. **हाथी नांम २६**—दतो, दताल, अेकडसण, लबोदर, द्विरद, गवरो, द्विप्प, गंधमद, गल्लवर, सुंडा-डड, सुंडाल, मत्त, मातंग, गजोवर, नाग, कुंजर, भ्रंग, करी, वारणां, करीवर, दतुर, दतुल, चोडोलो, चरणचतु, गात्र-सैल, नागाण।

५. **घोड़ा नांम ३०**—वाजि, वाह, वाजाल, पख, पखाल, विपख्खी, अर्वा, अर्बन, हय, गधर्व, बलख्खी, त्रिपद, सैंधव, तेज-ताज, तेजी, वानायुज, कांबोजो, हसाल, जवण, पुछाल, जययुज, हैवर, मनउपयग, रैवत, खैग, खुरताल रो, सावकर्ण, चलकर्ण, पवणवेग, पचाल।

६. **रथ नांम २४**—वाहणा, सकट, वछाल, गाडो, गाडोलो, सतअंगो, सस्य, स्पदन, सादालो, चक्रणधुर, चक्राल, भारवह, गात्र, वाहल, वहल, मांझवत, रथ, अस्वरूढ़ व्रखरूढ (व्रषभारूढ), अकुसमुख, गजरूढ, वाणावलो, दसचरण, दुधार।

७. **व्रखभ (व्रषभ) नांम ७** सौरभेय, सीगाल, व्रखभ, अनुड्हो, धरि धारण, कधाल-धुर, वाहण-सभु।

८. **तरवार नांम १०**—असि, करवांणा, खग, करवालां, तरवार, वीजल, सार, दुधार, लोहसार, झटसार।

६ **कटारी नांम ८**—सर्पजीह, दुवजीह, कोरट, सार, कटार, महिखजीह, कुतलमुखी, हथ्थ हेक।

१०. **फरी नांम ६**—फरी, चर्म फालिक, रख्यातण, अणुभांण, सहण, सुखण, गज सहम, गोल, जिम भाण।

११. **बुरछी नांम ६** संकु, कुतल, बुरछ, डागाला, बुरछाल, नेजरूप, धजरूप, घमीड़ा, मुखकाल।

१२. **तीर नांम २८**—पखी, पखाल, विसिख, वाणाल, सुवछ, अजिह्मग, अलख, खग, खुहम, निरवछ, कलबा, करडड, मारगण, भ्रगणाल, पत्री, विणपरूप, रोपइखां, इखधाला, खेड, मेड, खगाल, नाराचां, निरवांण, तीरस्ता, नाराट, नख, खुरसाणज, खुरसाण।

१३. **धरती नांम ५४**—धरा, धरत्री, धार, धरणी, ख्योणि, धूतारी, कु, प्रथ्, प्रथ्वी, कांम, सर्वसह, वसुमति, वसुधा, उरबी, बांम, खमा, वसुधर, ज्या, गोत्रा, अवनी, गाइरूप, मेदनी, विपुला, सागर, अबेरा, खुरखू।

तुगां, वसुवा, इला, भूम, भरथरी, भडारी, जमी, खाक, दरदरी, धरा, धरणी, धूतारी, मूला, महि, रणमडप, मुक्तवेणी, सुरबाली, अमर, आदि-गिरधरणी, सुथिर,

सुंदर, सुहलाली, झूला, छिकमल, गो, रंभ, गरद।

१४. अकास (आकाश) नांम २०—दिवारूप, दिवअभ्र, मारग, आकास, व्योम, व्योमाल, ग्रहांचोर हरण, आवासं, पुहकर, अंबर, अंतरिस, नभ, गगन, गणग्रभ, अनत, सुर-मारग, अतराल, अंबराल, अछरघर।

१५. पाताल नांम १३—आधो-भुवन, पाताल, नाग-लोक, जलनीवांण, अंधकार, आकार, निरबांण, कुहर, रसतल, विवर, गरता, अवटां, गरट।

१६. अपसरा नांम ८—सुरवेस्या, अछरा, उरव्वसी, मेनक, रंभ, घ्रतायची, सुकेसी, तिलतांम।

१७. किन्नर नांम ३—अस्वमुखा, किन्नर, मयु।

१८. समुद्र नांम १४—समुद्रां, कूपार, अंवधि, सरितांपति, पारावारां, उदधि, जलनिधि, सिधू सागर, जादपति, जलपति, रतनाकर, खीरदधि, लवण।

१९. परबत (पर्वत) नांम ८—महीधर, कूबर, सिखिर, पर्वत, दूखतचय, धारी धरा, अग्रगाव, गिर।

२०. ब्रह्मा नांम १६—धाता, ब्रह्मा, जेस्ठसुर, सिखिर, दूखत अतम, दृखत-भवनं, परमाइस्ट, पितामह, हिरण उपवनं, लोकईस, ब्रह्मज, देकंण, चतर, चतारण, विरंच, वछचोर।

२१. विस्णु (विष्णु) नांम २२—नारायण, निरलेप, निगुण-नामी, नरयंद, किसन, रुकमणिहार, देवगणवद, अहिगणवंद, बैकुंठा, ग्रह-विमल, दैतअरि, दमोदर, केसव, माधो, चक्रपाणि, गोविंद, लाछवर, पीतांबर, प्रहलादगुर, कछअवतार, मछ-अवतार।

२२. सिव (शिव) नांम २०—पसुपति, सभू, परबस, जोगांण, गांणवर, माहेसुर, ईसांण, सिव, संकर, त्रिसूलधर, नागाणद, नरयद, जोगवासिद्ध, सारविद, त्रिह-लोचन, पारवतीपति, जख्यपति, भूतांपति, प्रमथापति, नागांपति।

२३. देव नांम ९—जरा रहित, आदित पुत्र, देव, अमृतपान, आधार, विबुध, दानवगज्ज, अगा आभा, आमलरोम।

उक्त नामों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कुशललाभ द्वारा विवेचित ये नाम कुछ तो (१) पूर्ण संस्कृत निष्ठ हैं, जिनका कवि ने राजस्थानीकरण कर लिया है। (२) इसके विपरीत कुछ नाम देशज हैं। प्रयुक्त देशज नाम हैं—रांण, घड़ाभिड़, खुर-तालरो, गाडोलो, डागाला, घमीडा, ग्रहांचो-रहण, ईसांण इत्यादि। (३) कहीं-कहीं प्रचलित शब्दों में कवि ने तुक मिलाने के लिए पद-विपर्यय प्रणाली भी ग्रहण की है, यथा-गात्रसैल (शैलगात्र), वाहण सभु (शंभुवाहण), मुखकाल (कालमुखी), चरणचतु (चतुः चरण), गध-मद (मदगध), (४) कवि ने कही तो विदेशी शब्दों को पर्याय रूप में ग्रहण किया है तो कही संस्कृत अथवा उसके तद्भव रूपों के साथ इन विदेशी शब्दों के युग्म बनाये है, जैसे—

विदेशी शब्द—लायक, मरद (मर्द), वजीरां, खुरखूं, खाक, ज़मी, गरद इत्यादि।

विदेशी युग्म—फौज आभरण, फोजगाहणा, खुरतालरो इत्यादि।

(५) नामोल्लेख में कवि ने मुख्य रूप से समास-शैली का प्रयोग किया है।

(६) प्राय: सभी नामों के पर्यायों में कवि की उनके प्रति व्युत्पत्तिमूलक दृष्टि का परिचय मिलता है। कुछ नामों की व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ इस प्रकार है—

(क) मंत्री नाम --१. 'मंत्री' वस्तुत. उपाधि मूलक शब्द है। शासक अथवा सामान्य व्यक्ति को परामर्श देने वाला व्यक्ति मंत्री कहलाता है। चूँकि राय देने वाला व्यक्ति बुद्धिमान कहा जाता है, अत: यहाँ बुद्धि के पर्यायवाची शब्दों में उपसर्ग अथवा प्रत्यय लगाकर इन नामों का निर्माण किया गया है। गूढ़वाच, बुद्धिबल, प्राज्ञोपुरस (प्राज्ञ पुरुष), विरति चख (विरत चक्षु—निष्पक्ष) इत्यादि कुछ ऐसे ही नाम (पर्याय) हैं।

२. 'मंत्री' का राज्य मे विशिष्ट स्थान होता है। वह सामान्य प्रशासन, न्याय-विभाग, फौज आदि का सचालक भी होता है। अत: इनसे सम्बन्धित सम्मानमूलक नाम भी यहाँ मिलते है, जैसे – सचिव, सचिवाल, दांण-पुरधासां (दण्डपौराध्यक्ष = न्याय और पुलिस विभाग का अध्यक्ष), पुरधासा (पुराध्यक्ष = नगर का प्रशासक), प्रधान, वरियाम फौज, जोधगुरु (प्रधान सेनापति), आभरण जाणमित्त (ज्ञान-मित्राभरण) इत्यादि।

३. विजातीय प्रभाव से भी मंत्री नाम सम्बन्धित हैं। वजीरा, वरियाम फौज, मरद आदि ऐसे ही उर्दू प्रभावित नाम है।

४. इन नामों की रचना मे राजस्थानी के 'आं' प्रत्यय का भी प्रयोग हुआ है।

(ख) हाथी नाम—१. हाथी से सम्बन्धित सभी पर्याय नाम हाथी की शारीरिक आकृति सम्बन्धी अथवा उसके विभिन्न अगों के विशेषण है। कुछ नाम हाथी के गण्ड स्थल से झरने वाले मद के कारण रखे गए है, यथा—गधमद, गल्लवर, मत्त, मातग आदि।

२. हाथी के दाँतो एव सूड से सम्बन्धित पर्यायवाची नामों की भी बहुलता यहाँ द्रष्टव्य है—दती, दताल, दतुर, दतुल, द्विरद (सस्कृत), सूंडाडड, सुंडाल (स० शौण्डिक) आदि।

(ग) घोड़ा नाम –१. घोडे के अधिकाश नाम घोड़े की गति, शक्ति, वर्ण एवं अंगों से सम्बन्धित है। स्थान विशेष मे प्राप्त होने से भी उस स्थान से सम्बन्धित घोड़े की जाति-बोधक नाम भी यहाँ मिलते है, जैसे—गधर्व, पंचालरो, कांबोजो, अर्बन, वाना-युज, बलख्खी आदि।

(घ) रथ नाम—रथ के वर्णित २४ नामो मे प्राय. सभी नाम सस्कृत निष्पन्न है, जिनका कवि ने राजस्थानीकरण कर लिया है। इनमे से कुछ नाम गाडी के पर्याय हैं तो कुछ रथ मे जुतने वाले पशुओं के आधार पर रखे हुए नाम हैं—अस्वरूढ़, गजरूढ़, ग्रखरूढ़।

(ङ) पृथ्वी नाम—कुशललाभ ने पृथ्वी वाची ५४ नामो का उल्लेख किया है। इनमें से अधिकांश नाम तत्सम रूप मे है। कुछ विदेशी (अरबी-फ़ारसी) नाम भी यहाँ आ गए हैं, जैसे—जमी (ज़मी), खुरखू (फा० खुर + राज० खुंद), गरद (फा० गर्द = धूल), खाक, दरदरी, यहाँ 'धूलि' से सम्बन्धित शब्दो को भी कवि ने भूमि के ही अर्थ में

ग्रहण कर लिया है। 'गर्द' ऐसा ही शब्द है। इनके अतिरिक्त कुछ नाम पौराणि मान्यताओं, पृथ्वी के सहनशीलत्व एवं उसके पालक रूप से भी सम्बन्धित हैं।

(च) पाताल नाम—प्रायः सभी वर्णित नाम परस्पर पर्यायवाची हैं, उ अंधकार अथवा निम्नता की ओर संकेत करने वाले हैं। वस्तुतः गर्त, अवत् (अवटां), ज निमान शब्द वैदिक साहित्य में कूपों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। कूप पातालगामी होते हैं, अत प्रकारान्तर से इन्हे भी पातालवाची मान लिया गया है। पाताललोक में इन्हीं कूपों गर्भों के आधार पर अंधकार की कल्पना करके अंधकार शब्द भी इसी अर्थ से ग्रहण क लिया गया है।

(छ) विष्णु नाम—१. उडिंगल नाममाला में कुशललाभ ने विष्णु के कु २२ नामों का उल्लेख किया है। इनमें से अनेक नाम कृष्ण और उनकी पत्नी रुक्मिणि सम्बन्धित हैं। सगुण भक्ति में विष्णु और कृष्ण भिन्न नहीं है। कृष्ण विष्णु के ही अवता थे। अतः कृष्ण से सम्बन्धित आख्यान भी इन शब्दों के जनक बन गए हैं। किसन रूकमणिहार, दैतअरि, दमोदर, केसव, माधौ, गोविंद, पीतांबर और निगुण (निर्गुण आदि नाम इसी विचारधारा के परिणाम हैं।

२. कुछ नाम जहाँ विष्णु अथवा कृष्ण की निर्गुणता का बोध कराते हैं, वहीं कु नाम उनकी लीलाओं एव कल्याणकारी कार्यों की ओर भी संकेत करते हैं, जैसे—

(क) निर्गुण रूप—निरलेप, निगुण, नांमी, नारायण।

(ख) लीलाओं सम्बन्धी—किसन, केसव, गोविंद, माधौ, दमोदर, दैतअ इत्यादि।

३. कुछ नाम कृष्ण के प्रिय पदार्थों एवं स्थानों से सम्बन्धित भी हैं, यथा— चक्रपाणि, पीतांबर, बैंकुठा, प्रहलादगुर इत्यादि।

४. पुराणों में विष्णु के चौबीस अवतार कहे गए हैं। इन अवतारों एवं अन पौराणिक आख्यानों से सम्बन्धित भी यहाँ अधिकांश नाम हैं, जैसे—कच्छ अवतार मच्छ अवतार, देवगण वंद, अहिगण वंद, ग्रह-विमल, प्रहलादगुर, निरलेप इत्यादि।

(ज) सिव (शिव) नाम—१. शिव के ग्यारह रुद्र कहे गए है।[२६] इनमें से ती रुद्रों के नाम कुशललाभ ने भी उडिंगल नाममाला में प्रस्तुत किए हैं। ये नाम हैं— माहेसुर (माहेश्वर) गाणवर (गणवर) और संभु (शभु)।

२. शिव की आठ मूर्तियों में से एक मूर्ति 'ईसांण' (सूर्य-मूर्ति) का नाम यह लिया गया है।

३. शिव की प्रिय वस्तुओं के साथ 'पति' प्रत्यय लगाकर भी कुछ नामों क निर्माण किया गया है, यथा—पारबतीपति, जख्यपति, भूतांपति, नागांपति औ पशुपति।

४. कुछ नाम शिव की योग-प्रवृत्ति के सूचक भी हैं, जैसे—जोगाण, परब्रह्म जोगबासिद्ध, सारविद, नागापति, नागाणंद।

तुलनात्मक दृष्टि

कुशललाभ ने आलोच्य नाममाला का निर्माण अपनी पूर्ववर्ती कोश-परम्परा

अनुसार किया है। इस सन्दर्भ में कुशललाभ ने लिखा है—

> सोइ ग्रंथां थी सुण्यौ, जोई वणिय जांण।
> सोइ जोइ धर सुकवि, आदि अंत अहिनांण।।[30]

इस प्रकार यहाँ नवीनता भले न हो किन्तु मौलिकता अवश्य है। कवि द्वारा वर्णित अनेक राजस्थानी पर्याय ऐसे हैं, जिनके कोई रूप पूर्ववर्ती नाममालाओं में नहीं मिलते। राजा, मंत्रवी हाथी, फरी, बुरछी, अकास, ब्रह्मा, सिव इत्यादि नामों में आए अनेक पर्याय इसके प्रमाण हैं। कुशललाभ की इस मौलिकता के दर्शन इस अध्याय के अन्तिम वाक्यांश मे भी होते हैं। इस अध्याय का अन्त कवि ने 'उडिंगल नाममाला चित्रक कथन नाम सप्तमोध्याय' वाक्यांश से किया है। यहाँ 'चित्रक' शब्द से तात्पर्य डिंगल के विभिन्न नामों के चित्रण के सन्दर्भ में हो सकता है। एक ही शब्द के विभिन्न नामों के पठन से उस पदार्थ विशेष का एक भाव-चित्र बन जाता है। इसीलिए अन्त में कवि ने 'चित्रक कथनं नाम' पद का प्रयोग किया है।

कवि के 'सोइ ग्रथां थी सुव्यो···' आदि कथन के आधार पर 'उडिंगल नाममाला' से पूर्व लिखे गए कोश संस्कृत में निरुक्त, अमरकोश, व्याडिकृत त्रिकाण्डशेषमाला, वररुचि कृत उत्पलिनी, भागरुकृत रत्नकोष, शाश्वत कृत अनेकार्थ समुच्चय, हलायुध कृत अभिधान रत्नमाला, माहेश्वर कृत विश्वप्रकाश, हेमचन्द्र कृत अभिधान-चिन्तामणि और अनेकार्थ सग्रह; प्राकृत में धनपाल कृत पाइअलच्छी नाममाला; अपभ्रंश मे हेमचन्द्र कृत देशी नाममाला तथा डिंगल में नागराजपिंगल है।

उक्त वर्णित ग्रन्थों का 'उडिंगल नाममाला' से केवल यही अन्तर है कि इन ग्रन्थों में स्वर्ग नाम, भूमि नाम, पाताल नाम आदि काण्ड, अध्याय अथवा वर्गादि शीर्षकों में विभक्त है, जबकि यहाँ ऐसी परम्परा दृष्टिगत नही होती। यहाँ तो सम्बन्धित नामो का शीर्षक देकर पद्य रूप में उसके पर्यायो का उल्लेख कर दिया गया है। यदि इन नामों का विषयानुसार वर्गीकरण किया जाए तो उसका स्वरूप इस प्रकार सम्भव है—

(अ) **राज्य पद नाम (काण्ड)**—राजा, मंत्रवी (मंत्री), जोधा (योद्धा)।

(आ) **आयुध नाम (काण्ड)**—बुरछी, कटारी, फरी, तरवार (तलवार) और तीर।

(इ) **वाहन-यान नाम (काण्ड)**—हाथी, घोड़ा, वृषभ, रथ।

(ई) **त्रैलोक्य बोधक-स्थल नाम (काण्ड)**—पर्वत, समुद्र, धरती, पाताल, आकाश।

(उ) **देव नाम (काण्ड)**—विष्णु, देव, शिव, ब्रह्मा, अप्सरा और किन्नर।

नामों की वर्गीकरण प्रणाली 'पाइअलच्छी नाममाला' और 'नागराज पिंगल' में भी नहीं मिलती। 'पाअलच्छी नाममाला' में तो नामों का भी आरम्भ में कोई उल्लेख नही दिया गया है। इस प्रकार वर्णन की दृष्टि से 'उडिंगल नाममाला' नागराज पिंगल कोश के अधिक समीप है, जिसमे नामों की ओर संकेत कर उनके अन्य पर्याय बताये गए हैं।[31]

संक्षेप में, कुशललाभ द्वारा रचित यह अध्याय जहाँ लगभग ३६० शब्दों का संग्रह हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है, वहीं डिंगल् शब्द की व्युत्पत्ति एवं विकास को भी स्पष्ट करता है।[३२] कुशललाभ की यह नाममाला एकार्थवाची श्रेणी का कोश-ग्रन्थ है। कारण, वर्णित समानार्थी शब्दों में एक ही अर्थ एव पदार्थवाची शब्दों का उल्लेख हुआ है।

४. गीत-प्रकरण

संस्कृत के 'गै' धातु से 'क्त' प्रत्यय लगने पर गीत शब्द व्युत्पन्न होता है। उक्त धातु का अर्थ गाने के अतिरिक्त कहना, वर्णन करना, अनुवाचन करना भी है।[३३] 'लोक' मे गीत से तात्पर्य गाई जाने वाली कविता से है। पर डिंगल् गीतों में इस अर्थ को ग्रहण न कर अनुवाचन या वर्णन करना अर्थ को ग्रहण किया गया है। क्योंकि राजस्थानी डिंगल् गीत फिल्मी गीतों, लोक गीतो अथवा पद्य-गीतों की भाँति गाये जाने वाले गीत न होकर एक विशिष्ट उच्चारण से पढ़े जाने वाले छन्द हैं। इन गीतों के निर्माता यहाँ के चारण, भाट, मोतीसर, राव आदि आश्रय प्राप्त जातियाँ हैं जो 'गायक' अभिधान के सम्बोधन पर बड़े अपमान का अनुभव करती हैं। ये गीतकार डिंगल् गीतों को अत्यन्त सरस, सुहृद, भावुक शैली मे पढते हैं। डिंगल् गीतकारों की उच्चारण शैली से अभिभूत होकर विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इन्हें गीत-संसार की सर्वोत्कृष्ट निधि बताया है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने इन्हे लोगों के स्वाभाविक उद्‌गार मानते हुए सन्त-साहित्य से भी उत्कृष्ट घोषित किया है।[३४]

राजस्थानी रीति-ग्रन्थों मे डिंगल् गीतों की रचना के लिए अनेक नियम दिये गए हैं। एक गीत अनेक दोहलों (द्वालों) का संकुल है। किन्तु अधिकांश गीतों मे चार दोहले ही पाये जाते हैं, और तीन दोहलों से कम का कोई गीत नही होता। प्रथम चरण में अन्य चरणों से अधिक मात्राएँ या वर्ण होते हैं, जो उसके पहले और आरम्भिक स्थान के सूचक होते हैं।

छन्दों की भाँति दोहले भी मात्रिक एवं वार्णिक होते है, जिनमें सम, अर्द्धसम और विषम आदि भेद हैं। वार्णिक गीतों की अपेक्षा मात्रिक गीतों की ही बहुलता पाई जाती है। मात्रिक गीतों मे भी सर्वाधिक संख्या मात्रिक विषम गीतों की है। इनसे कम अर्द्ध सम की। इसका सम्भावित मूल कारण यही कहा जा सकता है कि मात्रिक गीतों में लय एवं सगीतात्मकता की प्रधानता होती है जो राजस्थानी भाषा के अनुकूल है। इन गीतों में तुकान्त एवं अतुकान्त दोनों प्रकार के गीत मिलते हैं। प्रो० नरोत्तमदास स्वामी के अनुसार राजस्थानी में अतुकान्त गीतों की परम्परा अति प्राचीन है।[३५]

'पिंगल्‌शिरोमणि' का गीत-प्रकरण

कुशललाभ को इस प्रकरण को लिखने की प्रेरणा अपने समकालीन सम्राट अकबर के दो सिन्धु जाति के भट्ट बन्धु आमिल और हामिल से मिली। कवि के अनुसार इन दोनों भाइयों ने दो गीत प्रबन्ध बनाये जिनमें उक्तियाँ भी इन्हीं की स्वरचित हैं।

प्रमाण के अभाव में इन कवियों के गीतों के ग्रन्थ को स्वीकार नहीं किया गया। तब हरिराज ने प्राचीन गीत रचयिताओं के गीतो का सकलन इस प्रकरण में समाहित किया।[३६]

'पिंगलशिरोमणि' के गीत-प्रकरण में कुशललाभ ने ४० गीतों पर विचार किया है। इनमें गीतों के लक्षण तो कवि के निजी हैं, किन्तु कुछ गीतों के उदाहरण कवि ने अन्य गीतकारों के गीतों से दिये है। ऐसे गीतकार कवि और नायक निम्नलिखित हैं—

१. रावल् मालदेव कुवर सहमाल रौ कहियौ (पखालो गीत)
२. गीत माधवदास रौ कहियौ (लघु सांणोर)
३. गीत ढाढी गोयन्द रौ कहियौ (विधानीक गीत)
४. गीत रावत श्री राघोदास जी रौ—हमीरोक्त (घणकण्ठ गीत)
५. गीत रावत श्री मनोहरदास जी रौ—रतनू जाग सूरावत रौ कहियौ (सीहचलौ गीत)
६. गीत भाटी रामदास वैरावत नूं—हमीर बारहठ रौ कहियौ (तिजड़ौ गीत)
७. गीत खेम हरिसिंघोत रौ—दुरसौ जी कहै (सोरठियो गीत)
८. बारहठ ईसर गगा जी नै कहै (दोडौ गीत)
९. कवि वेणीदास री कही (भावन गीत)
१०. गीत राम भाटी रौ (त्रबक गीत)
११. गीत श्री नारायण रौ (अरहटियो गीत)
१२. गीत महाराज श्री गजसिघ जी रौ (गौरव गीत)
१३. गुण-तिलक मतात् (अडियल् गीत)
१४. गीत रावल श्री माल रौ (ताटकौ गीत)
१५. गीत आढो दुरसौ जी कहै (चोटबन्ध गीत)
१६. गीत श्री राम जी रौ—बारहठ माला रौ कहियौ (गजगति गीत)
१७. रावल माल राज्य प्रताप वर्णन (पालवणी गीत)

शेष २३ गीतों के उदाहरण कुशललाभ के स्वरचित हैं। इन सभी ४० गीतों के विषय भिन्न-भिन्न है। किन्तु गीतो का प्रधान विषय वीरता का वर्णन करना ही रहा है। इस प्रकार 'पिंगलशिरोमणि' के गीत प्रकरण के १७ गीत वीर रस प्रधान[३७] १९ गीत भक्ति एव शान्त रस प्रधान[३८] तीन गीत शृंगार रस प्रधान[३९] तथा एक गीत अद्भुत रस प्रधान[४०] है।

कुशललाभ ने गीतों के विवेचन मे छन्द शास्त्रीय क्रम का कठोर अनुकरण नहीं किया है। आरम्भ मे गणपति, सरस्वती, शकर तथा सतयुग से स्वय तक के गीतकारों की स्तुति करके सर्वप्रथम 'झमाल गीत' का लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत किया है। अपने विवेचन में कवि ने इसे 'मात्रका छन्द' कहा है। इसके पश्चात् पंखालो, एकलवयणो आदि कुछ गीतो मे सम, विषम पदों का तो उल्लेख मिल जाता है, पर उनकी जाति विशेष—मात्रिक अथवा वार्णिक के प्रति कोई सकेत नही मिलता। अत: 'पिंगल-शिरोमणि' मे विवचित गीतो का शास्त्रीय क्रम निम्नांकित हो सकता है—

(क) मात्रिक सम गीत—सावझड़ो, जगखोड़ो, गोरव, सैलार, एक अखरो, पालवणी, अडियल, दुमेलो, भ्रमर गुंजार।

(ख) मात्रिक अर्द्धसम गीत—सांणोर, बृहत सांणोर, सीहचलो, सोरठियो, अरहटियो, पाडगति, एकलवयणो, सगीत, हसावलो, पखलो, मध्य सांणोर, कड़खो, तिजड़ो, दूणो, विधानीक, व्याहलो।

(ग) मात्रिक विषम गीत—झमाल, चितइलोल, दोडो, त्रंबक, ताटंको, गजगति, सतखणो, भारवड़ी, चोटी बन्ध, काछो, चोसर, भावन, त्रिकुट।

(घ) वार्णिक अर्द्धसम गीत—घणकण्ठ, संपख रो।

इस अध्ययन के उपरान्त 'पिंगलशिरोमणि' के 'गीत प्रकरण' की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं—

१. कवि ने अधिकांश मात्रिक गीतों का ही वर्णन किया है। वार्णिक गीत केवल दो ही हैं जो लक्षण की दृष्टि से अर्द्ध वार्णिक कहे जा सकते हैं।

२. इन गीतों का नामकरण प्राय: उनकी गति (जघ खोडो), पंक्ति-द्वालों (दोढो, सतखणो), अलंकारों (विधानीक, चोसर, घणकण्ठ), तुकमेल (दुमेलो), छन्दों के मिश्रण (पालवणी, त्रबक) आदि के आधार पर किया गया है।

३. यों तो गीतों के लक्षण कवि ने पद्य शैली में स्पष्ट किये हैं, किन्तु जहाँ उसे लक्षण स्पष्टीकरण में तनिक भी शका अनुभव हुई वहाँ उसने उस लक्षण को गद्य-शैली द्वारा और अधिक स्पष्ट कर दिया है।

४. अनेक गीतों के उदाहरण वर्णित लक्षणों से मेल नही खाते, यथा—व्याहलो, काछो आदि गीत।

५. कुछ गीत ऐसे भी हैं जिनमें मात्रिक अथवा वार्णिक श्रेणी का तो संकेत नहीं दिया गया है, पर कही-कहीं सम-विषम प्रस्तार का प्रयोग किया गया है, जैसे—भ्रमर गुंजार, साणोर गीत।

६. कुछ गीतो की व्याख्या के साथ उसके अनेक भेदों का लक्षण सहित नामोल्लेख किया गया है। इस भेद का एक कारण द्वालो की कमी-बेशी भी है, यथा—तिजड़ो गीत में तीन द्वाले[४१] होते हैं और चोसर गीत में चार[४२] अन्य भेदात्मक गीत है—दूणो (झमाल, सवाया),[४३] कड़खो (नीसाणी के अनेक भेद),[४४] चोटीबन्ध (बन्ध, नागराज, रूपक, चित्रक)।[४५]

७. प्राय: सभी गीतों के लक्षणो की भाषा सांकेतिक है जिसे दृष्टकूट शैली कहा जा सकता है। यही शैली परवर्त्ती गीतों के लक्षण ग्रन्थों मे भी मिलती है।

८. कुछ गीतों को छन्दों के समान मानकर भी शंका प्रकट की गई है। पर प्रश्नोत्तर द्वारा उनका समाधान कर दिया गया है—भ्रमर गुंजार (सुमुखी छन्द)[४६] तिजड़ो, कड़खो (नीसांणी छन्द)[४७] इत्यादि गीत।

तुलनात्मक दृष्टि

आलोच्य प्रकरण में आमिल-हामिल के नामोल्लेख से डिंगल गीतों की पूर्ववर्ती

परम्परा का संकेत मिलता है। किन्तु कवि ने इस युग में डिंगल गीतों-सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थों का अभाव ही कहा है।[४८] हाँ, कुशललाभ ने 'पिंगलशिरोमणि' के आलोच्य प्रकरण में अपभ्रंश भाषा के 'नागराज पिंगल' नामक ग्रन्थ को इस समय तक सभी देशों में प्रचलित प्रामाणिक ग्रन्थ अवश्य कहा है।[४६] डॉ० ब्रजमोहन जावलिया ने इसके 'गीत पिंगल' की भाषा को १७वीं-१८वीं शताब्दी का माना है जबकि पूर्वार्द्ध (रूपक खण्ड) की भाषा को १४वीं-१५वी शती की भाषा बताया है।[५०] इस प्रकार अन्त: साक्ष्य के आधार पर निश्चय ही यह गीत लक्षण ग्रन्थ 'पिंगलशिरोमणि' की पूर्ववर्ती रचना है।

'पिंगलशिरोमणि' की पुष्पिका में आये सांकेतिक शब्दों पर पुनर्विचार करने पर इसका रचनाकाल विक्रम संवत् १६३५ घोषित होता है।[५१] इस तिथि से ग्रन्थ की प्रक्षिप्तांशों वाली समस्या का भी समाधान हो जाता है और इन अंशों से सम्बन्धित दुरसा आढा, ईसरदास, माधोदास आदि गीतकार भी कवि के समकालीन घोषित हो जाते हैं। इन तीनों का जन्म क्रमश: १५९२ वि०, १५९५ वि० और १६१०-१५ वि० माना जाता है। क्रमश: ४०, ४३ और २०-२६ वर्ष की आयु मे इन कवियों का ख्याति प्राप्त कर लेना भी सम्भव है। कवि की अन्तिम रचना गुणसुन्दरी चौपई (वि० सं० १६४८), लूणकरण मन्दिर, जयपुर और वडोदरा के सग्रह में सुरक्षित 'स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन' की प्रति (जिसका रचनाकाल वि० स० १६५३ है) के आधार पर कुशललाभ का अस्तित्वकाल वि० स० १६५५ तक निश्चित होता है। इस प्रकार डिगल गीतों के लक्षण ग्रन्थों के अभाव मे कुशललाभ के 'पिंगलशिरोमणि' का आलोच्य प्रकरण ही इस शैली की प्रथम रचना है। स्वय कुशललाभ ने भी यही स्वीकार किया है। कुशललाभ की ही यह परम्परा बाद मे जोगीदास, मसाराम, किसना आढा, उदयराम गूँगा आदि गीत-कारों के लक्षण ग्रन्थो के अन्तर्गत विकसित हुई। अस्तु, नागराज पिंगल ही डिंगल गीतो पर अकेली पूर्ववर्ती रचना घोषित होती है। इसके अध्ययन के उपरान्त दोनों लक्षण ग्रन्थो मे निम्नलिखित अन्तर स्पष्ट होते है—

१. 'नागराज पिंगल' में ४८ गीतो के लक्षणादि का उल्लेख है, जबकि 'पिंगल-शिरोमणि' मे ४० गीतो का लक्षण-उदाहरण सहित उल्लेख हुआ है।

२. 'नागराज पिंगल' की अनुक्रमणिका एव लक्षण-ग्रन्थ के विवेचित गीतों की नामावली में पर्याप्त अन्तर है। 'पिंगलशिरोमणि' मे यह अन्तर लक्षण और उदाहरणों मे है। यहाँ अनेक गीतों के लक्षण प्रदत्त उदाहरणो से नही मिलते। 'नागराज पिंगल' में मात्र विधानीक गीत का लक्षण वाला द्वाला उपलब्ध नही है।

३. 'नागराज पिंगल' के गीत पिंगल अंश मे उदाहरण स्वरूप रचे गए गीत शेषनाग से बदी अवस्था मे गरुड़ की स्तुतियों द्वारा भुजगप्रयात' पद के उच्चारण के उपरान्त शेषनाग के भाग जाने वाली कथा से सम्बद्ध है। 'पिंगलशिरोमणि' के 'गीत-प्रकरण' मे इस प्रकार के कोई उदाहरण गीत नही मिलते। यहाँ तो कवि ने समकालीन अथवा प्रचलित कवियो के गीतों को ही उदाहरण रूप मे प्रस्तुत किया है।

४. गीत पिंगल (नागराज पिंगल) की भाषा को उत्तरकालीन अपभ्रंश कहा गया है, जबकि गीत-प्रकरण (पिंगलशिरोमणि) की भाषा शुद्ध मध्यकालीन डिंगल है।

इसमें यथा-स्थान पुष्ट राजस्थानी गद्य का भी प्रयोग हुआ है। 'गीत-पिंगल' में प्रयुक्त गद्य उसके टीकाकार का है जो भाषिकी की दृष्टि से १८-१९ शताब्दी का सिद्ध होता है।

इस प्रकार कुशललाभ का यह 'गीत प्रकरण' डिंगल गीत परम्परा की प्रथम मौलिक रचना है। इसमें कवि के शास्त्रीय, ऐतिहासिक एवं कवित्व ज्ञान का एक साथ परिचय प्राप्त होता है।

इस प्रकार कुशललाभ कृत 'पिंगलशिरोमणि' विविध विषय-वस्तु से सम्बन्धित राजस्थानी का प्रथम रीति-ग्रन्थ है। अपनी शास्त्रीय विषय-वस्तु को समझाने के लिए कवि ने अनेक कथाओं का सहारा लिया है। वार्णिक छन्दों के उदाहरणों में कुशललाभ ने भगवान शकर की कथा से दृष्टान्त लिए है। मात्रिक छन्दों मे उसने राम-कथा को अपना आधार स्वीकार किया है। इनके उदाहरणों में सीता पूर्वजन्म प्रसंग, राम की गर्भ स्तुति, राम की तेजस्विता, सौम्यता, राम-रावण युद्ध, राम-परशुराम-संवाद आदि प्रमुख हैं। कवि ने 'गीत-प्रकरण' नामक अध्याय मे भी ऐतिहासिक नायकों से सम्बन्धित विविध गीतों एव भक्ति-सम्बन्धी गीतों को उदाहरण रूप मे प्रस्तुत किया है। गीतों मे प्रयुक्त प्रसंग है—हनुमान की वीरता, कृष्ण भक्ति, विष्णु एव गरुड़ की कथा, राम कथा इत्यादि।

सासोतरा विवेचन 'पिंगलशिरोमणि' की सबसे बड़ी विशेषता है। यहाँ कवि ने इस अछूती एव नवीन काव्य-शास्त्रीय परम्परा से अवगत कराया है। कुशललाभ के अनुसार यह गुरु-शिष्य के बीच सम्पादित वार्तालाप है। ऐसे दूहों की सख्या ३५० है, पर आज केवल २५-३० प्रकार के ही 'सासोतरा' दूहे उपलब्ध हैं।[४३]

विद्वानों द्वारा कथित प्रक्षिप्त घटनाओं, चरित्रों आदि की गुत्थी भी इस रचना से सुलझी है। अध्यायों के अन्त में "इति श्री महारावल माल पाटोधरे···" आदि पाठ अपने आश्रयदाता के प्रति औपचारिकता निर्वाह के लिए ही दिया है। यह प्रयोग ठीक वैसा ही है जैसा केशवदास ने अपनी कृति 'कविप्रिया' में राजकुमार इन्द्र के लिए किया है। ग्रन्थ मे हरराज द्वारा विरचित कुछ अंशों की सम्भावना की जा सकती है, किन्तु उन्हे भी कुशललाभ ने ही ग्रन्थ में सम्पादित करके स्थान दिया है।

सन्दर्भ

१. वीर साप्ताहिक, १५ जून १९४६, श्री रामसिंह तोमर का लेख "जैन साहित्य द्वारा हिन्दी साहित्य द्वारा साहित्य में श्रीवृद्धि।"

२. (क) शेषं गाथास्त्रिभि षडभिश्च रणैश्चोपलक्षिता—श्री धरानन्द शास्त्री, हिन्दी वृत्त रत्नाकर, पृ० २०

(ख) विषमाक्षरपाक्षवा, पादैरसम दशधर्मवत।
यच्छन्दो नोक्तमत्र, गाथेति तत्सूरिभिकथितम ॥

—वही, पृ० १८४, गाथा १२

३. परम्परा, भाग-१३, पृ० ५५
४. सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी, परम्परा, भाग-१३, पृ० ५४
५. रघुनाथ रूपक गीता रो, सं० १९३८ ई०, पृ० ११
६. डॉ० नारायणसिंह भाटी, परम्परा, भाग-१३, पृ० ६६
७. वही, पृ० १०१
८. वही, पृ० ३४
९. वही, पृ० १०३
१०. वही
११. वही
१२. वही, पृ० २५
१३. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी काव्यालंकार, सूत्र ५/१
१४. परम्परा, भाग-१३, पृ० १२६
१५. कवि ने इस चित्र का नामोल्लेख नही किया है। केवल चित्र बनाया है। संस्कृताचार्यों के अनुसार ऐसी आकृति का चित्र शकटबध होता है।
१६. परम्परा, भाग-१३, पृष्ठ १३६
१७. वही, पृ० १३५-१३६
१८. वर्ण छद सहि मांहि वढ, प्रस्तारादि प्रजंत।
मत्ता सम छदा मुणै, केई विसम कहत॥ —वही, पृ० १३६
१९. परम्परा, भाग-१३, पृ० १३९
२०. वही, पृ० १३८
२१. वही, पृ० १३९
२२. वही, पृ० १४०
२३. मुख्य प्रधाना मत्रवी, पुणै नाम फतयद।
कैद हूं त काठी ठियो, अधिको होय अणद॥ —वही
२४. परम्परा, भाग-१३, पृ० १४१
२५. वही, पृ० १२७
२६. वही, पृ० १३४
२७. वही, पृ० १४०
२८. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, अज्ञात कवि कृत एकाक्षरी नाममाला, भूमिका, (प्रथम संस्करण)।
२९. डॉ० भोलानाथ तिवारी, वृहत पर्यायवाची कोष, पृ० १३
३०. स० नारायणसिंह भाटी, पिंगलशिरोमणि, 'परम्परा', भाग-१३, पृ० १५०
३१. धरती, हाथी, घोड़ा, तरवार, समुद्र आदि नाम दोनों ही ग्रन्थों में समान हैं।
३२. प्रो० नरोत्तमदास स्वामी, राजस्थानी साहित्य : एक परिचय, पृ० १२-१३
३३. स० वी० एस० आप्टे—'द स्टूडेण्ट्स सस्कृत-इगलिश डिक्शनरी, पृ० १९२, सस्करण १९६९ ई०।

३४. सं० नरोत्तमदास स्वामी, वेलि क्रिसण रुकिमणी री, पृ० २०, संस्करण १९६५ ई०
३५. राजस्थान भारती, भाग-२, अंक १, प्रो० नरोत्तमदास स्वामी का लेख, 'डिंगल गीतों की सारिणी'।
३६. सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी, परम्परा, भाग-१३, पृ० १५१
३७. झमाल, सावझड़ो, जग खोड़ो, पंखाळो, छोटोसांणोर, हंसावळो, तिजड़ो, सोरठियो, गोरव, कड़खो, तारंको, संपखरो, सेलार, चोटीबंध, दुमेलो, त्रिकुट और पालवणी।
३८. मध्य सांणोर, वृहतसांणोर, विधानीक, भाखड़ी, दोहो, दूणो, अडियल, भ्रमर गुंजार, एक अखरो, एकलवयणो, गजगति, पाडगति, सीहुं चलो, चितइलोल, त्रंबक, अरहटियो, काछो, भावन और चोसर।
३९. घणकठ, व्याहुलो और संगीत।
४०. सतखणो।
४१. परम्परा, भाग-१३, पृ० १६०
४२. वही, पृ० १५७
४३. वही, पृ० १६३ (वार्त्ता)।
४४. वही, पृ० १६८ (वार्त्ता)।
४५. वही, पृ० १७१ (वार्त्ता)।
४६. वही, पृ० १७२
४७. वही, पृ० १६०, १६८
४८. वही, पृ० १५१
४९. वही, पृ० १५२
५०. 'मज्झमिका', १९७३-७४ ई० में प्रकाशित लेख, उत्तर कालीन अपभ्रंश का एक दुर्लभ ग्रन्थ : 'नागराज पिंगल'।
५१. वरदा, अंक (पृ० ४५-५२) में प्रकाशित लेख 'पिंगलशिरोमणि : रचयिता, रचनाकाल और रचयिता की गुरु परम्परा' में डॉ० ब्रजमोहन जावलिया ने मुनि = ३ माना है तथा 'सर' पाठ को अशुद्ध बताया है। सही पाठ 'रस' है जो ६ (षडरस) का बोधक है। इस प्रकार पांडव मुनिसर (रस) 'मोदनी' का अर्थ बताया है—पांडव = ५, मुनि = ३, रस = ६, मोदिनी = १ = १६३५ वि०। यह तिथि तिथि-पत्रक से प्रमाणित हो जाती है।
५२. परम्परा, भाग-१३, पृ० १५१
५३. सं० नारायण सिंह भाटी—परम्परा, भाग-१३, पृ० १४१

६

कुशललाभ की रचनाओं का साहित्यिक अध्ययन

खण्ड (क) भाव पक्ष

कवि कुशललाभ मूलतः एक जैन यति था। अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में उसने राज्याश्रय ग्रहण कर लिया था। अतः यह स्वाभाविक था कि उसकी साहित्यिक प्रतिभा उपर्युक्त दोनों ही प्रकार के वातावरण से परिवेष्ठित रहती। रावल हरराज के आश्रित रहते हुए उन्होंने माधवानल कामकदला चौपई, ढोला मारवणी चौपई तथा पिंगलशिरोमणि की रचनाएँ की तो इसी काल में अपने धार्मिक ज्ञान के आसरे उसने जिनपालित जिनरक्षितसधि गाथा, पार्श्वनाथ दशभव स्तवन, अगडदत्त रास, तथा तेजसार रास चौपई जैसे जैन दर्शन से प्रभावित कृतियों की रचना की। ऐसा प्रतीत होता है अपने आश्रयदाता रावल हरिराज की मृत्यु के उपरान्त उन्होंने राज्याश्रय त्याग कर पूर्णतः परिव्राजक जैन साधु के रूप मे जीवन-यापन प्रारम्भ कर दिया। यही कारण है कि इसके उपरात कवि द्वारा विरचित लगभग सारा साहित्य (भीमसेन हसराज चौपई को छोड़कर) धार्मिक या साम्प्रदायिक साहित्य है।

इसीलिए जहाँ कवि की जैन-परक कृतियो में आध्यात्मिक वातावरण के परिप्रेक्ष्य मे शृगार रस का अवसान शान्त रस मे हुआ है, वही जैन-दर्शनेत्तर रचनाओं में शृगार रस का खुलकर आस्वादन किया और कराया गया है। इस प्रकार कुशललाभ के साहित्य में मुख्य रूप से शृगार रस की ही अभिव्यक्ति हुई है। शान्त रस अथवा निर्वेद भाव की तो कवि मात्र ने नैसर्गिकता के निर्माण एव जैन-कथानक के उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयोग किया है। श्रीचन्द के अनुसार जैन काव्य मे शान्ति या शम की प्रधानता है अवश्य, किन्तु वह आरम्भ नही परिणति है। सम्भवतः पूरे जीवन को शम या विरक्ति का क्षेत्र बना देना प्रकृति का विरोध है। जैन कवि इसे अच्छी तरह से जानता है, इसलिए उसने शम या विरक्ति को उद्देश्य के रूप में मानते हुए भी सांसारिक वैभव, रूप, विलास और कामासक्ति का चित्रण भी पूरे यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है···नारी के शृङ्गारी रूप, यौवन तथा तज्जन्य कामोत्तेजना आदि का चित्रण इसी कारण जैन-कवियो ने बहुत सूक्ष्मता से किया है। उसके चरित्र अवतारी-जीव नही होते, इसीलिए उनके प्रेमादि के

चित्रण देवत्व के आतंक से कभी भी कृत्रिम नहीं हो पाते। वे एक ऐसी जीवात्मा का चित्रण करते है, जो अपनी आन्तरिक शक्तियों को वशीभूत करके परमेश्वर पद को प्राप्त करने के लिए निरन्तर सचेष्ट हैं। उसकी ऊर्ध्वमुखी चेतना आध्यात्मिक वातावरण में सांस लेती है, किन्तु पंक से उत्पन्न कमल की तरह उसकी जड़सत्ता सांसारिक वातावरण से अलग नहीं है। इसीलिए संसार के अप्रतिम सौन्दर्य को भी तिरस्कृत करके अपने साधना-मार्ग पर अटल रहने वाले मुनि के प्रति पाठक अपनी पूरी श्रद्धा दे पाता है।[1]

जैन-शृङ्गार-काव्यों की यही प्रवृत्ति कुशललाभ के साहित्य मे भी मिलती है। यहाँ कोशा का स्थूलिभद्र के प्रति उल्लास एव उसका नख-शिख वर्णन,[2] व्यंतरियों का तेजसार के साथ विवाह का आग्रह,[3] मदनमजरी का अगड़दत्त के साथ विवाह का आग्रह है,[4] जिनपालित का दक्षिण-वन-खण्ड की व्यतरी के साथ विवाह[5] आदि घटनाएँ इसी प्रवृत्ति की द्योतक है।

कुशललाभ के साहित्य मे वर्णित शृंगार-रस

'शृंग' (कामोद्रेक) की उत्पत्ति होने के कारण ही इसे शृगार कहा गया है। इसका स्थायी भाव रति है, जिसका अर्थ प्रियवस्तु के प्रति मन का उन्मुख होना अर्थात् नायक-नायिका का पारस्परिक अनुराग है। प्रेम की सुखात्मक एवं दुखात्मक अनुभूतियों के आधार पर साहित्य शास्त्रियो ने इसके दो भेद किए हैं—संयोग शृगार और वियोग शृगार। प्रथम में नायक-नायिकाओ के मिलन के कारण सुखानुभूति होती है, जबकि द्वितीय मे नायक अथवा नायिका के अभाव मे विरह की दुःखानुभूति। कुशललाभ के साहित्य मे इन दोनों ही रूपों की अभिव्यक्ति हुई है।

(क) संयोग-शृंगार

(अ) रूप-वर्णन

कुशललाभ कृत माधवानल कामकदला चौपई, ढोला मारवणी चौपई, तेजसार रास चौपई, स्थूलिभद्र छत्तीसी, भीमसेन हंसराज चौपई आदि रचनाओं के नायक-नायिकाओं का विविध शृंगार प्रसाधनों से युक्त रूप वर्णन हुआ है। कामकंदला का नख-सिख वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

चंपक वयण सकोमल अंगि, मस्तक वेणि आणि भुयंग।
अधर रग परवाला वेलि, गयवर हंस हरावई वेगि॥
नाक जिस्यो दीवा नी सीखा, बाहे रतन जड़ित बहरखा।
मुंख जांणें पूनिम नो चद, अधर वचन अमृत मय चंद॥
पीन पयोधर कठिनोतंग, लोचन जाणे त्रसु कुरंग।
भाल तिलक सिर वेणी दड, भमह वक मनमथ कोदड॥

(मा० का० कं० चौ०, चौ० १८८-१९१)

लगभग ऐसा ही नख-सिख वर्णन कवि ने 'भीमसेन हंसराज चौपई' की मदन-मंजरी एवं 'स्थूलिभद्र छतीसी' की कोशा का किया है, जो प्रस्तुत है—

(१) रंभा गाभ जिसी जुग जंघ, उदित बिल्व सम उरज उत्तंग।
अधर पक्व बिंबाअणु हारि, फिर पूतली चित्र आकार ।।
(भी० हं० चौ०, चौ० १३४)

(२) मंजन अंजन कीना, सुधि सब तन भीना
भरम सौरंभ लीना, सोहइ सिर रक्करी
कुंडल कपोल चोल वदन तंबोल रोल
कुच झकझोर पोर सारइं तिन्वि सरवकरी
कोमल कणयरी कंब अधर विद्रुम बिंब
पुहप वेणी प्रलब, झइ-सी, चित्र पुत्तरी। (स्थू० भ० छं०, छं० १२)

नायिकाओं की भांति ही कवि ने नायकों के रूप-सौन्दर्य को भी चित्रित किया है। यद्यपि यह अनुभूति अपने में पूर्ण नहीं है, फिर भी नायक के रूपवान होने का संकेत तो देती ही है। द्रष्टव्य है क्रमशः तेजसार और माधव के रूप-सौन्दर्य की अनुभूति—

(१) अत्तिहि सरूप सुंदरि आकार, दीसइ जाणे देव कुमार।
चढतइ पक्ष जाणे जिम चद, माता पिता मन अति आणद ।।
(ते० रा० चौ०, चौ० ११)

(२) माहे देखइ अद्भुत बाल, सुन्दर रूपवंत सुकमाल।
तेजइ सूरिज जिम जल हलइ, ते लइ प्रोहित नीकलई ।।
(मा० का० कं० चौ०, चौ० ६०)

इस मांसल-वस्तु परक् सौन्दर्य के साथ ही कवि ने वातावरण-सज्जा के सौन्दर्य को भी प्रकट किया है। इन्द्र के झिलमिलाते हुए महलो में उसके ऐश्वर्य का चित्रण करता हुआ कवि लिखता है—

स्वर्ग लोक नउ सामी इन्द्र, आण अखंड करइ आणद।
अति सुदर झलकई आवासि, झलकई जाणे रवि परगास ।।
बारह सुंदर इन्द्र इग्यार, सात अनीक तणउ परवार।
अमृत मय वछित आहार, बारमेघ सेवई दरबार ।।
× × ×
नही जरा भय संगट सोग, नहीं कष्ट दुख दालिद रोग।
सकल काम वछित सरई, करई राज सुरपति इण परई ।।
(वही, चौ० ५—११)

कुशललाभ की प्रेमाख्यानक रचनाओं मे नायक-नायिकाओं की रस-चेष्टाओं, सुरत-क्रीड़ाओं, विहार, प्रहेलिका आयोजन आदि का यत्किंचित वर्णन हुआ है। ये चित्रण कही तो नायक-नायिकाओं की वासना का परिणाम है तो कहीं उनके मिलन के उपयोग

का परिणाम। जैसे ही नायक-नायिकाओं को मिलन का अवसर प्राप्त हुआ है, वैसे ही वे यहाँ पर परस्पर संयोग-सुख प्राप्ति के लिए उन्मुख हैं। 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' मे जैसे ही कोशा को उसका प्रेमी स्थूलिभद्र प्राप्त होता है, वह येन-केन प्रकारेण उसे अपनी ओर आकर्षित कर उसके साथ सम्भोग-सुख भोगना चाहती है।[६] किन्तु श्रावक होने के कारण स्थूलिभद्र अवसर का उपयोग करने में असमर्थ है। इसके विपरीत माधव और कामकदला जब आपस में मिलते हैं तो वे दोनों विविध प्रकारों के शृंगारों से सुशोभित होकर सम्भोग-क्रीड़ा करते हैं। कवि ने उसका वर्णन इन पंक्तियों में किया है—

सुख सेजइ माधव सचरइ, चुंबन दे आलिंगन करई।
प्रेम दिखालि कंत मन हरइ, कामकदला इम उच्चरई॥
चढ़ि चढ़ि नाहनिसंग चढ़ि, भुजा देहि पसार।
अम्ह चपा किम तुट्टही, तुम्ह भमरां के भार॥
× × ×
मयण बाण वेधइ सा बाल, घालइ कंठि बांह सुकुमाल।
करसुं सचइ कुसुम माल, काम अेम जगावे तत्काल॥
× × ×
कामकदला विषय सुख, माधव विलसइ जेइ।
ते सुख जांणे ईसर वली, करइ वलइ जाणइ तेह॥
(मा० का० कं० चौ०, चौ० २४०-२४६)

ऐसे ही वर्णन ढोला मारवणी चौपई,[७] भीमसेन हंसराज चौपई[८] मे भी मिलते हैं, किन्तु संक्षेप एव सयत रूप मे। भीमसेन हंसराज चौपई मे कवि ने जलकेलि और जलाशय-विहार की ओर भी सकेत किया है, जो इस प्रकार है—

सुंदरि मदनमंजरी साधि, निर्भय थइ बइठा नर नाथ।
पहिला नदंन वन पेषंति, सरवर तटि जल केलिकरंति॥ चौ० २६५
पद्म सरोवर थापौ नांम, नदंन वन नामइ अभिरांम।
राजा रमइ तीयइ आवासि, विलसइ वंछित भोग विलास॥ चौ० ३३

काम-क्रीड़ा के उपरान्त कवि ने हास-परिहास निमित्त शास्त्रानुसार प्रहेलिका-आयोजन भी किया है। इसके प्रमाण स्वरूप माधवानल कामकंदला चौपई में वर्णित प्रहेलिका-प्रसंग प्रस्तुत किया जा सकता है।[९]

(ब) अनुभाव

आलबन, उद्दीपन आदि कारणों से उत्पन्न भावों को बाहर प्रकाशित करने वाले कार्य को अनुभाव कहा जाता है। भ्रूक्षेप, कटाक्ष, कंपकंपी, हृदय की धड़कन आदि शृंगार के अनुभाव हैं, जिनका सम्बन्ध नायक-नायिका की काया, मानस, एवं वेश-भूषा से होता है।[१०] कुशललाभ की रचनाओं में उपस्थित ऐसे कुछ अनुभाव द्रष्टव्य हैं—

(घ) अवलोकन एवं वस्त्रादि

> चंद्रोवा ऊपरि अति अंग, पट्टकूल सुख सेज सुरंग।
> माधव देखी मन गहगहइ, फूल पगर मृगमद महमहई ॥
> (मा० का० कं० चौ०, चौ० २३२)

(आ) मिलन-उल्लास

> ढोला मनि आणद अति घणो, वचन सुण्यो मारूई तणो।
> मारू बोलतां मुख सांस, भमि भमर कसतूरी बास ॥
> (ढो० मा० चौ०, चौ० ५७३)

(इ) आवेग एवं अश्रु

> प्रेम प्रकासइ मोड़इ अंगि, कसणा भांजई जांणि भुयंग।
> आलस अगि जंभाई करइ, विरह विथा जल लोचन भरइ ॥
> (मा० का० कं० चौ०, चौ० २४३)

(स) संचारी भाव

जो भाव विशेष रूप से स्थायी भाव की पुष्टि के लिए तत्पर या अभिमुख रहते हैं और स्थायी भाव के अन्तर्गत आविर्भूत और तिरोहित होते दिखाई देते हैं, वे संचारी भाव कहलाते हैं। आचार्यों ने इनकी संख्या ३३ मानी हैं।[११] इनमें से कुशललाभ के साहित्य में प्रयुक्त कुछ संचारी भाव इस प्रकार हैं—

(अ) स्वप्न

> जिण दिन ढोलो पंचै वहे, मारू तिण दिन सुहणो लहे।
> मिलीउ प्रीतम नीद्र मझारि, मारू माता आगे कहे विचार ॥
> (ढो० मा० चौ०, चौ० ५१६)

(आ) अतृप्ति

> कामकंदला इम कहइ, अजी अछे बहु राति।
> गाहा गूढ़ा गीत रस, कहि का नवली वात ॥
> (मा० का० कं० चौ०, चौ० २४३)

(इ) लज्जा

> मनि सकाणी मारूई, रिखे पुण सँकंति।
> हसीकरी प्री प्रते कहे, सांभल प्री वरतंत ॥
> (ढो० मा० चौ०, चौ० ५६६)

(ख) वियोग-शृंगार

नायक-नायिकाओं के अभीष्ट मिलन का अभाव ही वियोग अथवा विप्रलंभ

शृंगार कहलाता है। इसके चार भेद माने गए हैं— पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। जब नायक या नायिका में प्रेम की प्रतीति का संचार प्रत्यक्ष-दर्शन, रूप-गुण-श्रवण, चित्र-दर्शन अथवा स्वप्न दर्शन द्वारा हो, किन्तु वे परस्पर नहीं मिल सके वहाँ 'पूर्वानुराग' विरह की अवस्था होती है। 'मान' की अवस्था में प्रिय तथा प्रेमिका के मन में परस्पर अनुराग तो रहता है, परन्तु कारण-अकारण एक-दूसरे पर कुपित रहते हैं। 'प्रवास-विप्रलंभ' में नायक और नायिका कार्यवश, दैवी-शापवश, संभ्रम-वश अथवा देशान्तर-गमन के कारण परस्पर एक दूसरे से वियुक्त होते हैं। नायक-नायिका में से एक के मर जाने पर दूसरा जो दुःखी होता है, उसे 'करुण विप्रलंभ' कहते हैं।

कुशललाभ की कतिपय कृतियों में 'मान' के अतिरिक्त शेष तीन विप्रलंभ-अवस्थाओं का चित्रण हुआ है। माधवानल और कामकंदला का वियोग प्रत्यक्ष-दर्शन के परिणाम स्वरूप उद्‌भूत पूर्वराग-विप्रलंभ को प्रस्तुत करता है,[12] जबकि 'ढोला-मारवणी चौपई' में मारवणी का प्रेम गुण-कथन एवं स्वप्न-दर्शन—जन्य पूर्वराग विप्रलंभ है। 'हसराज भीमसेन चौपई' की मदनमजरी में भी भीमसेन के प्रति प्रेम की अवतारणा योगी और सुग्गे द्वारा उसका रूप-गुण-कथन द्वारा होता है।[13]

'प्रवास विप्रलभ' की सुन्दर अभिव्यजना हमे माधवानल कामकंदला चौपई' और 'ढोला मारवणी चौपई' मे मिलती है। संभोग-सुख की प्राप्ति के पश्चात् जब माधव कामसेन की आज्ञानुसार देश-गमन करता है, तब कवि द्वारा वर्णित कामकंदला की अवस्था प्रवास-जन्य विरह की अभिव्यक्ति करती है।[14] इसी भाँति ढोला के पूंगल-गमन पर मालवणी का विलाप भी प्रवास-विप्रलंभ ही है।[15]

सर्प-दश पर मदनमजरी की मृत्यु पर अगड़दत्त का विलाप,[16] पीवणे सर्प के दंश पर मारवणी की मृत्यु पर ढोला का विलाप,[17] मार्ग में मदनमंजरी के गुम जाने पर भीमसेन द्वारा अग्नि प्रवेश का निश्चय[18] तथा कामकंदला और माधवानल के प्रेम की परीक्षा में उनकी मृत्यु के पश्चात् का वातावरण[19] करुण विप्रलंभ के अवतरण हैं।

माधव और ढोला के प्रवास के कारण ही कामकंदला और मालवणी के विरह की तीव्रता बढ़ गयी है। माधव के विरह की अग्नि कामकंदला के हृदय को बुरी तरह से साल रही है। और उसी से वह निरन्तर पीली पड़ती जा रही है—

> हियड़ा भीतर दव बलई, धूओ प्रगट न होई।
> वेलि बिछोह्या पानड़ा, दिन-दिन पीला होई ॥[20]

(अ) अनुभाव-चित्रण

कुशललाभ के साहित्य में विरह-जनित निम्नलिखित अनुभाव दृष्टिगत होते हैं—

(क) शृंगार प्रसाधनों का त्याग

> कामकंदला इण परे रहई, बीजो लोक वात नवि लहई।
> तजइ तिलक काजल तंबोल, मंझण हावण खोल अंगोल ॥
>
> (मा० का० कं० चौ०, चौ० ३६१)

(आ) वस्त्र-त्याग

माधवानल चाल्यो परदेस, कामकंदला छांड्यो वेस।
छंडे रंगत दक्षिणचीर, न करइ सोल श्रृंगार सरीर॥
(मा० का० कं० चौ०, चौ० ३६०)

(इ) अरुचि

माता समझावे घणुं, कयुं न करइ कुल कर्म आपणो।
आवे मोटा घरि नर राय, कामकंदला ते न सुहाई॥
(वही, चौ० ३६३)

(ई) भूमि पतन

बीछड़तांहि सजनो, कोई कहूणन लब्ध।
ऊभी थी घड़हड़ पड़ी, जांणे कसी गी वब्ध॥
(ढो० मा० चौ०, छ० ४३६)

(उ) स्तम्भ

ढोलो चाल्यो है सषी, वाज्या विरह नीसांण।
हाथे चूड़ी षीहा पड़ी, ढीला थया संधान॥ (वही, चौ० ४२९)

(ऊ) अश्रु

वीछतां ही सजना, राता कीआ रतन्न।
वारी वे ओहु राषीआ, आंसू, मति व्रन्न॥ (वही, चौ० ४३५)

(ब) संचारी भाव

(अ) विबोध (जाग उठना)

धापि बूंब आवी धसमसी, कहइ सषी ए मूर्छा किसी।
चंदण चरचइ वीजइ वाइ, थई सचेत वदइ विललाई॥
(मी० हं० चौ०, चौ० १५४)

(आ) दैन्य

थे सिवावो सिद्ध करो, पूजो थांकी आस।
मत वीसारो मन थकी, हूं छउ थांकी दासी॥
(मा० का० कं० चौ०, चौ० ३३७)

(इ) निर्वेद

हीयड़ा फूटि पसाउ करी, केता दुख सहेस।
वालभ प्री विछोहीयो, जीवी काह करेसि॥ (वही, चौ० ३५४)

(ई) त्रास

थल माथे जल बाहुरी, तुंकांई नीली झाल।
कै तुं सीची सजनां, के बुठो अकाल ॥
(ढो० मा० चौ०, चौ० ४४१)

(उ) विषाद

सुणी मारवणी आवी घरे, कोपीयो वीरह मयबल घरे।
सूती सेज करे वीषास, मोड़े अंग न मूके नीसास ॥
(ढो० मा० चौ०, चौ० २४१)

(ऊ) स्मृति

सज्जन तेरा गुण घणा, वस्या जु हीयड़ा माहि।
रयण दीह न वीसरह, जो वरसा सौ जाई ॥
(मा० का० कं० चौ०, चौ० ४१०)

(स) काम दशाएं

'साहित्य-दर्पणकार' ने विरह की दस काम दशाओं का उल्लेख किया है। ये दशाएँ हैं—अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, और मृति।[२१] प्रिय से तन से मिलने की इच्छा अभिलाषा है, प्राप्ति के उपायों की खोज चिन्ता है, सुखदायक वस्तुएँ जब दुखदायी बन जाए तो उद्वेग है, चित के व्याकुल होने से अटपटी बातें करना प्रलाप है, जड़-चेतन का विचार न रहना उन्माद है, दीर्घ निश्वास, पाण्डुता, दुर्बलता इत्यादि व्याधि है, अगो तथा मन का चेष्टा शून्य होना जड़ता है।[२२] अन्य दशाओं के अभिप्राय स्वत: स्पष्ट हैं।

कुशललाभ के साहित्य मे भी इन दशाओं का प्रयोग हुआ है। प्रयुक्त काम दशाओं का एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

(अ) अभिलाषा

महारइ मनि जे मइ वर वरउ, अंगउ सहित मइ अंगी कर्यउ।
वरसूं भीमसेन भरतार अथवा अगनि प्रवेस अपार ॥
(भी० हं० चौ०, चौ० १५६)

(आ) चिन्ता

बाबा विप्र म मोकले, आकी सीतल जात।
मेल्हे घर का मंगता, विरह जगावे राति ॥
(ढो० मा० चौ०, दू० २३७)

(इ) गुण-कथन

समरतां साजण तणे, गुणे न आवै पार।
मिलउ तबही होइस (इ), जब करसइ करतार ॥
(मा० का० कं० चौ०, चौ० ४२२)

(ई) उद्वेग

आंषडीयां डबर भया, नयण गमाई रोई।
ते साजण परदेसड़ै रह्या बीडाणी होई।। (वही, दूहा ४४२)

(उ) स्मृति

प्रीतम तेम चीतार जे, जीभ चकवीह नीस भाण।
हम तुम तब ही बीसस्यां, जब ऊड़स्यई पराण।। (वही, ४४८)

(ऊ) जड़ता

ढोलो तिहांथि पाछो वल्यो, जाई मालवणी मील्यो।
ढोला तणी वात सहु कही, मालवणी अबोली रही।।
(ढो० मा० चौ०, चौ० ४५३)

(ए) मूर्छा

एह वात वेस्या सांभली, मूर्छा आवी धरणी ढली।
(मा० का० कं० चौ०, चौ० ५७६)

(ऐ) प्रलाप

हणी भव मुझ मारवणी नार, सह हथि दीधी सिरजणहार।
सेइ परमेस्वर संग्रही, मुझ मरण इण साथे सही।।
(ढो० मा० चौ०, चौ० ६१३)

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुशललाभ ने शृंगार रस को प्रधान रस के रूप में ग्रहण किया है, फिर भी उसका परम्परात्मक रूप यहाँ नही मिलता। सहज रूप में शृंगार का जो स्वरूप उपस्थित हो गया है, कवि वही तक सीमित बना रहा है। यही उसके शृंगार-वर्णन की प्रमुख विशेषता है।

(ग) शान्त रस

कुशललाभ के साहित्य का सहायक रस शान्त है। इसका प्रमुख कारण कवि का जैन धर्मावलबी होना है। जैनाचार्यों के अनुसार राग-द्वेषो से विमुख होकर वीतरागी पथ पर बढना ही शान्ति है। इस प्रकार भक्त की प्रमुख भावना निर्वेदमयी होना जैनाचार्यों के अनुसार शान्त रस की प्रमुख विशेषता है, जो मम्मट की "निर्वेद स्थायिभावोऽस्ति शांतोऽपि नवमो रस:"[२३] (निर्वेद भी स्थायी भाव वाला होने पर शान्त रस नाम से नवम् रस होता है), परिभाषा के अनुकूल ही है। अत: मोक्ष और अध्यात्म की भावना से जिस रस की उत्पत्ति होती है, वह शान्त रस है। अनित्य जगत इसका आलबन, जैन मन्दिर जैन-प्रतिमा, नवकार-मन्त्र, जैन यति (श्री पूज्य, सोमजी शाह, स्थूलिभद्र आदि) उद्दीपन, काम, क्रोध, मोह, लोभ के अभाव अर्थात् सर्वसमत्व इसके अनुभाव हैं।

जैनाचार्यों ने शान्ति के दो उपाय बताये हैं—तत्त्व-चिन्तन और वीतरागियों की भक्ति।[२४] कुशललाभ का साहित्य द्वितीय उपाय का उपजीव्य है। यहाँ कवि ने कभी तो

नवकार महिमा का बखान किया है तो कभी भगवान जिनेश्वर की प्राप्ति के लिए अपने पात्रों को किसी न किसी गुरु के पास दीक्षित कर दिया है। तत्व-चिन्तन का थोड़ा-सा सकेत 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' में मिलता है। अन्यथा शम की प्राप्ति के लिए ही सोमजी शाह ने शत्रुंजय यात्रा की है।[२५] हसराज ने भी मार्ग में आ रहे गुरु श्री राम से शान्ति के लिए ही वैराग्य-भाव ग्रहण किया है।[२६] तेजसार,[२७] अगडदत्त,[२८] जिनपालित[२९] आदि द्वारा वैराग्य की प्राप्ति भी उसी शम का परिणाम है। इस प्रकार कवि ने अन्य सभी जैन-कवियों की भाँति ही शान्त रस के माध्यम से शृंगार की अभिव्यक्ति की है, जो शास्त्रानुकूल भी है। वस्तुतः शान्त रस से ही रति आदि आठ स्थायी भावों की उत्पत्ति हुई है और शान्त में ही उनका विलय हो जाता है।[३०]

(घ) अन्य रस

(अ) वीर रस— शृगार एव शान्त रस के अतिरिक्त कुशललाभ के साहित्य में सर्वाधिक प्रयुक्त रस वीर है। मध्यकालीन साहित्य मे शृंगार के साथ वीर का और वीर रस के साथ शृगार का पारस्परिक सम्बन्ध सदा रहा है। अपनी प्रेमिका अथवा अभीष्ट की प्राप्ति के लिए नायक को युद्ध करना आवश्यक हो जाता था और युद्ध की अवस्था में वीर रस का उद्रेक स्वाभाविक था। कवि कुशललाभ ने भी इन्हीं युद्ध-अवसरों के माध्यम से नायक के शौर्य, तेज और ओज का प्रदर्शन किया है। शृगार के मध्य वीर रस की स्थिति इसीलिए यहाँ रस-दोष उत्पन्न न कर शृगार रस की प्राप्ति मे सहायक ही होती है।

राजा पिंगल का जूनागढ़ के कुंवर रिण धवल के साथ द्वन्द्व,[३१] तेजसार की राक्षस, योगी और समरसेन के साथ लड़ाई,[३२] भीमसेन का राजा सागरराय के साथ युद्ध[३३] तथा महामाई दुर्गा द्वारा महिषासुर और शुंभ-निशुंभ-वध के प्रसग[३४] वीर रसात्मक स्थल हैं। इन स्थलो की विशेषता यही है कि ये शास्त्रीय परम्परा से ही लीकबद्ध नही है। इन स्थलों मे युद्धों एवं तत्सबधी उपकरणों का विस्तृत विवेचन नहीं हुआ है। कवि ने मात्र कुछ युद्ध स्थितियों की ओर सकेत किया है। युद्ध की कुछ स्थितियाँ द्रष्टव्य है—

(१) उदयचंद सामतसी राय, सोर चढ्या दोइ षेले दाउ।
माहो माहे मडाणो क्रोध, वलीयो वीर कुमरी नी बोध ॥
(ढो० मा० चौ०, चौ० ६०)

(२) तेजसार जीतो सग्राम, समरसेन बांध्यो तिण ठांम।
राणी कीयो मूलगो रूप, समरसेन बिलखो थयो भूप ॥
(ते० रा० चौ०, चौ० ३२८)

(३) आवंतउ ईष्यउ असुर, हैकण ही हूंकार।
दल स्वामी पहु देवीयां, पाड्यउ तेण प्रकार ॥
(म० दु० सा०, छ० २०५)

(आ) करुण रस—कवि ने यथा-प्रसग करुण रस को भी अपने साहित्य में

स्थान दिया है। इसका स्थायी भाव शोक, भूमि पतन, क्रंदन, उच्छवास, प्रलाप आदि अनुभाव तथा निर्वेद, स्मृति, मोह, व्याधि आदि व्यभिचारी भाव हैं। माधवानल के कामावती से प्रवास के समय कामकदला का विलाप[३५], माधव और कामकंदला की मृत्यु पर विक्रमादित्य का पश्चाताप[३६], मारवणी की मृत्यु पर ढोला की उक्तियाँ, नगर के बाहर पद्मावती का रुदन तथा मदनमंजरी के सर्प-दश पर अगड़दत्त का विलाप आदि प्रसंगों मे करुण रस की व्याप्ति है। इनमे से कतिपय स्थल प्रस्तुत हैं—

(१) जीमइ नहीं सरस आहार, जां न मिलइ माधव भरतार।
विधवा वेसइ ते विरहणी, दुर्बल देह कीधी प्री भणी।।
(मा० का० कं० चौ०, चौ० ३६२)

(२) पनरह वरस वीछोहो कीयो, घणे कष्टि मेलावो थयो।
वली वीछोहो कीउ करतार, तो इणी भवे मुझ मारु नारी।।
(ढो० मा० चौ०, चौ० ६१६)

(३) नारी एक तेहनइ वारणैं रोवैं छैं अति दुख घणैं।
कुमरैं पूछी तेडो करी, कहउ वात मुझ हैतैं करी।।
(तै० रा० चौ०, चौ० १७७)

(४) सर्प डक दीधइ षडहड़ी, अगडदत्त नइ षोलइ पड़ी।
कुमर करइ तव हा हा-कार, है है देव हूउ निरधार।।
(अग० रास, चौ० २५१-५२)

(इ) भयानक रस—इस रस का स्थायी भाव भय है। इसके आलम्बन भयोत्पादक पदार्थ, उद्दीपन विभाव इन पदार्थों की भीषण चेष्टाएँ, कप, गदगद्, रोमांच अनुभाव तथा आवेग, त्रास, दीनता, शका आदि व्यभिचारी भाव हैं। इसका एक उदाहरण जिनपालित जिनरक्षित सधि गाथा से प्रस्तुत है—

"सीहणि नीयरि ऊससइ जी, करि जबकइ करवाल।
आवी पुरुषां ऊपरइ जी, रूप कीयउ विकराल।।
× × ×
वेइ बोलइ बीहता जी, सामिणी अम्ह साधारि।
कह्यउ तुम्हारउ कीजसी जी, अम्ह जीवतां उगारि।।"
(गा० २४, २६)

(ई) रौद्र रस—रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। इसके आलंबन शत्रु और उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव है। भ्रूभग, बाहु, स्फोटन, गर्जन-तर्जन, क्रूर दृष्टि आदि अनुभाव हैं तथा मोह, अमर्ष इसके व्यभिचारी भाव होते हैं। 'महामाई दुर्गा सातसी' में इस रस का प्रयोग हुआ है। एक दृश्य प्रस्तुत है, जिसमे देवी महिषासुर-मर्दन के लिए तत्पर है—

"कालिका हूअ ब्रह्म मंड कीधा, रोहिर भषण जोगणी रिधा।
गडगडइ सिंधु पूरति ग्राह, अरिही देव अरि दलण आह ॥
ढालीया देव गुण सयल ढीच, भेड गिद्ध भिडइ दांणवी मीच।
ऊससइ षसइ निहसइ अपार, धडहड़ सूर धगधगइ धार ॥
निहसीया निवड वाजानि त्रीठ, रिण माहि रूक वापरइ रीठ।"

(छं० ८९-९१)

(उ) **वीभत्स रस**—इसका स्थायी भाव जुगुप्सा है। आलम्बन विभाव घृणित-पदार्थ तथा सड़न, नोच-खसोट आदि उद्दीपन विभाव है। मुँह बनाना, थूकना, नाक दबाना आदि इसके अनुभाव और सचारी भाव आवेग, मोह, असूया आदि कहे गए हैं। कुशललाभ की कुछ कृतियों में इस रस का भी प्रयोग हुआ है। 'भीमसेन हसराज चौपई' में विकराल सिंह की गुफा में बिखरी हुई अस्थियों एव ककाल का दृश्य वीभत्स वातावरण को प्रदर्शित करता है, यथा—

"तिहां असिद्ध जीवा तणा मुनिष घणा मृत रूप।
भुइ दीसइ विभच्छ अति विरूई गंधि विरूप ॥" (छ० ४२४)

एक अन्य दृश्य 'तेजसार रास चौपई' से राक्षस के वीभत्स रूप का प्रस्तुत है—

"कालू वर्ण क्रूर विकराल, मुखि मूकइ वेश्वानर झाल।
पग प्रहार भुइ थरहरइ, कोप चढ्यउ मुखि कलकल करइ ॥" (चौ० २८)

वीभत्स का एक ऐसा ही दृश्य 'महामाई दुर्गा सातसी' से उद्धृत है, जिसमें गिद्ध मांस भक्षण कर रहे है और चौंसठ योगिनियाँ खप्पर भर-भर कर रक्त पान कर रही हैं—

गिरधू तणउ साथ गहगहीयउ, लंघण घणै घणै भष लहीयउ
× × ×
देव हुई तस दाणव टोली, हमची मचइ गेहरीया होली।
षाफर मडइ षेलइ षोली, रासइ रगत चउसठी टोली ॥"

(ऊ) **अद्भुत रस**—आलोच्य कवि की कृतियो मे अद्भुत रस के अनेक स्थल मिलते हैं। नायक को योगी, अदिव्य पात्रों द्वारा अथवा देवी-देवताओं द्वारा प्राप्त सिद्धियाँ,[37] मन्त्र-तन्त्र की विलक्षण करामातें,[38] वेताल[39] द्वारा अथवा विद्याधर[40] द्वारा मृत को पुनर्जीवित कर देना, जादुई विद्याओ द्वारा रूप-परिवर्तन,[41] अलौकिक रूप से पुत्र-प्राप्ति,[42] आकाश मार्ग से रूप-परिवर्तन कर उड़ना[43] आदि अनेक अद्भुत घटनाओं का सयोजन कुशललाभ ने बड़ी चतुराई के साथ किया है।

'भीमसेन हसराज चौपई' मे कहीं तो भीमसेन को देखकर सर्प चुपचाप यथा-स्थान चले जाते है और कही हसकुमार को उसका अश्व बीहड़वन मे उतारता है, जहां वह वन मे रहने वाले विकराल सिंह का दमन करता है—

"परवसइ कुमर अटवी षड्यउ पेषइ न दीय प्रसग रे।
एक वट वृक्ष मोटउ तिहां तस तलइ बहुउ तुरग रे ।। ४०५
कुमर ते शघ देखी करी हणउ बांण प्रहार रे।
श्वनइ कुमर बे ऊगार्‌या शघ नउ कीधउ सघार रे ।।" ४१५

(ए) **वात्सल्य रस**—पुत्र-विषयक रति ही वात्सल्य है। 'माधवानल कामकंदला चौपई' मे जब माधव पुनः पुष्पावती नगरी मे आता है तो सेना सहित आते हुए पिता के चरण-स्पर्श करता है। उसी समय माधव का पिता पुरोहित शकरदास अपने पुत्र को पहचानकर गद्‌गद् हो उठता है और उसका आलिगन करने लगता है—

"पुत्र उखख्यो प्रोहित जिसई, हरषई वूठा आसू तिसई।
आघो ले आलिगन दीयई, अति आणदई खोलई लियई ।।" चौ० ६४४

इसी भांति अटवी में जब तेजसार की माता व्यंतरी रूप मे उतरती है तो वह भी पुत्र-वात्सल्य से अभिभूत होकर उसकी 'भामण' लेती है, यथा—

"रे जाया नदन माहरा, हू भामण लेउं ताहरा।
आज सही मुझ सुर तरु फल्यो, तु मुझ पुत्र घणे दिनि मिल्यो ।। चौ० २६३

भीमसेन भी इसी पुत्र-विषयक रति के कारण अपने पुत्र हसराज को नीरव रात्रि मे नदी के तट पर जाने से रोकता है, जब वह कुछ विचित्र ध्वनि सुनकर पिता से आज्ञा मांगता है—

"राय कहइ रजनी अधार, भीम भयकर रन्न अपार।
पउढ़उ एम कही भूपाल, कुमर गुपत ऊठउ ततकाल ।।" ४४०

(ए) **हास्य रस**—कुशललाभ की केवल एक रचना 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' में इस रस का आभास मात्र होता है। जब स्थूलिभद्र योगी-रूप मे कोशा की चित्रशाली की ओर आता है तब उसकी सखियां हास्य की चुकटी लेती हुई कहती हैं—

"आवत देषी सषा पहिचान्यो, ए तो श्री थूलभद्र नरेस।
जीरण वसत्र मलीन तन हस्त कमडल लुछित केश।
हसि करी कहति सषीयनु अब तो नीको बन्यो तुम्हरो वेश ।।५

× × ×

नाइ ए गृही नहि ते योगी तापस नहिं नहिं सन्यासी।
आइसौ भेष कीयोहि कल भद्र कहत मोहि आवत हासी ।।" ६

इस प्रकार कवि कुशललाभ ने विभिन्न रसों को यथा-प्रसंग ग्रहण कर अपने काव्य को सरस एव सुष्ठु बनाया है।

प्रकृति एवं वस्तु-वर्णन

साहित्यकार को सतत् प्रेरणा देने वाली प्रकृति ही है। यही कारण है कि प्रत्येक

साहित्यकार की कृति में प्रकृति का कोई न कोई रूप निहित होता है। कुशललाभ के साहित्य मे भी प्रकृति की छटा कुछ स्थलों पर निखरी है। प्रायः कवि ने प्रकृति का उपयोग वातावरण-निर्माण के लिए ही किया है। इसीलिए सस्कृत, प्राकृत या अपभ्रंश के जैन कवियों अथवा वेलि क्रिसण रुकमणि री, महादेव-पार्वती री वेलि, सदयवत्स-प्रबन्ध, हसराज वछराज चौपई, पद्मनी चरित्र चौपई आदि कृतियों में चित्रित विस्तृत प्रकृति-वर्णनों का यहाँ प्रायः अभाव है।

कुशललाभ के साहित्य में प्रकृति-चित्रण के निम्नलिखित स्वरूप मिलते हैं—

१. आलबन रूप, २. उद्दीपन रूप, ३. रहस्यमय एव दार्शनिक रूप, ४. उपदेशात्मक रूप तथा ५. पृष्ठभूमि व वातावरण निर्माण के लिए प्रकृति-वर्णन।

(१) आलबन रूप में प्रकृति चित्रण

कवि-समाज आलबन रूप में प्रकृति का चित्रण दो रूपो मे करता है—(अ) वस्तु परिगणनात्मक और (ब) बिम्बात्मक। कवि की 'भीमसेन हसराज चौपई' मे सर्वत्र प्रकृति का परिगणनात्मक रूप ही परिलक्षित होता है। कवि ने कथा-पात्र हितसागर के मुख से 'नन्दनवन' मे लगे हुए वृक्षो, फलो एव मेवों का लगभग तीन पत्रो मे महत्त्व-वर्णन एव नाम परिगणन करवाया है। 'नन्दन वन' मे लगवाए गए वृक्षों का नाम कवि इस प्रकार गिनाता है—

> सुन्दर सरल वृक्ष जे सार, पहुचाडे यो इहा अपार।
> इणि परि तरुवर आव्या घणा, सोहइ ते वन सोहामणा।।२३
> सरस सदा भल नइ सहकार, अगर असोक अरजन अनार।
> धरणी केलि कपूर कदब, जाती फल जासू जल जब।।२४
> पार जाति पदम षय नाग, सूकडि सिमी सिद नइ साग।
> राइण रोहीडा रोहीस, वेडस छेत्र वरुण नइ वस।।२५
> श्रीफल सोपारी सुरसाल, तगर तिम रति दुक नइ ताल।
> नीबू नीम जानइ नारिंग, पीपल पारस पील प्रियग।।२६
> षयर फल हलाषीप षजूर, बकुल बिदा बीज ना पूर।
> मण्डप दाष तणा माहत, अवर वृक्ष नी जाति अनन्त।।२७

प्रकृति के इस परिगणनात्मक रूप के साथ ही कुछ स्थलों पर प्रकृति का बिम्बात्मक रूप भी चित्रित हुआ है, किन्तु इनमें संश्लिष्ठता एव परम्परा-मुक्तता का प्रायः अभाव ही है। कुशललाभ के साहित्य में इस रूप मे गर्मी, वर्षा एव शरद-ऋतुओ का उल्लेख हुआ है। इनमे सर्वाधिक एवं मनोरम चित्र वह वर्षा-ऋतु का ही खीच सका है। इसका प्रमुख कारण कवि का जैन धर्मावलम्बी होना है। वर्षा-ऋतु मे जैन-साधु चातुर्मास व्यतीत करते है, अतः इन माहो को वह वैराग्यमय मानत है। वर्षा-वर्णन की प्रमुखता का दूसरा कारण है कवि की जैसलमेर मे निवास होना, जहाँ लोग वर्षा के पानी के लिए तड़फते रहते है और आकाश में छोटे से बादल के टुकड़े के दिखाई देने पर भी

आशा की टकटकी लगाकर उसको देखते रहते हैं। सामान्य-सी वर्षा भी वहाँ के मृतप्रायः प्राणियों में जीवन का संचार करने वाली होती है और वह वहाँ का उत्सव और उमंग का दिन होता है जब यहाँ वर्षा होती है। स्थूलिभद्र छत्तीसी, तेजसार रास चौपई, पूज्य-वाहण गीत आदि रचनाओं में चित्रित वर्षा-वर्णन इसी के प्रमाण हैं। उनमें से एक स्थल उद्धृत किया जाता है—

> "अनुक्रमि आव्यउ पावस मास, मेघ घटा छायो आकास।
> सांझ समै वेला अंधार, घरि प्रदीप कीयो तिणवार॥
> तेल लेई आवै जिसै, सबल मेह आव्यउ तिहां तिसै।
> धाई पइठी देहुरा माँहि, मूल गंभारै घणै उछाहि॥
> तेल परवै दीवा तिगमगइ, नारि एकली रही नवि सके।
> वरसइ मेह अखडित धारि, जड़ी किमाड़ बैठी ते नारि॥"
>
> (ते० रा० चौ०, चौ० ३८४, ३८७, ३८८)

(२) उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण

कुशललाभ के साहित्य में अनेक स्थलों पर प्रकृति का प्रयोग उद्दीपक रूप में भी हुआ है। नायक-नायिकाओं के प्रेम-प्रसार में विशेषतः वर्षा-ऋतु उद्दीपन विभाव बनकर आई है। वर्षा-ऋतु के आते ही भीमसेन रमणार्थ नन्दनवन और भरे-पूरे ताल की ओर क्रीड़ा हेतु प्रस्थान करता है—

> "एहवइ आव्यो वर्षा काल, अंबरि अति गाजइ असराल।
> कुंजर राइ सबल सज करी, आंबाडया तस ऊपरि धरी॥
> सुन्दरि मदन मंजरी साथि, निर्भय थई बइठा नरनाथ।
> पहिला नदन वन पेषंति, सरवर तरि तल जल केलि करंति॥"
>
> (भी० हं० चौ०, चौ० २६४-२६५)

आषाढ़ मास में चारो ओर बिजलियाँ चमक रही हैं। प्रत्येक कोमलांगना अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में रत है, चातक मधुर स्वर में 'पिउ-पिउ' कर रहे हैं। ऐसी ही सघन वर्षा ऋतु में महान् यति श्री पूज्य जी श्रावकों के हितार्थ त्रंबावती में दीक्षा रूप रमणियो के साथ क्रीड़ा करने के लिए सवेग सुधा रस रूपी नीर से भरे सरोवरो में पंच महाव्रत रूपी मित्रो द्वारा प्रेरित होकर वैराग्य के उत्तग हिल्लोरों में उपशम पालते हुए सुमति रूपी श्रेष्ठ नारी के सयोग का सौभाग्य वरण करने के लिए आ एकत्र हुए—

> आव्यो मास असाढ़ झबूके दामिनी रे
> जोवइ जोवइ प्रीयड़ा वाट सकोमल कामिनी रे
> चातक मधुरइ सादिकि प्रीउ-प्रीउ उचरइ रे
> वरसइ घण बरसात सजल सरवर भरइ रे॥
> इण अवसरि श्री पूज्य महा मोटा जती रे
> श्रावक ना सुख हेत आया तंबावती रे॥

जोवउ २ अम गुरु रीति प्रतीति वधइ वली रे।
दिक्षा रमणी साथ रमइ मन नी रली रे।।
संवेग सुधा रस नीर सबल सरवर भर्या रे।
पंच महाव्रत मित्र संजोगइ सचर्या रे।।
उपशम पालि उतंग तरंग वैराग नारे।
सुमति गुप्ति वर नारि संजोग सौभाग्य नारे।।
(पू० वा० गी०, गा० ६१-६३)

(३) रहस्यमय एवं दार्शनिक रूप में प्रकृति चित्रण

प्रकृति में अज्ञात की अनुभूति ही रहस्यवाद है। यह 'अज्ञात' ईश्वर तुल्य है। कार्लाइल के अनुसार प्रकृति ज्ञानी को तो इसके दर्शन कराती है, पर मूर्ख से उसे छिपाती है।[४४] कुशललाभ के काव्य में प्रकृति का इस रूप मे चित्रण एक दो स्थलों पर ही हुआ है। विशेषतः उन स्थलों पर जहाँ वह भक्ति की ओर उन्मुख हुआ है, अथवा अनायास ही वर्णन करते-करते उसके मुख से कोई उक्ति निकल पड़ी है।

'पूज्यवाहण गीत' में श्री पूज्य जी का स्मरण करते हुए कवि का दार्शनिक मन इस रहस्यमयी सत्ता के अस्तित्व का इस प्रकार वर्णन करता है—

सूयगडांग सूत्रे कह्या, वीर स्तव अधिकार।
भव समुद्र तारण तरण, वाहण जिम विस्तार।।१०
आ भव सागर सारिखुं, सुख दुख अन्त न पार।
सदगुरु वाहण नी परइ, उतारइ भव पार।।११

इसी भाँति 'माधवानल कामकंदला चौपई' मे भी कवि उस अज्ञात परम सत्ता का चारो ओर आभास पाता हुआ कहता है—

लाली मेरे लाल की, जित देखु तित लाल
लालन देखन मैं चली, मैं भी भई गुलाल।।२०९

(४) उपदेशात्मक रूप में प्रकृति चित्रण

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के अनेक काव्य संग्रहों में प्रकृति को गुरु रूप में मानते हुए कवियों ने उसके कार्य-कलापों का आचरण अपने नायकों द्वारा करवाया है। इस परम्परा से कुशललाभ भी अछूता नहीं रह सका है। प्रकृति के उपदेशात्मक रूप को कवि ने विशेषतः 'माधवानल कामकंदला चौपई' में ग्रहण किया है। इन्द्र ने जेठ मास की तपती धूप के माध्यम से स्त्री की नैतिकता के विषय में जयन्ती को इस प्रकार समझाया है—

"न भली जेठ मास नी लाई, न भली जे स्त्री पर घर जाई।
न भलउ अतेउर पइसार, न भलउ बिहुं तणो भरतार।।"६२

ऐसा ही एक अन्य उपदेश कवि ने वृक्षों और पक्षियो के सांध्यकालीन संयोग के माध्यम से माधव को उपदेशात्मक उपालम्भ मे दिया है। कवि का कथन है कि मनुष्य से तो भले पक्षी ही हैं, जो सध्या होते ही अपने-अपने वृक्षों के पास पुनः आ जाते हैं—

"माणस थी पखी भला, अलगा चूणे चूणति।
तरवर भमि संझा समइ, मालइ आवी मिलंति।।"४२५

(५) पृष्ठभूमि एवं वातावरण निर्माण के लिए प्रकृति चित्रण

कवि ने अनुकूल वातावरण एव भावानुकूल पृष्ठभूमि के निर्माण के लिए भी अपने साहित्य मे प्रकृति को स्थान दिया है। विभिन्न नगरों, मदिरों, सरोवरों, वनो आदि दृश्यो के चित्रण का यही उद्देश्य रहा है। ऐसे प्रकृति चित्रणों द्वारा कथानक को विस्तार एव चारुता मिली है। ढोला के आगमन से पूर्व मारवणी अपनी सखियो के साथ कुए पर रमणार्थ जाती है। उसी समय उसका दाया नेत्र स्फुरित होता है और सयोगवश तुरन्त ढोला का करहा कूकता है, यथा—

मारू तणी दीन हरष अपार, साथे सषी तणो परीवार
सभी साझि की वेला थई, कुआ कठे रमवा गई।।
डावो नेत्र फरुके जीसे, सहीअर आगे कही ने हसे।
मन सतोष ने चीत उल्हसे, आज सषी मेलो हो असे।।
तीण वेला आणीउ उल्हास, ढोलो आयो पूगल पास।
माले बेठो हाली रहे, तिण थल हेढल ढोलो वहे।।
(ढो० मा० चौ०, चौ० ५२०-५२२)

ऐसा ही अन्य दृश्य-विधान 'माधवानल कामकदला चोपई' मे द्रष्टव्य है, जहाँ कवि ने स्वर्गलोक मे देवराज इन्द्र की नृत्य सभा का चित्र प्रस्तुत किया है—

"एक दिवस मन धरि आणद, इन्द्र सभा बइठउ छइ इन्द्र।
अपछर नइ दीधउ आदेस, रचउ आज नाटक नऊ वेस।।१२
सभलि वचन सज्या सिणगार, वाजई पंच सबद तिणवार।
जोवइ सुरपति धरी जगीस, मांड्यउ नाटक बद्ध बत्रीस।।१३

'माधवानल कामकदला चौपई' मे कथा को मोड़ देने के लिए कुशललाभ ने उज्जैनी का वर्णन किया है[४५]—इसी उद्देश्य से वाराणसी का वर्णन 'तेजसार रास चौपई' मे द्रष्टव्य है—

"निरुपम नगरी वणारसी, जोतां इन्द्रपुरी हुवइ जिसी।
वीर सेण राजा तिहां धणी, हय गय राज रिधि जस घणी।।५
पटराणी तस पद्मावती, रूपर रूडी सीताइ सती।
भूपति दीपइ अधिक उमान, अन्य दिवस तस थयउ आधान।।६

देवी हिंगुलाज के देवरे का वर्णन कवि इन शब्दों में करता हुआ मदनमंजरी के

विवाह का वातावरण निर्मित करता है, यथा—

> गई राति बि घड़ी जेह वह, त्रिपुरा मठि आव्य तिहवइ।
> मडप गउष मनोहर ठांम, पइसी भूपति करू प्रणाम ॥१४१
> जय जय माता जगदीस्वरी, भेटी भावइ भवनेश्वरी।
> हुं छु तुम्ह सेवक हींगलाज, कृपा करी मुझ सारो काज ॥१४२
> × × ×
> गलइ पास ते घालइ जांम, तिसइ घावि पणि जागी तांम।
> पेषा नांही कुमरो पासि, उच्छक वाई घाव बिमासि ॥१७०
>
> (भी० ह० चौ०)

वातावरण को और अधिक भावानुकूल बनाने के लिए कवि ने आंचलिक रीति-रिवाजो, राग-रंग, रहन-सहन आदि का भी वर्णन किया है, जिन्होने कथाओ को अत्यन्त मार्मिक-सौष्ठव प्रदान किया है।

इस प्रकार आलोच्य कवि ने अपने साहित्य मे प्रकृति को भी स्थान-स्थान पर महत्व दिया है। कुशललाभ के प्रकृति चित्रण एवं दृश्य-विधान की यही विशेषता रही है कि यह अधिक विस्तृत एव अनर्गल की अपेक्षा यथा-प्रसग एवं भावानुकूल ही हुआ है। जहाँ कवि को प्रकृति चित्रण करने की आवश्यकता थी, वही अपने कौशल एव सामर्थ्य से उसे गृहीत किया है।

खण्ड (ख) कलापक्ष

काव्य मे भावपक्ष एव कलापक्ष का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध अपेक्षित है। कलापक्ष से तात्पर्य काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष से है। इसके अन्तर्गत काव्य में प्रयुक्त भाषा, शैली, छन्द, कथानक रूढ़ियाँ आदि का अध्ययन किया जाता है। काव्य की अनुभूति इन्हीं साधनों पर अवलम्बित है। अतः आवश्यक है कि किसी भी काव्य का कलापक्ष अथवा अभिव्यक्ति पक्ष सहज सप्रेषणीय हो।

कुशललाभ ने अपने साहित्य के अनुभूति (भाव) पक्ष के अनुरूप ही अनुभूति के उपादानों को ग्रहण किया है। यहाँ इन्ही उपादानों (भाषा के अतिरिक्त) का अध्ययन किया जा रहा है। कुशललाभ के साहित्य की भाषा का अध्ययन अगले अध्याय मे विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया जाएगा।

(य) शैली

साहित्य में प्रचलित परम्परा की दृष्टि से राजस्थानी साहित्य (डिंगल-साहित्य) की तीन शैलियाँ बताई गई हैं—चारणी शैली, लौकिक शैली और जैन शैली। कुशललाभ के साहित्य मे यो तो इन तीनो ही शैलियों का उपयोग किया गया है, किन्तु प्रधानता लौकिक शैली की ही है। महामाई दुर्गा सातसी एव जगदम्बा छन्द अथवा भवानी छन्द कवि की चारणी-शैली मे रचित कृतियाँ हैं। शेष रचनाएँ लौकिक एव जैन-शैली की

मिली-जुली सम्पत्ति है।

परम्परा के अतिरिक्त शैली का अध्ययन कथन एवं रीति की दृष्टि से भी सम्भव है। कथन की दृष्टि से कुशललाभ ने उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष—तीनों ही शैलियों का प्रयोग किया है, किन्तु प्रधानता अन्य पुरुष शैली की ही है। इसीलिए कवि के साहित्य में वर्णनात्मकता की बहुलता है। रीति के आधार पर अध्ययन से पता चलता है कि कवि ने यत्र-तत्र तीनों ही रीतियों (वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली) का प्रयोग किया है। इन प्रयुक्त शैलियों के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(अ) उत्तम पुरुष शैली

(१) हूं कुप्रलाणी कत विण, जूं जल विहूणी वेलि।
वणिजारा की माहि जूं, गयो धुकति मेल्हि॥
(मा० का० क० चौ०, दू० ४३४)

(२) हम बालपण ने प्रेम जब कीनउ सुर नर सीषि दीन्न किरतार॥
(स्थू० भ० छ०, छं० २४)

(आ) मध्यम पुरुष शैली

(१) ढोला मां का बाध के करहा हुंदो वग्ग।
जब करहो षोडो हुई, गादह दीजे डम॥
(ढो० मा० चौ०, दू० ४२०)

(२) तूं मुझ जीव दया दातार, तइ कीधऊ मोटो उपगार।
हिवैं तूं माहरै बंधव होई, हूं तूठउ घूं विद्या दोइ॥
(ते० रा० चौ०, चौ० ६३)

(इ) अन्य पुरुष शैली

(१) आवंतउ ईष्यउ असुर, हेकण ही हूंकार।
दल स्वामी पहु देवीयां, पाड्यउ तेण प्रकार॥
धरणिक पड़ी देषइ असुर, कटक कूंत कंकोल।
केसर अनदून कालिका, हुलकाड्या हींगोल॥
(म० दु० सा०, छ० २०५-२०६)

(२) शाह वछा शाह पदमसी, देवजी नैं जेत शाह।
श्रावक हरषा हीरजी, भाणजी अधिकउ उछाह॥
(पू० बा० गी०, छं० ५६)

(ई) वैदर्भी-रीति

(१) सुख सेजई माधव संचरइ, चुंबन दे आलिंगन करई।
प्रेम दिखाली कत मन हरइ, कामकंदला इमउच्चरई॥
(मा० का० कं० चौ०, चौ० २४०)

(२) दिया लष्य सोवन दीनार, सासू मनि संतोष अपार।
इण अवसरइ मदन मंजरी, प्रीय सूं बोली प्रीतइ करी ॥
(भी० हं० चौ०, चौ० ३४२)

(उ) गौड़ी रीति

(१) धूम निधूम त्रिधूम दुरत जुघ राख दुबारे।
सेनापति संपेख करै आकंप करारे ॥
माया रचि मातंग जोध दुव साथ बुलायं।
हेका हेकी हणू जोध बिवजांणे आयं ॥
विन्है अद्रि वांणां विहुंड रज रज रिण घट रोलिया।
बडि महाकवि जोध वद विहुंवा भीच विरोलिया ॥
(पिं० शि०, पृ० ८३)

(ऊ) पांचाली रीति

(१) आंषडियां डंबर भया, नयण गमाइ रोई।
ते साजण परदेसड़ै, रह्या विडाणी होई ॥
(मा० का० कं० चौ०, दू० ४४२)

(२) एहवइ आव्यो वर्षा काल, अंबरि अति गाजइ असराल।
कुंजर राइ सबल सज करी, आबाड्या तस ऊपरि धरी ॥
(भी० हु० चौ०, चौ० २६४)

इन शास्त्रीय शैलियों के अतिरिक्त निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग भी कुशललाभ की विभिन्न रचनाओं में मिलता है—

१. प्ररूढ़ि शैली—कुशललाभ शास्त्रीय कवि की अपेक्षा जनकवि अधिक है—यह उसकी रचनाओं की भाषा एवं विषय-वस्तु से स्पष्ट है। लौकिकता के स्पर्श से ही जन-समाज मे प्रचलित अनेक प्ररूढ़ियो को कवि ने अपनी रचनाओं में प्रयुक्त किया है। कवि द्वारा प्रयुक्त कुछ प्ररूढ़ियाँ द्रष्टव्य हैं—

(क) स्वप्न प्ररूढ़ि

(अ) अेक रात्रि प्रोहित दु:ख धरी, सुतउ सुहिणऊ देख्यउ हरी।
सभल प्रोहित सकरदास, हूं तुठउ तुज पूरू आस ॥
(मा० का० कं० चौ०, चौ० ५०)

(आ) निशि भर सूती महुल मझारि, सुपनांतर पेषइ ते नारि।
घृत पूर्यउ दीवउ परजलइ, झाझइ तेज अधिक झलहलइ ॥
(ते० रा० चौ०, चौ० ७)

(ख) शुक प्ररूढ़ि

(अ) पुंगल पंथे ढोलो वहे, सूडा ने मालवणी कहे।
जिम तिम करे नइ पाछो वाल, पषी ए पडिवनो पाल् ॥
(ढो० मा० चौ०, चौ० ४४७)

(आ) कुमरी दिन प्रति रोदन करइ, आवी सुक आगलिऊचरई।
भीमसेन आणउ भूपाल, जिम मुझ फलइ मनोरथ माल ।।
(भी० हं० चौ०, चौ० १००)

(ग) योगी-योगिनी प्ररूढ़ि

तिण वेला कोई ज्योगंद्र, आयो तिहां करतो आणंद।
मंत्र-जत्र जांणे अति घणा, उषध पन्नग पीवणां तणा ।।
तिण साथे सुंदर जोगणी, जांणे या जोगण मारूवणी।
(ढो० मा० चौ०, चौ० ६२२-६२३)

२. संदेश-पद्धति—माधवानल कामकदला चौपई, ढोला मारवणी चौपई और भीमसेन हंसराज चौपई ग्रन्थों से यह स्पष्ट होता है कि आलोच्य कवि ने 'संदेश रासक' की सदेश-प्रेषण शैली को भी ग्रहण किया है। माधवानल कामकदला चौपई मे ६ माह उज्जैन मे रहने के बाद विरह-विदग्ध माधव कदला के पास एक पथिक के हाथों पत्र भिजवाता है—

माधव ने तिण नगर में रहितां हुआ षट मास।
जिण विध प्रीया नै पाठवै, सदेसा सुविसाल ।।३८०
एक दिवस तिण नगर अवसरइ, दीठो पंथी एक ।।३८१
हरख्यो माधव संभलि वात, कागल मूंकिसूं इण सघात।
वेश्या कामकदला भणी माहि लिखि वात मन तणी ।।३८४

माधव के पत्र का उत्तर पुन. कामकंदला ने इस प्रकार भेजा है—

कामकदला मोकलई, सदेसो सु हत्थ
उजेणी नगरी भणी, धन-धन मालवदेस ।।४१७
समरता साजण तणे, गुणे न आवै पार,
मिलउ तबहीं होइस (इ), जब करस्यइ करतार ।।दूहा ४२२

'ढोला मारवणी चौपई' में प्रिय-वियोग मे मारवणी ने जहां अपनी विरह-वेदना को क्रौंच पक्षियो द्वारा ढोला तक पहुँचाने का प्रयास किया है, वही मालवणी ने चेतना आते ही परदेस जाते हुए ढोला को मार्ग के मध्य से ही जैसे-तैसे लौटा लाने निमित्त सूए (तोते) को भिजवाया है—

पुगल पथे ढोलो वहे, सूडा ने मालवणी कहे।
जीम-तिम करे नइं पाछो वाल, पषी ऐ पडीवनोपाल ।। चौ० ४४७

इसी भाँति मदनमजरी ने भी अपना प्रणय-प्रस्ताव का सदेश तोते के साथ राजा भीमसेन के पास भिजवाया है—

कुमरी दिन प्रति रोदन करइ, आवी सुक आगलि ऊचरइ।
भीमसेन आणउ भूपाल जिम मुझ फलइ मनोरथ माल ।।
(भी० हं० चौ०, चौ० १००)

३. दृष्टान्त शैली—कवि ने 'माधवानल कामकंदला चौपई' और 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' मे इस शैली का सर्वाधिक प्रयोग किया है। प्रेम की सात्विकता एवं प्रगाढ़ता के निरूपण के लिए कवि ने अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत किए हैं। माधवानल कामकदला चोपई[४६] और स्थूलिभद्र छत्तीसी[४७] में ऐसे अनेक स्थल देखे जा सकते हैं।

४. सूक्ति-पद—लोक-कवियों की भाँति ही कुशललाभ ने भी कथन की पुष्टि के लिए अनेक सूक्तियों को ग्रहण किया है। अनेक स्थलों पर कवि ने इस कार्य के लिए प्राकृत की गाथाओं को ज्यों का त्यों निरुपित कर दिया है। इस शैली का कवि ने 'ढोला मारवणी चोपई' और 'माधवानल कामकंदला चौपई' में प्रयोग किया है। 'माधवानल कामकंदला चोपई' से इस शैली का रूप प्रस्तुत हैं—

जिम सालूरां सरपरां, जिम धरती में मेह।
चंपा वरणी वालहा, इम पालीजै नेह॥ दू० ४४६
जह सरइ सुरहिवच्छो, वसंत मास च कोहला सरइ।
विन्झ सरइ रायदो, तह अम्ह मणं तुमं सरइ॥ गा० ४४६

५. प्रहेलिका अथवा दृष्टकूट शैली—माधवानल कामकंदला चौपई और 'पिंगलशिरोमणि' मे कवि ने कूट शैली का प्रयोग किया है। इस शैली के अनुसार अर्थ वक्रता से लिया जाता है। माधव और कंदला की प्रहेलिकाएँ इसी शैली में हैं। 'पिंगल शिरोमणि' में भी अनेक छदो के लक्षण इसी शैली में वर्णित हैं। एक-एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

अजांसु रिपु भोइणां, कठ कहि जयो विदेस।
बिमणा हुया कि चउगणा, हु तु झुरू इण देस॥३२५
(मा० का० क० चो०, दू० ३२५)

सूर वेद अग करि लहू, गुण गुर माहे गाई।
चद्रवेद अका चवां, वसु इम छद वणाइ॥ (पिं० शि०, पृ० ६७)

६. संवाद शैली—अनुभूति की सबल अभिव्यक्ति के लिए कवि ने सवाद शैली को भी ग्रहण किया है। 'माधवानल कामकदला चौपई' में इन्द्र और जयन्ती के, माधव और कामकदला, कामकवला और उसकी माता के सवाद, 'ढोला मारवणी चौपई' मे पिंगल और खवास, ऊमादेवड़ी और सामंतसिंह, ढोला और मारू, ढोला और मालवणी, मारवणी और उसकी सखियों, ढोला और ऊँट, योगी और ढोला के सवाद, 'तेजसार रास चौपई' मे योगी और तेजसार, राक्षस और तेजसार, व्यतरी और तेजसार, तेजसार और उसकी माता के संवाद, 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' में स्थूलिभद्र और कोशा का संवाद, 'भीमसेन हंसराज चौपई' में योगी और मदनमंजरी के पिता, सूआ और भीमसेन, सूआ और मदन-मंजरी, मदनमंजरी और उसके माता-पिता, मदनमंजरी और भीमसेन, हस-हंसी के संवाद, 'महामाई दुर्गा सातसी' में देवी-महिषासुर सवाद, देवताओं और देवी का सवाद, शुंभ-सुग्रीव सवाद, सुग्रीव देवी सवाद, चण्ड-मुण्ड-देवी सवाद, चण्ड-मुण्ड-शुभ संवाद, रक्तबीज-देवी सवाद, शुंभ-निशुभ-देवी संवाद तथा 'जिनपालित जिनरक्षित संधि गाथा'

में जिनपालित जिनरक्षित देवी संवाद, शैलग-देवी संवाद इस शैली के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

८. **उपालम्भ शैली**—प्रिय के प्रेम शैथिल्य पर प्रेमी के उपालम्भ ही उसे अपने प्रेम की सुध दिलाने में समर्थ हो सकते हैं। इसी अभिप्राय: से कवि समाज इस शैली का भी अपने साहित्य में उपयोग करते हैं। कुशललाभ ने भी माधवानल कामकंदला चौपई, ढोला मारू चौपई और स्थूलिभद्र छत्तीसी में इस शैली को प्रयुक्त किया है। कुशललाभ के दो-एक उपालम्भ द्रष्टव्य हैं—

माणस थी पंखी भला, अलगा चूण चूणंति।
तरवर भमि संझा समइ, भालइ, आवी मिलंति ॥
सज्जन थी विसहर भलो, डंकी जीवज जेह।
नेह वहाई दूरई रहई, पग-पग सलइ सनेह ॥

(मा० का० कं० चौ० दू० ४२५, ४३७)

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि कुशललाभ ने मूलत: लौकिक शैली मे ही अपने काव्य का सृजन किया, किन्तु उसे विषय और जन-मानस के अनुकूल बनाने के लिए उक्त सभी शैलियों को यथा-प्रसंग प्रयुक्त किया है।

(र) अलंकार

अलकार वाली के आभूषण है, जिनके द्वारा अभिव्यक्ति मे स्पष्टता, भावों में प्रभविष्णुता और प्रेषणीयता तथा भाषा में सौन्दर्य का सपादन होता है। काव्य में अलकारों का यही महत्त्व है। भाषा के आधार पर अलंकारों के दो भेद सभव है—शब्दालकार और अर्थालंकार। कुशललाभ ने इन दोनों ही प्रकार के अलकारों को अपने साहित्य मे स्थान दिया है। इन अलकारो की यही विशेषता है कि कवि ने इन्हे प्रयत्न-साध्य रूप में ग्रहण नही किया है, अपितु वे सहज ही आ गए है। कुशललाभ के साहित्य मे प्रयुक्त प्रमुख अलकारो का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

१. शब्दालंकार

जब चमत्कार (काव्यत्व) शब्द मे निहित हो, वहाँ शब्दालकार होते हैं। इस दृष्टि से कुशललाभ ने निम्नलिखित शब्दालकारों का प्रयोग अपने साहित्य मे किया है—

(अ) वयण सगाई—यह राजस्थानी का मौलिक शब्दालकार है। यद्यपि इसे अनुप्रास के निकट माना जा सकता है, किन्तु उसका उपभेद मानना सर्वथा अनुचित होगा। वस्तुत: राजस्थानी-काव्यशास्त्र में इसके निश्चित नियम हैं। इन्ही नियमों का यह परिणाम हुआ कि मध्यकालीन सम्पूर्ण राजस्थानी साहित्य मे इस अलकार का प्रयोग कवियो ने बड़ी कठोरता के साथ किया। किन्तु ऐसा कहीं उल्लेख नहीं मिलता कि इस अलकार से रहित कविता काव्य कहलाये ही नहीं।

वयण (वैण) सगाई दो शब्दों के योग से बना पद है। वयण अथवा वैण का अर्थ

है 'वर्ण' तथा सगाई का अर्थ है 'सम्बन्ध' अर्थात् वर्णों का सम्बन्ध ही वयण सगाई है। प्रो० नरोत्तमदास स्वामी के अनुसार वयण सगाई मे सामान्यत: कविता के किसी चरण के प्रथम शब्द का प्रथम अक्षर उसी चरण के अन्तिम शब्द के प्रथम अक्षर से मिलता है। इस प्रकार वे वयण सगाई धारण की विधि को बताते हुए उसके निम्नलिखित तीन भेद करते हैं—

१. आदि मेल् या अधिक, २. मध्य मेल् या सम और ३. अन्त मेल् या न्यून।[४८]

वयण सगाई के ये तीनों प्रचलित रूप कुशललाभ के साहित्य मे भी वर्तमान हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

१. आदि मेल् या अधिक वयण सगाई

(अ) पिंगल बहु देखे प्रगट, सकल सिरोमणि सार।
पल पल नित प्रति पेषि है, पूरण मारग पार॥ (पिं० शि०)

(आ) आडा रषवाला आपणा, घणे गमे बेसाड्या घणा।
(ढो० मा० चौ०, चौ० ६८)

(इ) परि ब्रह्मा तिण पूछीयउ, परमेसरी प्रकार।
कहत कुसल तिण परि कहीस ब्रह्माणी बिस्तार॥ (म० दु० सा०)

२. मध्य मेल् या सम वयण सगाई

(अ) सरसति वदन कमल तसु वसई। (मा० का० क० चौ०, चौ० ६४)

(आ) रायइ दीठो तेह सरूप। (भी० हं० चौ०, चौ० ६७)

३. अन्तमेल् या न्यून वयण सगाई

(अ) सहु वात सुणी षवास। (ढो० मा० चौ०, चौ० २३४)

(आ) सोवन मइं सुंदर आवास। (ते० रा० चौ०, चौ० ३१७)

(इ) तिसइ एक आव्यो अवधूत। (भी० ह० चौ०, चौ० ६६)

(आ) अनुप्रास—'अनुप्रास' अलकार के निम्नलिखित भेद कवि की रचनाओं में प्रयुक्त हुए हैं, जो उदाहरण सहित प्रस्तुत किए जाते हैं—

छेकानुप्रास

(अ) कमलपत्र ले पांणी भरयउ।
लेई नारीसंमुख संचरयउ॥ (ते० रा० चौ०, चौ० १८)

(आ) हरसिद्ध देवी जु त्रिसूल हदी। (म० दु० सा०)

वृत्यनुप्रास

(अ) मन मिलिया मनि ताड़ीया, मनि मझे मीलीयांह।
(ढो० मा० चौ०, चौ० ५७७)

(आ) जामण मरण जराजम जीता।
जुडीया जोध तिता सहू जीता॥ (म० दु० सा०, छ० ८१)

अन्त्यानुप्रास

(अ) गीत विनोद विलास रस, पंडित दीह लिखंति।
कइ निद्रा कइ कलह करी, मूरित दीह गमंति ॥
(मा० का० कं० चौ०, दू० २५४)

(आ) गाहा गूढा गीत गुण, कवि कथा कीलोल।
चतुर तणा चित रजवण, कहीइ कवि कलोल ॥
(ढो० मा० चौ०, दू० ४)

लाटानुप्रास

जलसुत तास सुत, सुत सू वल्लही म मडि।
(मा० का० कं० चौ०, दू० ३११)

(इ) यमक

सारग सुत वाहण घरणी, आसण असण न अगि।
सारग सबद महलिया, पाडोसणि सुरगि ॥
(मा० का० कं० चौ०, चौ० ३०६)

२. अर्थालंकार

जब काव्यत्व अर्थ मे निहित हो, वहाँ अर्थालकार होते हैं। कुशललाभ के साहित्य में निम्नलिखित अर्थालंकारों का प्रयोग हुआ है—

(क) उत्प्रेक्षा

(अ) चंपक वयण सकोमल अंगि, मस्तक वेणी जाणि भुयंग।
(मा० का० कं० चौ०, चौ० १८८)

(आ) जंघ सुपत्तल करि कुअंली, क्षीणी लांब प्रलंब।
ढोला एहवी मारूई, जाणे कणयर कंब ॥ (ढो० मा० चौ०, दू० ४८७)

(इ) अबला नउ छइ रूप असंभ, कोमल वाणी अमृत कुंभ।
(भी० हं० चौ०, चौ० १३५)

(ख) उपमा

कुशललाभ के काव्य में इसके निम्नलिखित भेद मिलते हैं—

(अ) वाचक धर्म लुप्तोपमा

चद वदनी चंपक वर्णी, अहर अलता रंग।
षजर नयणी षीण कटि, चंदन परिमल अंग ॥ (ढो० मा० चौ०, दू० ३६)

यहाँ इन सभी उपमानों का वाचक धर्म लुप्त है। ऐसा ही एक अन्य उदाहरण और प्रस्तुत है—

'सुंदरि सहज गतइ सुकमाल, मानसरोवर जेम मराल।'
(भी० हं० चौ०, चौ० १३२)

(आ) पूर्णोपमा

लघु केसरि जेह वीकडि लक। (भी० हं० चौ०, चौ० १३३)

(ग) रूपक

कुशललाभ के काव्य में रूपक अलंकार प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त है। इसके निम्न-लिखित भेद विभिन्न रचनाओं में द्रष्टव्य हैं—

(य) सांग रूपक

भावसायर समुद्र समान, राग द्वेष विनेऊघाण।
ममता तृष्णा जलपूर, मिथ्यात मगर अतिक्रूर॥
मोजा ऊँचा अभिमान, विषयादिक वायु समान।
ससार समुद्र मंझारि, जीव भम्या अनंत वारि।
(पू० वा० गी०, छ० १२, १३)

(र) अभेद रूपक

(अ) अम्ह चंपा किम तुट्टही, तुम्ह भमरां के भार।
(मा० का० क० चौ०, दू० २४१)

(आ) च्यता डायण जिहां नरां, तिहांई दिठ अगन माय।
जों धीरउ धीरपणे धरे, तसु भीतर पेसें खाइ॥
(ढो० मा० चौ०, दू० ३४४)

(ल) निरंग रूपक

सषी ए ऊगट मांजणा, षीजमत करें अनंत।
मारवणी मंदिर महले, कामणि मिलियो कंत॥ (ढो० मा० चौ०, दू० ४४८)

(घ) प्रतीप

(अ) गयवर वेगि हरावइ वेगि। (मा० का० कं० चौ०, चौ० १८८)
(आ) कटि लकि जीतउ केसरि। (भी० हं० चौ०, चौ० ५०३)

(ङ) तुल्ययोगिता

(अ) नारी वेश्या तंति जल, सर पत्थर केकाण।
जे साते ही अंधला, फेरणहार सुजाण॥
(मा० का० कं० चौ०, दू० ५२०)

(आ) डूंगरीआ हरीआ हुआ, बने अयंगारे मोर।
इणी रुति तीने संचरे, जाचक चकर ने चोर॥
(ढो० मा० चौ०, दू० ३८०)

(च) तद्‌गुण

अहर रंग रत्तो हुओ, मुखि कज्जल मसि वन्न।
जाण्यो गुंजाहल अछइ, तिण न ढूंकई मन्न॥
(मा० का० कं० चौ०, दू० २७६)

(छ) मीलित

मन मिलिया मनि ताड़िया, मनि मझे मीलियांह।
सजुजण पांणी षीर जिम, षीरे षीर थयाह॥
(ढो० मा० चौ०, चौ० ५७७)

(ज) विरोधाभास

पँहिली हुई दयामणो, रवि आथम तें जोइं।
रवि उगता विकसै कमल, षीणेक बीवणो होय॥
(ढो० मा० चौ०, चौ० ५७२)

(झ) असंगति

ढोला मां का अप्प के करहा हुंदो वग्ग।
जब करहो षोड़ो हुई, गादह दीजे डंभ॥ (वही, दू० ४२०)

(ञ) काव्यलिंग

(अ) सीहणी प्रसवइ एक सुत, हेला हणइ गयंद।
सूरति दीसइ अति सकल, मुष अमृत मइ बिंद॥
(भी० हं० चौ०, दू० ३७७)

(आ) माणस योहि माछिलां, साचा नेह सुजाण।
जू जल थी कीजइ जुआं, निश्चिइं छंडइ प्राण॥
(मा० का० कं० चौ०, दू० ३६७)

(त) अत्युक्ति

लिखिवा वइसुं जाण, कागल मसि लेई करी।
हीयड़ो भमरामइ ताम, नयणे नीझरणा वहै॥
(मा० का० कं० चौ०, दू० ४२८)

(थ) विभावना

विरह वियापी रयण भरि, प्रीतम विन तन खीण।
ससिहर रथ मृग मोहीयो, तिण हसि मूंकी वीण॥ (वही, दू० २७८)

(द) अनुमान

प्रीतम पोढ़यो महल मझारि, पुहप करंउ पठावई नारि।
ऊपरि संकर पन्नग राजि, चंपक लिखीयो कहो कुण काजि॥
(मा० का० कं० चौ०, चौ० २८२)

(ध) सम्भावना

आउ तन जारा मसी करां, धूया जाई संरग्गि।
मत प्री वादल हो इर्के, विरह बुझावई अग्गि॥ (वही, दू० ३५२)

(न) उदाहरण

(अ) प्रसुणा खिल्यो मत करो, मनह न वीसारेस।
कूंझी लाल बचांह जुं, षिण षिण चीतारेस॥
(ढो० मा० चौ०, दू० २७६)

(आ) जिम सालूसं सरवरां, जिम धरती में मेह।
चंपा वरणी वालहा, इम पालीजै नेह॥
(मा० का० कं० चौ०, दू० ४४६)

(ट) स्मरण

कुच विच भमरो आव्यो जिसइ, माधव मन माहे चींतई इसुं।
इंद्र लोक हुं भमरो कीयो, अपछर विहुं कुच विचि राखीयो॥
(मा० का० कं० चौ०, चौ० १६७)

(ठ) अन्योक्ति

(अ) भरी पलटी भी भरी, भी भरि सीप भरेह।
पंथि हाथ संदेसड़ो, धन बीलपंति देह॥
(दो० मा० चौ०, दू० २८३)

(आ) रे हीयड़ा संतोष करि, जिम आरण कल्लोण।
हाथी वसतावींझवन, तिहांई पड़्यो विछोह॥
(मा० का० कं० चौ०, दू० ५५५)

(ड) अप्रस्तुत प्रशंसा

ऊपरि संकट पीटीई तलइ बलइ अंगीठ।
अति रंगीई जु वणसीई, इम कहिती सुणी मबीठ॥ (वही, दू० ५७२)

(ल) छन्द-विधान

छन्द का काव्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। छन्द द्वारा ही काव्य को लय तथा नाद मिलते हैं। आई० ए० रिचर्ड्स काव्य की प्रभावोत्पादकता के लिए काव्य में छन्दबद्धता की अनिवार्यता मानते हैं।[४६] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का भी यही मत है। वे लिखते हैं— "छन्द के बन्धन के सर्वथा त्याग में हमें तो अनुभूत नाद-सौन्दर्य की प्रेषणीयता का प्रत्यक्ष ह्रास दिखलाई पड़ता है।[५०] इस कथन से यह भी स्पष्ट होता है कि भावानुकूल छन्द योजना भावोत्कर्ष की सहायिका होती है। अत: काव्य का छन्द-विधान अभिव्यक्ति के अन्य प्रसाधनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपादान है।

कुशललाभ एक छन्द शास्त्री था। यदि उसे राजस्थानी का अद्यावधि ज्ञात प्रथम छन्द शास्त्री भी कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इससे पूर्व का राजस्थानी भाषा में कोई छन्द-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। राजस्थानी छन्द-शास्त्र की दृष्टि से कुशललाभ कृत 'पिंगल शिरोमणि' ही प्रथम रचना है। अपने छन्द सम्बन्धी सम्यक् ज्ञान के आधार पर कवि ने अपने समग्र साहित्य मे लगभग १०४ प्रकार के छन्दों और ४० प्रकार के गीतों का प्रयोग किया है। 'पिंगल शिरोमणि' में तो कवि ने दूहा, छप्पय, गाथा आदि छन्दों को भी भेदोपभेद सहित सोदाहरण प्रस्तुत किया है।

कवि ने अभिव्यक्ति की प्रेषणीयता एवं चारुता के लिए भावानुकूल छन्दों का प्रयोग किया है। जहाँ कवि ने माधवानल कामकंदला चौपई, ढोला-मारवणी चौपई, तेजसार रास चौपई, भीमसेन हंसराज चौपई आदि प्रेमाख्यान और चरिताख्यान सम्बन्धी

रचनाओं में दूहा चौपई, सोरठा, सवैया, गाथाओं का प्रयोग किया है, वहीं 'महामाई दुर्गा सातसी' जैसी देवी-स्तुति सम्बन्धी रचनाओं में छप्पय, कवित्त, हणूंफाल, नाराच, भुजंगी, मोती दाम आदि ओजमय छन्दों का विशेष रूप से प्रयोग किया है। कवि का यह भावानुकूल छन्द विषयक ज्ञान 'पिंगलशिरोमणि' मे विशेष रूप से दर्शनीय है। वहाँ कवि ने छन्द की प्रवृत्ति के अनुकूल ही उसके उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। उदाहरणार्थ, छप्पय अथवा कवित्त प्रायः वीर रस के उपयुक्त छन्द होते हैं। कुशललाभ ने राम कथा के राम-रावण युद्ध-प्रसंग को इसी छन्द के भेदोपभेद के उदाहरणो में समाहित किया है। इसी प्रकार गीत प्रकरण में भी यही प्रवृत्ति गृहीत है।

कुशललाभ कृत विभिन्न कृतियों मे आए छन्दों का रचनानुसार उल्लेख निम्न-लिखित है—

१. माधवानल कामकंदला चौपई—१. वस्तु, २. चउपई (चौपई), ३. गाथा (गाहा), ४. श्लोक, ५. दूहा, ६. काव्य, ७. शार्दूल-विक्रिड़ित, ८. गूढ़ा, ९. पद्धड़ी, १०. कवित्त।

२. ढोला मारवणी चौपई—१. दूहा, २. चौपई, ३. काव्य, ४. सोरठा और ५. गाहा।

३. तेजसार रास चौपई—१. दूहा, २. चौपई।

४. अगड़दत्त रास—१. दूहा, २. चौपई, ३. गाहा, ४. वस्तु।

५. जिनपालित जिनरक्षित संधि गाथा—१. चौपई, २. चउपई, ३. दूहा, ४. ढाल।

६. पार्श्वनाथ दशभव स्तवन—१. त्रूटक (त्रोटक), २. दूहा और ३. कलस।

७. भीमसेन हंसराज चौपई—१. दूहा, २. चौपई, ३. वस्तु, ४. श्लोक, ५. ढाल।

८. महामाई दुर्गा सातसी—१. चौपई, २. पाघड़ी (पद्धड़ी), ३. दूहा, ४. गाहा, ५. त्रोटक, ६. भुजगी, ७. कवित्त, ८. नराय (नराच), ९. कलस, १०. सावझड़उ, ११. अर्द्ध नराय, १२. सारसी, १३. हणूफाल, १४. रोमक, १५. लीलावती, १६. दूहा साव-झडो, १७. जाड़ा दूहा, १८. बिअखरी, १९. आर्या-दूहा, २०. मोतीदाम और २१. दूहा कलस।

९. नवकार छन्द—१. दूहा, २. हाटकी और ३. कलश।

१०. स्थूलिभद्र-छत्तीसी—१. सवैया, २. रेमकी (रोमकी), ३. त्रिभंगी, ४. चावकी, ५. नाराच, ६. रगी का छन्द।

११. जगदम्बा छन्द अथवा भवानी छन्द—१. दूहा, २. छन्द।

१२. श्री पूज्य वाहण गीत—१. दूहा, २. चउपई, ३. ढाल।

१३. शत्रुंजय यात्रा स्तवन—१. दूहा, २. ढाल।

१४. गौड़ी पार्श्वनाथ छन्द—१. दूहा, २. चौपई।

१५. स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन—१. ढाल।

इन रचनाओ के अतिरिक्त कवि ने छन्द-शास्त्र विषयक पिंगलशिरोमणि नाम

से एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की है जिसमें उक्त ग्रन्थों में प्रयुक्त सभी छन्दों और अन्य अनेक छन्दों के सोदाहरण लक्षण दिए गए हैं। जिनका उल्लेख इसी प्रबन्ध के पंचम अध्याय में किया जा चुका है। कवि द्वारा प्रयुक्त छन्दों का विवेचन इस प्रकार है—

१. दूहा

कुशललाभ की प्रायः सभी रचनाओं में दूहा या दोहा छन्द का प्रयोग हुआ है। कवि के अनुसार दूहे के विषम चरणों में १३ तथा सम चरणों से ११ मात्राएँ होती हैं। कहीं-कहीं इस नियम का उल्लंघन होता अवश्य दिखाई देता है, फिर भी समग्र रूप से दोहे में आवश्यक ४८ मात्राओं से न्यूनाधिक का दोष कवि ने नहीं किया है। कहीं-कही कोई त्रुटि दिखाई देती है तो हम उसे प्रतिलिपिकारों की भूल का परिणाम कह सकते हैं, यथा—

माणस थी पंखी भला, अलगा चुणे चूणंति।
तरवर भमि संझा समई, मालई आवी मिलंति॥
(मा० का० कं० चौ०, चौ० ४२५)

उक्त दोहे के दूसरे और चौथे चरण में भी १३-१३ मात्राओं का प्रयोग स्पष्ट है। पर ठीक से उच्चारण और 'चूणे चूणंति' को 'चूण चुणति' तथा 'मालई आवी' को 'मालइं' या 'माल आवि' लिखने पर इस दोष का स्वतः परिहार हो जाता है। अनेक स्थानो पर ऐसी भूले दिखाई देती है, जिनका सशोधन हम सहज ही मे कर सकते हैं।

मात्रा, वर्ण, चरण, चाल-ढाल, विषय-वर्णन आदि की दृष्टि से दूहे के अनेक भेद किए गए हैं। कुशललाभ ने इनमें से जिन दूहों का प्रयोग किया है, उनका सक्षिप्त अध्ययन नीचे प्रस्तुत है—

(क) मात्रानुसार दूहे

लघु-गुरु मात्राओं के आधार पर छन्द शास्त्रियों ने दूहे के २३ भेद किए हैं। इनके नाम विभिन्न ग्रन्थों में पृथक-पृथक मिलते हैं। कुशललाभ ने २३ ही प्रकार के दूहों को लक्षण-उदाहरण सहित 'पिंगल शिरोमणि' मे वर्णित किया है। दूहों के ये भेदोपभेद दूहे मे प्रयुक्त मात्रा युक्त अक्षरों की सख्या-विभाजन के आधार पर होता है। अक्षरों की यह संख्या गुरु और लघु अक्षरो मे बटी होती है। गुरु अक्षर की दो मात्रा और लघु की एक मात्रा होती है। इस प्रकार निर्धारित इन दोहों मे २४ गुरु अक्षरो से लगाकर गुरु अक्षरों की घटती संख्या के अनुसार लघु अक्षरों को स्थापित करते हुए ४८ लघ्वाक्षरों तक अक्षरों की वृद्धि कर नामकरण किया जाता है। 'पिंगल शिरोमणि' के अध्ययन में उसका विस्तृत विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य रचनाओ में उपलब्ध मात्रानुसार दूहा-भेद निम्नलिखित हैं—

(अ) गयन्द (२० गुरु, ८ लघु = २८ अक्षर)

ब्रह्माणी ए वातां, नीयांमन मांनी नहीं।
दोली हुई दाणवां, मनछा फेरी मात॥ (अ० दु० सा०, छं० ३७)

(आ) मद्दु (१६ गुरु, १० लघु = २६ अक्षर)

माथो धोइ मेट, ऊभी सूरिज सांमही।
ताई ऊपनी पेट, मोहण वेलि मारूई॥
(ढो० मा० चौ०, चौ० १३१)

(इ) पिंगल (१८ गुरु, १२ लघु = ३० अक्षर)

थे सिधावो सिद्ध करो, पूजो थांकी आस।
मत विसारो मनथकी हुं छऊ थांकी दासी॥
(मा० का० कं० चौ०, चौ० ३३७)

(ई) तरल (१७ गुरु, १४ लघु = ३१ अक्षर)

कंकोरी आदर करी, मूकी देस विदेस।
जात्र करेवा आविज्यो, श्री गुरु ज उपदेस॥
(श० पा० स्त० गा० १४)

(उ) तमाल (१६ गुरु, १६ लघु = ३२ अक्षर)

अटवी माहे एकलो, वनिता तणे वियोग।
पुण्य प्रमाणे पाभीयो, सगमणि पचे भोग॥
(ते० रा० चौ०, चौ० १५५)

(ऊ) सायर (१५ गुरु, १८ लघु = ३३ अक्षर)

ब्रह्मा विसन विध्यात, वले महेस जु मोहियौ
उही कहै देवी अकल, तउ मो केही मात॥
(म० दु० सा०, छं० १८)

(ए) सुन्दर (१४ गुरु, २० लघु = ३४ अक्षर)

राजहस राजेन्द्र जिम, आराधी जिन आंण।
पाम्या सुष्य अनेक परि, भाव तणइ परिमाण॥
(भी० हं० चौ०, चौ० १३)

(ऐ) मेर (१३ गुरु, २२ लघु = ३५ अक्षर)

ब्रह्मचारी सिर मुकुट मणि, यादव वंश जिणिंद।
नेमिनाथ भावइ नमूं, आणी मन आणंद॥
(पू० वा० गी०, गा० ३)

(ओ) नर (१२ गुरु, २४ लघु = ३६ अक्षर)

एकज अक्खिर एक चीत, समरतां संपत्ति थाय।
सचित सागर सातना, पातिक दूरय लाय॥ (न० छं०, छ० ३)

(औ) कुंजर (११ गुरु, २६ लघु = ३७ अक्षर)

राजरिद्धि सोभाग रस, महुत मनोहर मत्ति।
परिघल सुपरिपद पामै, जु सेवयइ सगत्ति॥ (ज० छं०, छ० ३)

(अं) हर (१० गुरु, २८ लघु = ३८ अक्षर)

पास कुमरि दीक्षा ग्रही, वाणारसी मझारि।
सुर नर मिली उच्छव करइ, त्रिभुवन जय जय कार॥

(पार्श्व० दश० स्त०, गा० ५२)

(अः) सुकमाल (९ गुरु, ३० लघु = ३९ अक्षर)

सकल मंत्र सिर मुगट मणि, सदगुरु भाषित सार।
सोभवीआ मन सुध सूं, नित जंपइ नवकार॥

(न० छं०, छं० ४)

(य) दमणो (८ गुरु, ३२ लघु = ४० अक्षर)

प्रथम नाथ गणधर प्रथम, पुंडरीक गणधार।
पुंडर गिर नामइ प्रगट, सहु तीरथ महि सार॥

(श० या० स्त०, गा० २)

(ख) वर्णानुसार दूहे

हिन्दू धर्म की वर्ण-व्यवस्था को आधार मानकर भी विद्वानों ने वर्णों के अनुसार दूहों के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार भेद किए हैं। बारह लघु मात्राओं तक का दूहा ब्राह्मण, बाइस लघु मात्राओं तक का क्षत्रिय, बत्तीस लघु मात्राओं तक का वैश्य तथा बत्तीस से अधिक लघु मात्राओं का शूद्र होता है।[२१] कुशललाभ के साहित्य में इस वर्ग के दूहों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(अ) ब्राह्मण

केही कीजै वातड़ी, केही कीजै कत्थ।
जेहा सज्जण वीछड़ै, तेह न चडस्यै हत्थ॥

(मा० का० कं० चौ, चौ० ३५५)

(आ) वैश्य

सुकलीणी सुंदरि सुगण, वनिता निर्मल वंस।
तिण पाखै रै प्राणीया, हुजी व ऊड्यो हंस॥

(ते० रा० चौ०, चौ० १३१)

(इ) क्षत्रिय

वचन विलास विनोद रस, हाव भाव रति हास।
प्रेम गीत संभोग रस, ऐ सिणगार आवास॥

(ढो० मा० चौ०, चौ० ३)

(ई) शूद्र

अमकुल निर्मल वन विमल, उत्तम मथया अनेक।
तूं चदन तरु अवतरउ, सुजस सुवास विसेष॥

(भी० हु० चौ०, चौ० ३७५)

वर्णानुसार दूहा-भेद में चण्डालिका नामक दूहा भी कहा गया है। इसमे विषम चरणों के आदि में जगण (।ऽ।) होता है।[५२] कुशललाभ के काव्य में यद्यपि शुद्ध रूप से कहीं भी यह छन्द नहीं मिलता, किन्तु कहीं-कहीं एक विषम चरण के आदि मे जगण आ गया है। सम्बन्धित ग्रन्थों से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(अ) मारवाड का देस में एक न जाइं रड्डि।
कदीकहुं इं अबरसणो, के फांको के तिडड ।। (ढो०मा०चौ०, दूहा १३७)

(आ) नरपति आव्या निज नगरि, सहित सहू परिवार।
महामहोच्छव महत सूं, जग जपइ जयकार।।
(भी० हं० चौ०, चौ० २४२)

(इ) ब्रह्मा विसन विधात, वले महेस जु मोहीयो।
उही कहै देवी अकल, तउ मोकेही मात ।। (म० दु० सा०, दू० १८)

(ग) चरणानुसार दूहों के भेद

डॉ० ओमानन्द रू० सारस्वत ने राजस्थानी दूहों के चरणों की घटत-बढ़त की प्रवृत्ति के आधार पर उनके बारह भेद किए हैं।[५३] ये बारह भेद हैं—दूहो, सोरठियो, बड़ा दूहो, तूवेरी दूहो, खोड़ो दूहो, पंचा दूहो, चरणा दूहो, नन्दा दूहो, चोटियो दूहो, उप दूहो, चूडाल दूहो और छकड़ियो दूहो। इनमें से दूहा, सोरठा, बड़ो दूहो, तूवेरी, पंचा दूहो आदि कवि की विभिन्न कृतियों मे प्रयुक्त हैं। इनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(अ) दूहा (समचरणों में ११—विषम चरणों में १३ मात्राएँ)
सा बाली पेमग्गली, खिण खिण रयण विहाइ।
तिण हर हार परठीयो, ज दीवलो बुझाइ।।
(मा० का० कं० चौ०, दूहा २५८)

(आ) सोरठियो—यह एक अर्द्ध सम मात्रिक छन्द है, जिसे दोहे का उल्टा कहा गया है। लक्षण की दृष्टि से इसके विषम पादों में ११-११ और सम पादों में १३-१३ मात्राएँ होती हैं।[५४] राजस्थानी मे हिन्दी की भाँति सोरठे को स्वतन्त्र छन्द न मानकर दूहा (दोहा) छन्द का ही एक भेद माना गया है। श्री रामनिवास हारित[५५] एवं डॉ० भोलानाथ तिवारी[५६] के मतानुसार सौराष्ट्र में बहु प्रचलित होने से इस छन्द को सोरठा कहा गया है। राजस्थानी की प्रियराग सोरठी का नामकरण उसमें सोरठा दोहे के बहुल प्रयोग के कारण ही पड़ा है। स्वय कुशललाभ ने भी राग सोरठी में इसी सोरठे छन्द का खुलकर प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त कवि ने इस छन्द का प्रयोग कथा को गति प्रदान करने के लिए, भावावेश की स्थिति का निर्माण एवं विषय-परिवर्तन की दृष्टि से भी किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) करवतड़ी किरतार, जउ सिर दीसइ साहरै।
तो तूं जाणै सार, वेदन विछोहया तणी।।
(मा० का० क० चौ०, सो० ३५७)

(२) मुरधर देस मझार, सयल धन ध्रांन सबंधौ।
नामे पुगल नयरी, पुहवी सयली प्रसिद्ध ॥
(ढो० मा० चौ०, सो० ६)

(३) है है मुझ ही आह, पति हीणा पोचउ थयो।
वलल्भ बीछड़तांह, फटि पापी फाटउ नहीं ॥
(भी० हं० चौ०, सो० २१५)

(इ) बड़ो दूहो (प्रथम-चतुर्थ चरणों में ११-११, द्वितीय-तृतीय में १३-१३ मात्राएँ)—

कारी वहइ न काइ, ब्रह्मा इम आलोचइ।
साथी इण वेला सझर, मुझ सूझइ महमाइ ॥
(म० दु० सा०, दूहा २३)

(ई) तूंबरी दूहो (प्रथम-चतुर्थ चरणों मे १३-१३, द्वितीय-तृतीय चरणो में ११-११ मात्राएँ)—

लागो चित्त सुजाण सूं, वरजइ लोक अयाण।
तिह सूं किहउ रूसणो, जिण सूं जीवन प्राण ॥
(मा० का० कं० चौ०, दूहा ६४)

(उ) पंचा दूहो (प्रथम-तृतीय चरणों में १२-१२, द्वितीय-चतुर्थ चरणों में ११-११ मात्राएँ)—

(१) सेज रमतां कामिनी, खिण मूकी नवि जाइ।
जाणे विहसी केतकी, भमरो बैठो आइ ॥
(मा० का० कं० चौ०, दूहा २५२)

(२) पिंगल पूछइ गुरु प्रतइ, राजहंस कुण राय।
पाम्या सुष कणी परइ, स्वामी करउ पसाय ॥
(भी० हं० चौ०, दूहा १४)

(घ) कथन-पद्धति के आधार पर दूहा-भेद

कथन-पद्धति के आधार पर भी राजस्थानी दूहों के अनेक भेद किए गए हैं। उनमें से निम्नलिखित रूप कुशललाभ के साहित्य में भी उपलब्ध हैं—

(अ) संवाद दूहे—दूहे के इस रूप मे वार्तालाप, कथोपकथन, कथन या व्यक्ति सम्बोधन की प्रधानता होती है और भणै, कहे, उवाच आदि क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है, यथा—

(१) कामकंदला इम कहइ, अजी अछे बहु राति।
गाहा गूढ़ा गीत रस, कहि का नवली वात ॥
(मा० का० कं० चौ०, दूहा २५३)

(२) कर्मणि प्रति राजा कहइ, भागउ ए संदेह।
हंस गर्भ छइ तुझ तणइ, नीर साथइ नेह ॥ (भी० हं० चौ०, दूहा २६६)

(आ) **सासोतरा दूहा**—कुशललाभ के अनुसार तीन प्रश्नों का उत्तर जिस दूहे के अन्तिम चरण में मात्र एक शब्द द्वारा दिया जाए, वह सासोतरा दूहा है। कवि ने इसका प्रयोग 'पिंगल-शिरोमणि' में चित्र काव्य प्रसंग में किया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

खदबद हांडी खीच, जीमण बैठो इक जणो।
अजे न जीम्यो भीच, तो उन्हो॥ —पृ० १४१

(इ) **गूढार्थ दूहे**—कुशललाभ ने इसे गूढोत्तरा कहा है। इसमें अर्थ कथन गुप्त होता है, यथा—

(१) भींति लिखयो देवर भणई, भाभी भारथ देखि।
निरत करि देव निरखि, रामायण सवि सेख॥
(मा० का० कं० चौ०, दूहा २८१)

(२) सूरवेद अंग करि लहू, गुणगुर माहे गाइ।
चन्द्र वेद अंका चर्क, वसु हम छंद वणाइ॥ (पिं० शि०, पृ० ६७)

(ई) **सम्बोधनात्मक दूहे**—कवि की विभिन्न रचनाओं में व्यक्ति-विशेष, वस्तु-विशेष, प्राणी-विशेष आदि को सम्बोधित करते हुए भी कतिपय दूहे उपलब्ध होते हैं। ये सम्बोधनात्मक पद्धति के ही परिचयक हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(१) पति—कंता अण दीठे कुअर, कियो नातरो कांइ॥
(ढो० मा० चौ०, दूहा १८१)

(२) मित्र—वलतो विक्रम इम कहै, सुणि आगिआ वेताल।
कहियो करूँ जो माहरो, तो छांडू करवाल॥
(मा० का० कं० चौ०, दूहा ५९९)

(४) शुक—सूड़ा सुगणां पंखिआ, म्हाको कह्यो करेज।
दस मुंण सुकड़ निमुण अगर, मालवणी बालेह॥
(ढो० मा० चौ०, दू० ४५०)

(५) कर्म—कर्म तणी गति अति कठिन, मत चींतवै कुमार।
किहां राज रिद्धि पुर नयर, किहां अटवि कंतार॥
(तै० रा० चौ०, दू० ७६)

(६) हृदय—रे हियड़ा संतोषकरि, जिम आरण कल्लोल।
हाथी बसतां वींझवन, तिहांइ पड़यो विछोह॥
(मा० का० कं० चौ०, दू० ५५५)

(७) स्वप्न—सुहिणातइं मोनू दही, तोनू दहिज्यो अग्गि।
सो कोसइ प्रीतम वसइ, सूती थी गलि लग्गि॥
(वही, दू० ५५७)

(उ) **सूक्त्यात्मक दूहे**—ऐसे दूहों में सूक्तियों का उपयोग दूहे के किसी भी चरण या चारणों में किया जाता है। कुशललाभ की रचनाओं में प्रयुक्त निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) तिण देसडै न जाइयइ, जिहां अप्पणो न कोइ।
सेरी सेरी हींडता, सार न पूछइ कोई।।
(मा० का० कं० चौ०, दू० १५६)

(२) च्यंता डायण जिहां नरां, तिहांइ दिढ अंग न माय।
जो चीरउ चोरपणे धरे, तसु भीतर पेसे घाय।।
(ढो० मा० चौ०, दू० ३४४)

(ङ) विषय-वर्णन के अनुसार दूहा-भेद

विषय-वस्तु के आधार पर दूहे के परिजाऊ, सिंधु, रंग, सर, विसर, चाडाऊ, विरह रुदनात्मक आदि भेद सम्भव हैं। इनमें से कुशललाभ ने अपने साहित्य में निम्नलिखित भेदों को स्थान दिया है।

(४) रंग दूहा—इनमें कवि साधुवाद सम्बन्धी वर्णन करता है। इसके लिए वह धन्य, वाह आदि शब्दों का प्रयोग करता है, यथा—

कामकंदला मोकलइ, संदेसो सू हत्थ।
उज्जेणी नगरी भणी, धन धन मालव, देस।।
(मा० का० कं० चौ०, दू० ४१७)

(२) सर दूहा—प्रशस्ति-सम्बन्धी गीत सर दूहों में लिखे जाते हैं। यहां मारू के सौंदर्य की प्रशस्ति का गान करता हुआ कवि लिखता है—

चंपा वरणी ससि मुषी, पंक सूरि जेहा वांण।
ढोला ऐह वी मारवी, जेही पड़द वाजे वीण।।
(ढो० मा० चौ०, दू० ४६६)

(३) विसर दूहा—निन्दा, भर्त्सना आदि का निरुपण करने वाले दूहे विसर कहलाते हैं। कवि की माधवानल कामकंदला चौपई एवं ढोला मारवणी चौपई में इनका सर्वाधिक प्रयोग मिलता है, यथा—

लोचन तुम हो लालची, अतिलालच दुख होइ।
जूठा सा कछूत्तर मोह, साच कहेगो लोइ।।
(मा० का० क० चौ०, दू० २०६)

२. गाहा या गाथा

संस्कृत में इस छंद को आर्या कहा गया है। कवि कुशललाभ के अनुसार यह ५७ मात्राओं का छंद है, जिसके पूर्वार्द्ध में ३० और उत्तरार्द्ध में २७ मात्राएँ होती हैं। यति क्रमशः १२, १८, १२, और १५वीं मात्रा पर होता है।

कवि ने गाहा (गाथा) छंद का प्रयोग माधवानल कामकदला चोपई, ढोला मारवणी चौपई, अगड़दत्त रास, महामाई दुर्गा सातसी आदि रचनाओं में किया है। 'माधवानल कामकंदला चोपई' में कवि ने प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य में प्रचलित

गाथाओं को ही ज्यों का त्यों ग्रहण कर स्थान दिया है जबकि शेष रचनाओं में कवि की स्वरचित गाथाएँ मिलती हैं। दूहों की भाँति ही गाथाओं के भी अनेक प्रकार से भेद सम्भव हैं। कुछ भेदों का विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

(क) अक्षरों के आधार पर गाहा-भेद

कुशललाभ ने 'प्राकृत पैंगलम' आदि ग्रन्थों के समान मात्राओं (लघु, गुरु) के आधार पर गाथा के २८ भेद बताये हैं। 'पिंगलशिरोमणि' के अतिरिक्त अन्य काव्य-कृतियों में कुशललाभ द्वारा विरचित गाथाओं के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

१. देही (२१ गुरु, १५ लघु = ३६ अक्षर)

देवी दांणव दिट्ठ, दाणवं दलं देवी पिण दिट्ठं।
तव बोल्यउ बलवतो, श्यामा आवि सामह पाए॥
(म० दु० सा०, गा० ११५)

२. गौरी (२० गुरु, १७ लघु = ३७ अक्षर)

मुर सुर जेथ महांतों, तिहां आया देव कोड तेतिसं।
दु.ष सपूरित देह, त्राहि त्राहि मुष्वत्रवीयं॥
(वही, गा० ६२)

३. धात्री (१९ गुरु, १९ लघु = ३८ अक्षर)

श्यामा वरण सुरीए, कदम कुसुम अर्द्धना किद्धं।
तव वेरी वर दिद्धं, अघट्टिवार अह आधारं॥
(म० दु० सा०, गा० १४२)

४. दूती (१८ गुरु, २१ लघु = ३९ अक्षर)

सावलीया सुर सद्दे, जंपइ जीह जेथ जगन्नाथं।
अवर न कोई अपावं, दाणव हुंति छूटणा दुहे॥
(म० दु० सा०, गा० ६१)

५. छाया (१७ गुरु, २३ लघु = ४० अक्षर)

कुटिलं महिला ललिय, परिकलिय विमल बुद्धिणो धीरा।
धन्ना विरत चित्ता, धवंति जह अगड़दत्ताई॥
(अग० रास, गा० ५)

६. सिद्धि (१३ गुरु, ३१ लघु = ४४ अक्षर)

विनत अपउ भडवहीय, सिभलि शिभवातउ श्रवणं।
करि दे रीर करीर, ऊससी असुरि लगसि अहि अंबरं॥
(म० दु० सा०, गा० २१८)

(ख) गण के आधार पर गाथा-भेद

गण के आधार पर गाथा के चार भेद सम्भव हैं। जिस गाथा में एक जगण (ISI) हो उसे कुलवंती, दो जगण हो उसे परकीया, दो से अधिक जगण वाली को गणिका तथा जगण रहित गाथा को विधवा कहा जाता है। कुशललाभ के साहित्य में गणिका के अतिरिक्त शेष तीनों गाथाओं का प्रयोग हुआ है। कुलवंती एव परकीया गाथा के उदाहरण उक्त वर्णित देही एवं गोरी गाथाओं के उदाहरण ही है। विधवा गाथा का उदाहरण द्रष्टव्य है—

> जपइ जुगति अहकारं, सुरां आधार स्वामनी सकला।
> देवण लागा देवां, आपो आप तणा आवधं ।।
>
> (म० दु० सा०, गा० ७४)

(ग) लघु वर्ण की दृष्टि से गाथा-भेद

प्राकृत पैंगलमकार ने लघु वर्णों के आधार पर भी गाथाओं के भेद किये हैं। इस दृष्टि से १३ लघु वर्ण वाली गाथा ब्राह्मणी, २१ लघु वर्ण वाली क्षत्रिया, २७ लघु वर्ण वाली वैश्य तथा २७ से अधिक लघु वर्णों वाली गाथा शूद्र है।[५७]

कुशललाभ की गाथा-प्रयुक्त रचनाओं में ब्राह्मणी गाथा के अतिरिक्त शेष सभी रूप प्रयुक्त हुए हैं। जिनके उदाहरण रूप में 'गाथा' छन्द के 'क' वर्ग में उद्धृत गाथाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं।

कुशललाभ कृत 'ढोला मारवणी चौपई' में वर्णित दोनों गाथाएँ क्रमशः 'गाह' एवं 'विग्गाह' है। 'प्राकृत पैंगलम' के अनुसार गाह के पूर्वार्द्ध में २७-२७ मात्राएँ होती हैं। यति १२, १५ पर लगती है[५८] तथा विग्गाहा की उलटी होती है।[५९] दोनों उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

> (१) मणहर नवरस मज्झे, सुंदरी नारी ससी वदन।
> वेगी कहवे न बंधं, सुणति सज्जणा जाणेसूं।।
> (२) नरवर नयर नरिंदो, नल राय सुत साल कुमारो।
> वरं प्यंगलो धूआ, वीनता मारवणी वर्ण वेसू।।

३. चौपई

यह एक मात्रिक छन्द है, जिसके प्रत्येक चरणों में १५ मात्राएँ होती हैं। कुशल-लाभ के अनुसार इसका लक्षण इस प्रकार है—

> भूसर मत्ता पहिला मेल, मांहे च्यारों तुक्का मेल।
> छंद होइ इण विधि चौपयो, सेस वतायौ वचन सुकह्यौ।।[६०]

कुशललाभ के साहित्य मे इस छन्द का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। कवि की कुछेक रचनाएँ तो परम्परानुसार इस छन्द की बहुलता के कारण चौपई नाम से ही अभिहित हैं। स्तवन-विषयक रचनाओं के अतिरिक्त शेष कृतियों में इसका कहीं-न-कही प्रयोग हुआ ही है। निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(अ) नयण कटाक्ष प्रकाशी नेत्र, अगड़दत्त नूं विधियूं चित्त ।
तो ही लाज करी गुरु तणी, न करी प्रीति प्रगट आपणी ।।
(अग० रास, चौ ४४)

(आ) जिण पालग नउ एहवितंत, भाखइ व्रद्धमान भगवंत ।
तिम जंबू प्रति सोहहू स्वामि, जंपइ बद्धइ अंगि सुठामि ।।
(जि० जि० सं० गा०, चौ ७८)

४. चौपाई, बिअक्खरी, पादाकुलति

चौपाई भी मात्रिक छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। पर गुरु लघु का कोई नियम नहीं है।[11] डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव डिंगल (राजस्थानी) में इसी छन्द का पादाकुल या पादाकुलक, बिअक्खरी, चौसर आदि नामों से भी प्रयोग मानते हैं।[12] 'प्राकृत पैंगलम्' में भी पादाकुलक छन्द का लक्षण चौपाई के समान ही निरूपित किया गया है।[13] किन्तु कुशललाभ ने अपनी रचनाओं में इनका पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। 'बिअक्खरी' में कवि के अनुसार १६ मात्राएं[14] तथा पादाकुलक (पादाकुलति) के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ और अन्त में गुरु[15] कहा गया है। अतः हम इन छन्दों का यहाँ अलग-अलग वर्णन ही करेंगे।

कुशललाभ ने जिनपालित जिनरक्षित संधि गाथा, गौड़ी पार्श्वनाथ छन्द, महामाई दुर्गा सातसी, जगदंबा छन्द आदि ग्रंथों में चौपाई छंद का प्रयोग किया है। कवि की प्रयुक्त चौपाइयों में से निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(१) सरसति सुमत आप सुर राणी, वचन बिलास विमल ब्रह्माणी ।
सकल ज्योति ससार समांणी, पाय प्रणमूं जोड़े जुग पाणि ।।
(गौ० पा० छं०, छं० २)

(२) सदा आदि शिव शगति एकसम, आराधक आनंद अनोपम ।
सदगुरु कथति साध पद संक्रम, भजि भजि भगत छांडि अंतर भ्रम ।।
(जग० छ०, चौ २)

कुशललाभ ने 'महामाई दुर्गा सातसी' में शुंभ-निशुंभ के साथ देवी के युद्ध का वर्णन १८ बिअक्खरियों मे किया है। उनमें से एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है—

दांणव देव वे विहू अंगम, वरइ आदि ऊगटयो विसंभ ।
रामाइण भारथ तन रूखे, मातउ युध वाजियउ सनमुखे ।। (छ० २६६)

पादाकुलति का प्रयोग कवि ने केवल अपने छन्द ग्रन्थ 'पिंगलशिरोमणि' में ही किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है –

बोले सिय इम लखमण वांणी, जिय मधि रांम तणी ए जांणी ।
अबला राकस बहु विधि आखै, दुसट वचन सिय लखमण दाखै ।।

(पृ० ६५)

५. पद्धड़ी

कवि के अनुसार पद्धड़ी छन्द १६ मात्रा का होता है, जिसकी दसवीं मात्रा पर यति तथा अन्त में जगण (।ऽ।) होता है।[१६] यथा—

विक्रमादित्य तिहां, करइ राज।
पृथवी उरण जिण, करी आज॥
परनारी बंधव, रिण अभंग।
सरणा विलंख जिण, सावलिग॥ (मा० का० कं० चौ०, छं० ३७०)

६. सरसी या सारसो

इसके प्रत्येक पाद में २७ मात्राएँ होती हैं। लक्षणानुसार इसके १६, ११ पर यति और अन्त में गुरु लघु होता है।[१७] यथा—

पंथई पयठं वल बयठई, झाड अवझड कुरीय।
डंबराधी छाइ अंबर सूझवइ नहू सूरीय॥
परभवे गोइ पवंग पाए, दूह भ्रह बडइडाइ।
तउ अपारजे अभंग आवधु, अतुल एहुवा अनूमि॥
(म० दु० सा०, छं० १६५)

७. त्रिभंगी

इस छन्द के प्रत्येक पाद में ३२ मात्राएं होती हैं। यति १०, ८, ८, ६ पर पड़ती है तथा अन्त में गुरु होता है।[१८] कुशललाभ के साहित्य में इस छन्द का प्रयोग 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' में हुआ है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

भए चक्रवर्ती बड़े छत्रपती हय गय छत्ति सुरंद समाने।
गरथ अगन्न चऊदर तन्न कहि धन धन्न सुनि नखाणी॥
सरूप कुमार सवालष नारि चऊसठि हजार मनोहरि रांणी।
तज्यू सदराग ग्रर्यो जीव ये राग धरम कनु भाव ग्रह्यो भल जांणी॥
(छन्द १५)

८. त्रोटक (तोटक या त्रूटक)

कुशललाभ के अनुसार तोटक के प्रत्येक चरण में चार सगण (।।ऽ) होते हैं।[१९] कवि ने इसका प्रयोग 'महामाई दुर्गा सातसी' एवं 'पार्श्वनाथ दशभव स्तवन' में किया है। पर उनमें गणो के गणना निर्वाह के नियमों की चिंता कवि ने नहीं की है। उदाहरण प्रस्तुत है—

मछरंद महरक्क न कोई मुणइ, बेकी कर कंद विप्र वणइ।
कुदरती दाणव सिंह कीयउ, तांहि नवषंडह माल लियउ॥
(म० दु० सा०, छं० ४६)

९. भुजंगी

यह एक वार्णिक सम छन्द है, इसमें तीन यगण (ISS) तथा लघु-गुरु (IS) होता है।[70] पर कवि द्वारा प्रयुक्त स्थलों में यह लक्षण नही बैठता। कवि ने तीन यगण के और अन्त में लघु-गुरु के स्थान पर चार यगण में चरण को पूरा किया है, यथा—

कसी कोउ तेत्रीस साही ज कीधा।
लखां प्राण लोडे सवे द्रुगे दिद्धा।
भणै एव देवा भुजां तूझ स्वामी।
सुरां त्राहि ऊवाहि त्रैलोक स्वामी ॥ (म० दु० सा०, छन्द ६६)

१०. नाराच (नराच या नराय)

नराच छन्द का लक्षण जगण (ISI) + रगण (SIS) + जगण + रगण + जगण + गुरु (S) है। इस प्रकार इस छन्द में कुल सोलह वर्ण होते है।[71] उदाहरण द्रष्टव्य है—

अबद्ध ईस आवियं, त्रिसूल खग्ग ते तहं।
चतुर्भुजे न दीध चक्र, सांण पर्वला सह।
वलेज संख दीध वर्ण, सबद्ध सेन धारं।
अवद्ध देव आव्रजै अपति एह ऊमरा। (म० दु० सा०, छन्द ७५)

११. कलस (कलश)

यह एक मात्रिक छन्द है। इसमे ६ चरण होते हैं जिनमें प्रत्येक दो चरणो की तुक मिलती हैं। इसके प्रथम चार चरणो मे २४ तथा अन्तिम दो चरणों में २८ मात्राएँ होती हैं।[72] टेसिटरी के मतानुसार इस छन्द का प्रयोग सदैव छन्दों की रचना के अन्त में अन्त्य छन्द के रूप मे किया जाता है।[73] कुशललाभ की स्तुति-परक रचनाओं मे इस परम्परा का पूर्ण निर्वाह हुआ है। नवकार छन्द से एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

नित जपिये नवकार, सार संपति सुष दायक।
सिद्ध मत्र ए सासतो, इम नपे जगनायक।
अरिहंत देव सू सिद्ध, पद आचार सुणिजै।
श्री उवझाय साधु पच परमेष्ठी नमीजै।
नवकार सार संसार मे, कुशललाभ वाचक कहै।
एक चीत आराधता विविध रिद्ध मन वछित लहै ॥ (छन्द १७)

१२. हणूफाल (तोमर)

कुशललाभ के मतानुसार इस छन्द मे एक सगण (IIS) और दो जगण (ISI) होते हैं। यही छन्द तोमर है, जिसे मारवाड़ी में हणूफाल कहा जाता है।[74] 'महामाई दुर्गा सातसी' से इसका उदाहरण द्रष्टव्य है—

हिंगुलाज की हलकार, समुहा वणघइ सार।
तव देवि हाथ त्रिशूल, कलिका अवकल समूलि ॥ (छन्द २०७)

१३. मोतीदाम

इसके चारों चरणों मे चार-चार जगण (।ऽ।) होते हैं,[७५] यथा—

बडक्कइ बांह तडक्कइ कंध,
भिडंत भडज्ज रते अणुबंध।
किलंबइ होय अषूटइ कालि,
तु ग्यान करति अणी अंग ढालि। (म० दे० सा०, छन्द ३२२)

१४. लीलावती

इस छन्द के प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ तथा १८, १४ पर यति होती है। चरणान्त लघु-गुरु (।ऽ) होता है[७६]—

आषा अपलंब सघण सर छूटइ पुहुप माल फिर माल पुणे।
उडण घूंघट नाषां श्रावज्जई, मांण विनाण प्राण विमुणे।
सारम्भइ शबद सोक साषु हुई, षडहड झाड आवध षरे।
वर प्राप्ती विस कन्या ब्रह्माणी, परणइ दाणव एम परे।
(वही, छन्द २७८)

१५. कवित्त

कवित्त छन्द अक्षरों की सख्या के आधार पर अनेक प्रकार के होते हैं। कुशललाभ द्वारा प्रयुक्त कवित्त १६ से २४ वर्णों तक के हैं, जो सभी चरणों में समान नहीं है। इस प्रकार के कवित्त अन्य किसी छन्द-ग्रन्थ में लक्षणबद्ध नहीं मिलते। कुशललाभ द्वारा प्रयुक्त कवित्त का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

खिण एक रहि हो मयण नइण दुइ कज्जल सार।
खिण एक रहि हो मयण उरह कंचुउ समारउ।
खिण एक रहि हो मयण पाय पाघल भरिवलउ।
खिण एक रहि हो मयण उरह एकावलि घल्लउ।
ओरह ओरह मयण तन मन दहन कुसुम केस गय कुली।
तडवड वडवक उर कंचूओ मुंय दिवसइ पज्जली।
(मा० का० कं० चौ०, छन्द ५०३)

१६. वस्तु

'रघुवरजस प्रकास' में इसे उपदोहा, रोला, राय बथुआ, बथुआ आदि नाम देते हुए इसके प्रथम दो चरणों में ११, १३ तत्पश्चात् क्रमश: १०-१३, ११-११, ११-६ अथवा १०-१० मात्राओं का होना कहा है।[७७] कुशललाभ द्वारा प्रयुक्त वस्तु छन्द का कोई चरण इस लक्षण से मेल नहीं खाता। यथा—

भणइ भूपति भणइ, भूपति अमृत फल एह।
कहउ एहवा गुण किस्या व्याध रोग, विष तनि व्यापइ।
जीव जीव नावइ जी त्रिषा भूष तनि नवि संतापइ।
साइणी डाइणी, भूत भय देखि, टलइ सवि दूर।
देह सकल दीपइ सदा नित नित नवलउ नूर। (मी० हं० चौ०, छन्द ३८५)

१७-१८. श्लोक एवं काव्य

ये दोनों छन्द कवि द्वारा विरचित नहीं हैं। ये दोनों ही छन्द परम्परित पूर्ववर्ती काव्यों से उद्धृत हैं, जिनका कवि ने प्रसगवश अपनी कृतियों में प्रयोग कर लिया है।

इन छन्दों के अतिरिक्त कुशललाभ की 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' में रंगी का छन्द, चावकी और रेमकी अथवा रोमकी छन्दों का तथा 'नवकार छन्द' मे हाटकी छन्द का प्रयोग हुआ है। सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी एवं राजस्थानी के छन्द-ग्रन्थों में ये छन्द उपलब्ध नही होते और न कवि ने ही अपने छन्द ग्रन्थ 'पिंगलशिरोमणि' में इन छन्दों का लक्षण दिया है। अत: लक्षण के अभाव मे इन छन्दों की प्रामाणिकता के विषय में कुछ नही कहा जा सकता। सम्बन्धित छन्दों के एक-एक अंश उद्धृत किए जाते हैं—

(१) रंगी का छन्द

विनवती सषि वचन सुन स्वामिनि नितो निको नाटकउ रंग।
सझि सिंगार, सरतति नाद, रसतान मांन घनसार मृदंग।
रीझति बाल मनोहती तजति कोप विषभार झयंग उर उतंग।
सनमुष रचाहत तब आपहि मिलहिइं तोही प्रसंग॥ (छन्द २६)

(२) चावकी छन्द

अमृत सम आहार मधुर रस स्वाद बत वांछित कृत भोजन।
कबहूइ पवन पीत परषी मि तब मन की नवी परीति भयउ मन।
देषी विचार कुणतांहि झझइ वायस स्वात अभिटषतीयउ
अव्रतइं सइ भोग वीलास कुनी ठारे तांहि बहर न वांछइ कहि कोजन॥
(छन्द १८)

(३) छन्द रेमकी अथवा रोमकी

मजन अजन कीना, सुधि सब तन भीना, भरम सौरंभ लीना
सोहइ सिर रक्खरी।
कुंडल कपोल, चोल वदन तंबोल रोल, कुच झकघोर,
पोर सारइ, तिन्वि सरवकरी।
कोमल कमधर कब अधर विद्रुम बिंब, पुहप वेणी प्रलब,
झइसी चित्र पुत्तरी।
कुशल सुमति जागइ, कोस्या रिरि राय आगइ, दूरही थी
पाउ लागइ भानु सरग थी उतरी॥ (छन्द १२)

(४) छन्द हाटकी

> बीजोरा कारण राय महा बल अन्तर दुष्ट विरोध।
> तिण नवकारे हत्या टाली, पाम्यो जक्ष प्रतिबोध।
> नवलाख जपतां थाइ जिनवर अेसे वे अधिकार।
> सोभवीयां भगते चोखे चीते, नित जंपइ नवकार।

गेयता

कुशललाभ ने अपने काव्य को जनरुचि के अनुकूल बनाने के लिए तत्कालीन प्रचलित शास्त्रीय एवं लौकिक बन्धों को ग्रहण किया है। कवि ने ऐसी १२ ढालों एवं इतनी ही प्रचलित रागों का प्रयोग किया है, जो इस प्रकार हैं—

(क) ढालें—१. ढाल वेली नी, २. ढाल मृगांक लेखा नी, ३. रहु नी ढाल, ४. ढाल गीता छन्दा नी, ५. ढाल अती नी, ६. ढाल डूंगर दानी, ७. ढाल इकवीस नी, ८. ढाल संधि नी,[७८] ९. ढाल वाहुली,[७९] १०. ढाल सिंध नी,[८०] ११. ढाल सामेरी[८१] और १२. ढाल उल्लाला।[८२]

(ख) रागें—१. आसावरी,[८३] २. रामगिरी (रामग्री),[८४] ३. गुड मल्हार,[८५] ४. श्री,[८६] ५. षंभायती,[८७] ६. सोरठी,[८८] ७. सामेरी,[८९] ८. केदार गोड़ी,[९०] ९. गूड,[९१] १०. गोड़ी,[९२] ११. गुडी-गुजराती[९३] और १२. धन्यासिरी हुसैनी।[९४]

कुशललाभ की कतिपय रचनाओं में उक्त रागों के नामोल्लेख से यह सिद्ध होता है कि कवि संगीत शास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित था। उक्त बारह रागों मे से प्रथम ६ रागें आज भी अपने पर्याय नामों के साथ प्रचलित हैं। यद्यपि वैज्ञानिक अध्ययन की प्रवृत्ति से तत्कालीन लक्षणों में आज आमूल-चूल परिवर्तन हो चुका है, फिर भी कुछ लक्षण इनके अनुकूल मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ, राग आसावरी को शास्त्रीय दृष्टि से प्रातः कालीन राग कहा गया है। इसमें भक्ति की प्रधानता होती है। कुशललाभ ने इसी राग में प्रातःकाल का वर्णन करते हुए श्री पूज्य वाहण जी की स्तुति की है, यथा—

> (१) इण परि अबला नीसती, रउती रन्नि मझारि।
> रात्रि गई रवि ऊगम्यउ पामीउ अटवी पार॥
>
> (भी० हं० चौ०, चौ० २१६)

> (२) पहिलो प्रणमुं प्रथम जिण, आदिनाथ अरिहंत।
> नाभि नरेश्वर कुल तिलक, आपइ सुख अनंत॥
> चक्रवर्ती जे पांचमो, सरणागत आधारि।
> शांतिकरण जिन सोलमो, शांतिनाथ सुखकार॥
>
> × × ×
>
> आ भव सागर सारिखुं, सुख दुख अन्त न पार।
> सदगुरु वाहण नी परइ, उतारइ भव पार॥
>
> (पू० वा० गी०, छन्द १, ११)

रामगिरी (रामग्री) राग का वर्तमान नाम रामकली अथवा रामकरी है। इसे प्रात:कालीन संधि प्रकाश राग माना जाता है। इसमें भक्ति, निर्वेद की भावना के साथ वियोग शृंगार का वर्णन भी किया जाता है।[६५] कुशललाभ के प्रयोग लक्षणानुकूल हैं। जहाँ वह 'पूज्यवाहण गीत' में इस राग मे भक्ति और निर्वेद के उपदेश का गान कर रहा है,[६६] वहीं भीमसेन हंसराज चौपई में कवि ने इसी राग में राजा भीमसेन के वियोग में निर्वेद की अभिव्यक्ति की है, जैसे—

राय नी पीरथि सावीया, नहु पेषइ नारि
आकुल व्याकुल इम कहइ कीसूं किरतार ॥
विरह व्यथा व्यापउ हीयइ रामा कजि
राइ दइ नु लभा देव नइ, वली व्याकुल थाइ ॥
(भी० हं० चौ०, चौ० २०१-२०२)

गूड मल्हार का आधुनिक नाम गौड़ मल्हार है। इसे कुछ ऋतु-राग भी कहते हैं, क्योंकि इसे वर्षा ऋतु मे गाया जाता है तथा वर्षा का ही इसमें शृगारिक वर्णन होता है।[६७] कुशललाभ ने 'पूज्यवाहण गीत' कृति में उक्त लक्षणो का पूर्ण पालन किया है। छन्द ६१ से ६७ तक वर्णित गूड मल्हार शीर्षक छन्दों मे कवि ने सर्वत्र वर्षा का ही वर्णन किया है, यथा—

आव्यो मास असाढ़ झबूके दामिनी रे।
जोवइ जोवइ प्रीयडा वाट सकोमल कामिनी रे।
चातक मधुरइ सादिकि प्रीउ प्रीउ उचरइ रे।
वरसइ घण वरसात सजल सरवर भरइ रे॥ ६१
× × ×
प्रवचन वचन विस्तार अरथ तरवर घणा रे।
कोकिल कामिनी गीत गायइ श्री गुरु तणा रे।
गाजइ गाजह गगन गंभीर श्री पूज्य नी देशना रे।
भवियण मोर चकोर थापइ शुभ वासना रे॥ ६३

श्री राग सायकालीन संधि प्रकाश राग कही गई है जिसमें भक्ति एवं निर्वेद की अभिव्यक्ति की जाती है। कवि ने इस राग के अन्तर्गत दक्षिण वन खण्ड के बीभत्स चित्र प्रस्तुत किए हैं, जिन्हें देखकर जिनपालित और जिनरक्षित में निर्वेद भाव जागृत हुआ है।[६८]

षंभायती और सोरठी रागों का प्रमुख रस शृंगार है। इनके वर्तमान नाम क्रमश: खंबावती और सोरठ है।[६९] यद्यपि इन रागों का प्रचलन गुजरात तथा सौराष्ट्र में अधिक है किन्तु राजस्थान में भी इनका प्रचार कम नहीं कहा जा सकता। राजस्थानी का सोरठियो दूहा इसका प्रमाण है।

कुशललाभ ने भी इन दोनों रागो का वर्णन शृंगार के स्थलो पर ही किया है। षंभायती राग का प्रयोग कवि ने 'पार्श्वनाथ दशभव स्तवन' मे और सोरठी का 'भीमसेन हंसराज चौपई' में किया है।

शेष ६ रागों सामेरी (सावेरी), केदार-गौड़ी, गूड़, गोडी, गूडी गुजराती, और धन्यासिरी हुसैनी—का प्रचलन कवि के समय तो प्रचार में रहा होगा, किन्तु अब इनका प्रचलन प्राय: नहीं मिलता। गूड, गोडी और गूडी गुजराती गोडी राग के ही पृथक्-पृथक् भेद हैं। जिसमें गूडी गुजराती का प्रचलन गुजरात प्रदेश तक ही सीमित था। केदार गोडी और धन्यासरी हुसैनी के प्रयोग भी नहीं मिलते, किन्तु केवल धन्याश्री एवं केदार रागों का आज भी शास्त्रीय महत्व है। सामेरी (सावेरी) मुख्यत: १५वीं से १८वी शताब्दी की राग कही गई है, जिसका प्रचलन अब नहीं मिलता। अत: इन रागों की कवि के काव्य में उपस्थिति के विषय में अधिक विस्तृत वर्णन असम्भव ही है।

निष्कर्षत: कवि की छन्द योजना के विषय मे यह कहना उपयुक्त होगा कि उसके छन्द यद्यपि विविध छन्दों के नामकरण से सुशोभित है किन्तु वे सम्बन्धित लक्षण से कुछ स्थलों पर सामंजस्य नहीं करते। इसका कारण लिपिकारो की मनमानी भी सम्भव है। अनेक स्थलों पर तुक मिलाने के लिए भी छन्द में कवि को तोड़-फोड़ करनी पड़ी है। पर गेयता प्रदान कर कुशललाभ ने अपने काव्य को पूर्णता प्रदान की है।

(व) काव्य-दोष

काव्य के मुख्य अर्थ की प्रतीति में जहाँ बाधा उत्पन्न हो, वहाँ काव्य-दोष होता है। बाधा उत्पन्न करने वाले अनेक तत्व सम्भव हैं, यथा शब्दो का गलत प्रयोग, परम्परा विरुद्ध आचरण आदि। इन्हीं बाधक तत्वों के आधार पर हिन्दी एव राजस्थानी के काव्य शास्त्रियों ने विभिन्न प्रकार के दोषों की गणना की है। राजस्थानी में ग्यारह दोष कहे गए हैं—अंध, छबकाल, हीन, निनंग, पांगलौ, जातविरोध, अपस, नाल् छेद, पखतूट, बहरौ और अमगल।[१००] इनमें से अनेक दोष हिन्दी के दोषों से साम्य रखते हैं जिनका आगे विवरण प्रस्तुत किया जाएगा।

काव्य में यद्यपि दोष अनुपेक्षणीय है, किन्तु बचते-बचते भी कहीं-न-कहीं कवि त्रुटि कर ही देता है। इसी त्रुटि का परिणाम है कुशललाभ के काव्य में उपस्थित निम्न-लिखित दोष—

१. **छबकाल् दोष**—जहाँ कविता में राजस्थानी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग होता है, वहाँ छबकाल् दोष माना जाता है, जैसे—

साइणी डाइणी भूत भय, देखि टलइ सहु दूरि।
देह सबल दीपइ सदा, नित नित नवलउ नूर॥

(भी० हु० चौ०, दू० ३८५)

२. **अपस दोष**—जहाँ कविता में क्लिष्टता हो और इस कारण से अर्थ बोध में बाधा पड़े, वहाँ अपस दोष होता है। लक्षण की दृष्टि से यही हिन्दी का क्लिष्टार्थक दोष है, यथा—

(१) वन रिपु तस रिपु, तास रिपु, तस रिपु हार पीअेण,
जाइ तण मूंकी धाहड़ी, तां मूंकी प्री पीअेण॥

(मा० का० क० चौ०, दू० ३०५)

(२) हर हर कहि गुर करि रटो, भणो वेद अणभग।
हुस एण विधि कर हुवै, अखिर छावीसे अंग ।।
(पि० शि०, पृ० ४४)

३. **नालछेद दोष**—काव्य परिपाटी के विरुद्ध मनमाने ढंग से वर्णन करने पर यह दोष होता है, जैसे—

लघु केसरि जेह वीकडि लंक, मलि नरिहत मुष जांणि मयंक
× × ×
रंभा गाभ जिसी जुग जंघ, उदित बिल्व सम उरज उत्तंग ।।
अधर पक्व बिंबा अणुहारि किर पूतली चित्र आकार ।।
(भी० हं० चौ०, चौ० १३३, १३४)

उक्त उदाहरण में कवि ने नायिका का नख-सिख वर्णन किया है। शास्त्रीय परम्परा के अनुसार कवि नख से शिखा की ओर बढ़ता हुआ क्रमशः नायिका के अंग-उपांगों का सौन्दर्य वर्णन करता है। किन्तु यहाँ पर कवि ने कोई क्रम नहीं रखा है। अपनी इच्छानुसार जो अग उसे अच्छा लगा उसी का वर्णन कर दिया। अतः यहाँ यह अपस दोष हुआ।

४. **बहरो दोष**—जहाँ शब्द योजना ऐसी हो कि दुतरफा अर्थ निकले और भ्रम पैदा हो, वहाँ बहरो दोष होता है, उदाहरणार्थ—

भीति लिख्यो देवर भणइ, भाभी भारथ देखि।
निरत करि देव निरखि, रामायण सविसेख।
इंद्रह आसन रवि सुतन, सुग्रीवह भंडार।
अे तीने कीधा अेकठा, कहि सखि कउण विचार ।।
(मा० का० कं० चौ०, दू० २८१, ३१३)

५. **अमंगल दोष**—जब किसी छन्द के किसी चरण के पहले और अन्तिम अक्षर के मिलने से कोई अमगल सूचक शब्द बनता हो, वहाँ अमगल दोष होता है, जैसे—

(अ) मूमइ मूगल बिहु गमा, महा उलक ना मीर।
=मर (श० या० स्त०, गा० ४२)

(आ) ममता तृष्णा जल पूर, मिथ्यात मगर अति क्रूर।
=मर (पू० वा० गी० छन्द १२)

इन दोषों के अतिरिक्त हिन्दी में प्रचलित निम्नलिखित दोष भी कुशललाभ के काव्य में वर्तमान हैं—

१. **ग्राम्यत्व दोष**—जहाँ केवल लोक प्रसिद्ध शब्दों का ही काव्य में प्रयोग हो, वहाँ यह दोष होता है, जैसे—

रे ढांढोंहड छोहरी, करि करहा री कांणि।
झकरड़े डोका चुणे, सो पसु डंभो आण ।।
(ढो० मा० चौ०, दू० ४२२)

पेखी पुत्री साड़ी मांहि, आवी लीधी घणै उछाहि।
रांणी रूप वैक्रिय करी अमृत घविरावी बीकरी॥

(ते० रा० चौ०, चौ० २७६)

२. **अश्लीलत्व दोष**—यह वह दोष है जिसमें व्रीड़ा, जुगुप्सा और अमंगल भावों का आभास हो, यथा—

सुख सेजइ माधव संचरइ, चुंबन दे आलिगन करई।
प्रेम दिखालि कत मन हरइ, कामकंदला इम उच्चरई॥
गिरा पखालण ने सरभरण, नदी हलीलण हार।
सुत्ति सेजे ऐकली, हाय हाय दैव मो मारी॥

(मा० का० क० चौ०, ४)

राजकुमार तिणि वेला रंगि, मदन मंजरि नइ उछंगि।
राजा पासइ रामति करइ, चुंबन दइ अमृत ऊचरई॥

(भी० हं० चौ०, चौ० ३७४)

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कुशललाभ के काव्य में भावपक्ष एवं कलापक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है। सम्पूर्ण काव्य में चमत्कार की अपेक्षा सहजता है। इसका प्रमुख कारण यही कहा जाएगा कि आलोच्य कवि शास्त्रीय केवल लक्षण-ग्रन्थ निर्माण तक ही रहा है। काव्य-सृजन में उसने लोक रंजन को ही अभीप्सित रखा है। उसमें कवित्व सम्बन्धी दुर्बलताएँ भी हैं। काव्य में उपस्थित काव्य दोष इसके प्रमाण हैं।

खण्ड (ग) कथानक रूढ़ियाँ

कथानक रूढ़ि के अनेक पर्याय प्रचलित हैं, यथा—कविसमय, अभिप्राय, काव्य प्ररूढ़ि, काव्य-प्रसिद्धि इत्यादि। हमारे अनुसार 'कथानक रूढ़ि' पद ही उपयुक्त है। कारण, रूढ़ि का अर्थ परम्परामुक्त एव लोक-प्रसिद्ध का होना है। उसी प्रसिद्ध अर्थ अथवा विचार को कवियों द्वारा क्रमशः अपनी रचना के कथानक में ग्रहण करना कथानक रूढ़ि है। कथानक-निर्माण में इन रूढ़ियों के निम्नलिखित मुख्य प्रकार्य होते हैं—

१. ये कथाओं में घटना-व्यापार को त्वरा प्रदान करती हैं।

२. श्रोताओं अथवा पाठकों की उत्सुकता की वृद्धि करती हुई कथा को अधिक रोचक एव सरसता प्रदान करती हैं।

३. संकेतों के माध्यम से कथा को अभीप्सित मोड़ देते हुए इष्ट प्रभाव उत्पन्न करती है।

कथानक रूढ़ियो के उद्गम के सम्बन्ध में अनेक मान्यताएँ प्रचलित है, किन्तु मुख्य रूप से ये दो प्रकार की हैं—१. लोक विश्वासों पर आधारित और २. कवि कल्पित। प्रथम प्रकार की कथानक रूढ़ियो का आधार समाज में प्रचलित लोक विश्वास एवं मान्यताएँ हैं, जबकि द्वितीय कवि की कल्पना से सम्बन्धित हैं।

कुशललाभ लोक कवि है। अतः उनके साहित्य में उपलब्ध अधिकांश कथानक रूढ़ियों का आधार लोक मे प्रचलित विश्वास हैं। उनकी ऐसी कुछ कथानक रूढ़ियाँ ये हैं—

१. नायक का अति प्राकृतिक रूप में जन्म— भारतीय समाज में पुत्र सन्तान वश वृद्धि एव मोक्ष-प्राप्ति की प्रतीक है। इसकी प्राप्ति के लिए यहाँ के जनसमाज और राजाओं ने पुत्र की प्राप्ति के लिए अनेक ऋषियो और तांत्रिकों की शरण ली। आज भी पुत्र की अभिलाषा रखने वाले अनेक परिवार इस कोटि के विश्वासों से मुक्त नहीं है।

कुशललाभ की प्रायः सभी रचनाओं में इस रूढ़ि का प्रयोग हुआ है। 'माधवानल कामकदला चौपई' मे पुरोहित शकरदास पुत्र-प्राप्ति के लिए अनेक पूजा-पाठ करता है, मनौतियाँ मानता है। इन्ही के परिणामस्वरूप उसे शकर के वीर्य से उत्पन्न सौन्दर्यशाली पुत्र (माधव) की प्राप्ति गगा के झुरमुट में होती है।[१०१] राजा नल भी पुत्र के अभाव में अनेक मनौतियाँ मानता है। अन्त मे किसी परदेसी द्वारा पुष्कर की 'जात' (यात्रा) करने की मनौती लेने पर उसे ढोला नामक पुत्र की प्राप्ति होती है।[१०२] तेजसार रास का जन्म भी दीपदान प्रज्वलन के फलस्वरूप हुआ है।[१०३] इसी भाँति का अतिप्राकृतिक जन्म 'भीमसेन हंसराज चौपई' के हंसराज का है।[१०४]

स्टिथ थॉमसन की पुस्तक 'फॉकटेल' में दी गई अनुक्रमणिका मे इस कथानक रूढि का स्थान T वर्ग मे प्रविष्टि सख्या 500-599 पर जन्म-सम्बन्धी रूढ़ि शीर्षक पर अकित है।

२. मृत व्यक्ति का मंत्रादि शक्तियों द्वारा जीवित हो जाना—जिजीविषा से प्राप्त तथा मृत्यु को पराजित करने की भावना से इस रूढि की अभिव्यक्ति लोक कथाओ और शिष्ट कथाओ मे समान रूप से हुई है। जिजीविषा की पूर्ति कवि ने कभी अति-मानवीय शक्तियो को सहायक बनाकर की है तो कभी 'रामचरित मानस' मे हनुमान द्वारा बूटी के लाने के प्रसग से तुलना करके अमृत, मृत संजीवनी औषधि अथवा मत्रादि के द्वारा उसने मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की चर्चा की है।

कुशललाभ विरचित 'माधवानल कामकंदला चौपई' मे वेताल पाताल लोक से अमृत लाकर माधवानल और कामकदला को पुनर्जीवित करता है।[१०५] 'ढोला मारवणी चौपई' में पीवणे सर्प द्वारा डसी गई मारवणी को घटनास्थल पर उपस्थित योगी मत्र एवं औषधि द्वारा पुनर्जीवित करता है।[१०६] अगड़दत्त रास[१०७] और 'भीमसेन हंसराज चौपई'[१०८] में विद्याधर तथा तापस मदनमजरी को अपने मत्रादि द्वारा जीवित करते हैं। इस रूढ़ि का मुख्य ध्येय कथा को बनाना है। थॉमसन की तालिका में यह रूढ़ि E वर्ग में 'पुनर्जीवन' शीर्षक के अन्तर्गत EO-E 199 प्रविष्टि सख्या पर अकित है।

३. रूप परिवर्त्तन द्वारा लड़ाई—निजन्धरी कथाओं में मंत्र-विद्या के द्वारा राक्षस, व्यतर आदि अदिव्य पात्रों के साथ नायक के रोमांचक युद्ध का भी वर्णन मिलता है। यह रूढि आदिम मनुष्य के मनोविज्ञान पर आधारित है।[१०९] कुशललाभ कृत 'तेजसाररास चौपई' में तेजसार और विद्याधर का अपनी-अपनी विद्याओं द्वारा रूप बदलकर युद्ध करना,[११०] 'महामाई दुर्गा सातसी'[१११] में देवी और राक्षसों के विविध रूप

परिवर्तन करके युद्ध करना वर्णित है। थॉमसन की सूची में इस कथानक रूढ़ि को 'रूपान्तरण के प्रकार' शीर्षक के अन्तर्गत D400-D499 प्रविष्टि संख्या पर रखी जा सकती है।

४. **आकाश-गमन**—यह भी आदि मानवीय प्रवृत्तियों से सम्बद्ध रूढ़ि है। कुशललाभ के जैन कथानक विषयक काव्यों-तेजसार रास चौपई, अगड़दत्तरास—में इस रूढ़ि का प्रयोग देखा जा सकता है।

५. **शाप**—आदिम मानव के धर्म भीरु एवं अनहोनी के प्रति विश्वास के कारण शाप अथवा भय भी कथानक रूढ़ि बन गया है। कामकंदला को शाप दो बार भोगना पड़ा है—आरम्भ मे जयन्ती-रूप में शिला बनने का शाप मिलता है और दूसरी बार मृत्युलोक में वेश्या बनने का।[११२] 'ढोला मारवणी चौपई' का ऊँट भी शाप के भय से ही अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करता है।[११३]

६. **भविष्यसूचक स्वप्न**—यह रूढ़ि प्रत्यक्षतः मनोवैज्ञानिक है। स्वप्न मानसिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में अतृप्त वासनाओं की पूर्ति होती है। चरक, वराहमिहिर, मार्कण्डेय, पाराशर, बृहस्पति आदि विद्वानों की कृतियो मे प्रतीक पद्धति द्वारा स्वप्न के अनुसार उसके फल का वर्णन मिलता है। आधुनिक पाश्चात्य विद्वान फ्रायड, जुंग, स्पेंसर प्रभृति ने भी इस सत्य को स्वीकारा है। यह विश्वास प्रचलित है कि रात्रि के अन्तिम प्रहर मे देखा हुआ स्वप्न शीघ्र फल देने वाला होता है।[११४] कुशललाभ रचित 'ढोला मारवणी चौपई' में ढोला के पूंगल आने के दिन की पिछली रात्रि को मारवणी द्वारा स्वप्न में देखने का उल्लेख है।[११५] स्टिथ थॉमसन की तालिका मे इस रूढ़ि का स्थान 'भविष्य-वाणियाँ' शीर्षक के अन्तर्गत M 300-M 399 प्रविष्टि सख्या पर अंकित है।

७. **पुनर्जन्म एवं कर्मवाद का फल**—इस रूढ़ि का मूल आधार आत्म संरक्षण की प्रवृत्ति है। अपनी इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप मानव भौतिक सीमाओं को लांघकर असीम और अनन्त ईश्वर की कल्पना करता है। हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि भारतीय धर्मों में आत्मा के कर्म बन्धन मे बँधकर नाना योनियों मे भटकने की बात कही गई है। कालांतर में यही लोकविश्वास पुनर्जन्म सम्बन्धी रूढ़ियों में परिवर्तित हो गया।

कुशललाभ के साहित्य मे इस रूढ़ि के दो रूप मिलते हैं—(१) नायक अथवा नायिकाओं द्वारा पुनर्जन्म को अपने पूर्वजन्म के कर्म फलों का परिणाम स्वीकार करना तथा (२) नायक अथवा नायिका को पूर्वजन्म मे घटित घटनाओं के आधार पर वर्तमान स्थिति का ज्ञान होना। 'माधवानल कामकंदला चौपई' में कामकदला शाप को अपने पूर्व-जन्म का फल स्वीकार करती है।[११६] 'ढोला मारवणी चौपई' में भी ढोला मारवणी के विरह को उसके पूर्वजन्म का ही फल मानता है।[११७] ये दोनों प्रसंग इस रूढ़ि के प्रथम रूप के उदाहरण हैं। इसी प्रकार कामसेन की सभा में नृत्य करती हुई कामकदला के कुचों का भ्रमर द्वारा दंशन की घटना से कदला को माधव की अनुभूति[११८] एवं 'पार्श्वनाथ दशभव स्तवन' मे हाथी के रूप में मरुभूति का जातिज्ञान[११९] द्वितीय रूप के उल्लेखनीय प्रसंग हैं।

८. **अप्सराओं का नायिका रूप में अवतरण**—समाज मे प्रचलित अज्ञान ने वेदों में प्राप्त वैज्ञानिक रूपकों को, पुराणों की कथा में मिले मानवीकरण के आधार पर

अप्सरा की कल्पना को वास्तविक रूप दे दिया। उन्होंने इन्द्रलोक की कल्पना की और अप्सराओं को वहाँ की वेश्याओं के रूप मे स्वीकारा। कुशललाभ की 'माधवानल काम-कंदला चौपई' की कामकदला मूलत: इन्द्रलोक की अप्सरा जयन्ती है, जो शापवश कामावती नगरी में जन्म लेती है।[१२०] इस रूढ़ि का प्रयोग कवि की अन्य रचनाओं में नहीं मिलता। स्टिथ थॉमसन की सूची में इस रूढ़ि का स्थान अप्सराएँ शीर्षक में F वर्ग में F 200-F 399 प्रविष्टि संख्या पर अंकित है।

६. **वन में नायक का मार्ग भूलना**—कथा को नवीन मोड़ देने तथा उसमें चमत्कार द्वारा कुतूहल की अवतारणा के उद्देश्य से इस रूढ़ि का उपयोग किया जाता है। इस रूढ़ि मे नायक मार्ग भूल कर या तो वहाँ उपस्थित सुदरी के साथ चला गया है अथवा उसने कोई रोमांचक कार्य किया है। कुशललाभ के साहित्य मे ये दोनों ही रूप उपलब्ध है। 'तेजसार रास चौपई' का नायक तेजसार मार्ग भटकता हुआ व्यतरी के आवास-स्थल पर पहुँचता हैं। वहाँ वह विजयश्री की चारों बहनों के साथ विवाह करके उनका उद्धार करता है।[१२१] 'भीमसेन हसराज चौपई' में हसराज घोड़े की दौड़ में बीहड़ वन में मार्ग भटक गया है। वहाँ वह वानर के द्वारा मना करने पर भी भयानक सिंह को मारकर अन्य वन्य पशुओं का उद्धार करता है।[१२२] 'अगड़दत्त रास' मे भी नायक मार्ग भूलता है।[१२३] थॉमसन की तालिका के अनुसार इस रूढ़ि का स्थान F वर्ग में F 700-F 899 प्रविष्टि संख्या मे 'असाधारण स्थान' शीर्षक पर अंकित है।

१०. **सौतिया डाह**—सौत के प्रति ईर्ष्या नारी का सहज स्वभाव है। यह रूढि नारी की ईर्ष्याजनित भावना के साथ ही विवाह की पवित्रता की ओर भी संकेत करती है। कुशललाभ की 'ढोला मारवणी चौपई' एवं 'भीमसेन हसराज चौपई' में इस रूढ़ि का प्रयोग हुआ है। धार नगरी का राजा जैसे ही अपनी पुत्री कनकवती के साथ विवाह का प्रस्ताव भीमसेन के साथ करता है— मदनमजरी सौतिया डाह की कल्पना मात्र से व्याकुल हो उठती है। वह तुरन्त अपने स्वामी के समक्ष अमर फल प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करती है।[१२४] 'ढोला मारवणी चौपई' मे मालवणी ढोला का मारवणी के प्रति प्रेम की जानकारी पाते ही हर दिशा में पहरेदार नियुक्त कर देती है। थॉमसन की तालिका में 'सामाजिक-सम्बन्ध' शीर्षक के अन्तर्गत P 300-P 399 प्रविष्टि संख्या पर इस रूढ़ि को अंकित कर सकते है।

११. **कुलटा स्त्री का पति अथवा प्रेमी को धोखा देना**—भारतीय साहित्य में इस प्रकार की अनेक कहानियाँ मिलती हैं, जिनमें स्त्री ने अपने पति अथवा प्रेमी को धोखा देकर अन्य सम्बन्धी अथवा नौकर से विवाह कर लिया है। इन प्रसंगों में नायिका छिपकर अपने नये प्रेमी से मिलने को गई है। आहट पाते ही नायक ने पत्नी अथवा प्रेमिका के रहस्य का पता लगाया है। इस रूढ़ि का जैन कवियों ने चरित्र की महानता के उद्देश्य की प्राप्ति की है।

कुशललाभ कृत 'अगड़दत्त रास' में जब मदनमंजरी एक रात्रि को खण्डहर में से उठकर जाती है, तब अगड़दत्त उसका रहस्य प्राप्त करने के लिए उसका पीछा करता है। इस घटना के उपरान्त मदनमंजरी छल द्वारा अगड़दत्त पर वार करती है, तो छिपे हुए

चारों चोर इस घटना से नैतिक आचरण ग्रहण करते हैं। चारों चोर उसके साथ विवाह करने का विचार त्यागकर श्रावक बन जाते हैं।[१२५] थॉमसन की तालिका में इस रूढि का उल्लेख Z वर्ग में 'अनोखे अभिप्राय' शीर्षक के अन्तर्गत EZ 300-EZ 399 प्रविष्टि संख्या पर अंकित किया गया हैं।

१२. नायिका को अकेली पाकर उसका अपहरण—यह रूढि महाभारत एव रामायण में भी मिलती है। इसी परम्परा को कवि ने 'तेजसार रास चोपई' मे ग्रहण किया है। तेजसार विजयश्री को सोता हुआ छोड़कर एणामुखी पर आसक्त होकर उसका पीछा करता है, व्यंतरियाँ विजयश्री का अपहरण उसे अपनी अटवी में ले जाती है। वहीं तेजसार चार अन्य व्यंतरियों से विवाह करके विजयश्री को पुन: प्राप्त करता है।[१२६] थॉमसन की तालिका में 'दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ' शीर्षक के अन्तर्गत N 300-N 399 प्रविष्टि संख्या पर इस रूढ़ि का अंकन हुआ है।

१३. दो भाइयों का कथा तन्तु—दो भाइयों अथवा नायक और सहायक की रूढ़ि विश्व की प्राय: सभी लोककथाओं में उपलब्ध है। केवल स्टिथ थॉमसन को ही 'फॉकटेल्स' के सम्पादन के समय इसके ११०० उदाहरण प्राप्त हुए थे। इस रूढ़ि का मूल रूप इन्द्र-उपेन्द्र, अश्विनी बंधु की वैदिक कहानियों एव राम-लक्ष्मण, कृष्ण-बलराम की महाकाव्यकालीन कहानियों में सुरक्षित है। साहित्य में यह रूढ़ि तीन रूपों में प्रकट हुई है —

(१) राजा के मंत्री-पुत्र का अभिन्न मित्र के रूप में उसकी सहायता, उससे सहयोग और परामर्श करना,

(२) राम-लक्ष्मण और अश्विनी कुमारों की कथा का रूप, जिनमें दोनों भाई अनेक साहसिक कार्य करते हैं, और

(३) जन्म के वैरी भाइयों का अन्य जन्मों मे भी वैरी रूप में जन्म।

कुशललाभ के काव्य में ये तीनों रूप उपलब्ध हैं। प्रथम रूप की कृति है—'भीमसेन हसराज चोपई'। यहाँ भीमसेन के मत्री सुमति का पुत्र हितसागर उसका परम मित्र है। उसी के परामर्श से वह मदनमजरी से विवाह का अभियान करता है। इस रूढ़ि का दूसरा रूप कवि की 'जिनपालित जिनरक्षित संधि गाथा' में मिलता है। किन्तु जैन प्रभाव के कारण कवि ने जिनरक्षित को विपरीत आचरण करवाकर व्यंतरी के माया-जाल में डाल दिया है और जिनपाल को धर्म का आदर्श पुरुष बना दिया है।[१२७] इस आरम्भ में यहाँ दोनों भाई साहसिक कार्य करने निकले हैं, पर अन्त मे वे पृथक् हो गए हैं। अत: यहाँ डॉ० सत्येन्द्र[१२८] के अनुसार भाई आपस में सुन्दरी के विवाह में सार्थक न होकर अवरोध रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

कुशललाभ कृत 'पार्श्वनाथ दशभव स्तवन' मे इस रूढि का तीसरा रूप देखा जा सकता है। यहाँ कमठ अपने छोटे भाई मरुभूति की पत्नी के साथ प्रथम भव (जन्म) में व्यभिचार करके अन्य दसों भवों में उसका दुश्मन बना रहता है।[१२९]

१४. नायिका की चिता के साथ नायक के जल मरने का निर्णय—प्राय: कथाओं में पति की मृत्यु पर पत्नी अपने सतीत्व की रक्षा के लिए उसकी चिता के साथ जलती

रही है। किन्तु कुशललाभ के साहित्य में इसका विपरीत रूप वर्णित हुआ है। यहाँ 'ढोला मारवणी चौपई' में इस विपरीत रीति की ओर सकेत करते हुए योगिनी ने ढोला को कहा है—

> जोगणि ढोलो प्रते उचरे, कायरे कायर फोकट मरे।
> प्री पूठ अस्त्री परजले, नारी पूठे पुरष नवी बले ।।
> ज्यां ते मांडी अवली रीत, वात न वेसे ढोला चीत।
>
> (चौ० ६२४-२५)

प्रेम की दृढता और समर्पण के कारण नायक का नायिका के साथ जल मरने का उल्लेख कवि की 'भीमसेन हसराज चौपई[130] एव 'अगड़दत्तरास'[131] मे भी हुआ है। इस रूढ़ि को थॉमसन की तालिका मे 'चरित्र की विशेषताएँ' शीर्षक के अन्तर्गत W 200-W 299 प्रविष्टि पर अंकित कर सकते हैं।

१५. प्रेम परीक्षा—इस रूढ़ि के अनुसार मध्यस्थ व्यक्ति नायक-नायिका के दृढ प्रेम की परीक्षा करता है। कई बार नायक अथवा नायिका की मृत्यु के पश्चात् उसी रूप-गुण वाली नायिका के साथ नायक के विवाह का प्रस्ताव रखकर उसकी प्रेम-निष्ठा की परीक्षा ली जाती है। पार्श्वनाथ चरित, मैनासत, वीसलदेव रास आदि रचनाओं में यह परीक्षा कुट्टनी प्रसंग लाकर की गई है।

कुशललाभ ने उक्त दोनो ही रूपो को अपने साहित्य मे स्थान दिया है। विरही माधव को विक्रमादित्य कदला के समान ही उसकी इच्छानुसार अन्य कन्या से विवाह करवाने का आश्वासन देता है।[132] किन्तु माधव इसे तनिक भी स्वीकार नही करता। वस्तुत. कामकदला की प्राप्ति ही उसका चरम है।[133] ऐसा ही आश्वासन मारु की मृत्यु के उपरान्त प्रलाप रत ढोला को उसके साथी देते हैं। मारवणी से तीन वर्ष छोटी बहन चम्पा के साथ विवाह का प्रस्ताव वे ढोला के समक्ष रखते है, परन्तु ढोला इस प्रस्ताव को स्वीकार नही करता।[134] थॉमसन की तालिका में इस रूढ़ि H वर्ग मे 'चरित्र की परीक्षा' शीर्षक में H 1550-H 1569 प्रविष्टि सख्या पर अंकित की जा सकती है।

१६ शुक रूढ़ि—शुक-शुकी को प्रेम-कथानकों मे प्राचीनकाल से ही स्थान मिलता रहा है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी इस रूढि को साहित्य मे इन तीन रूपों मे पाते हैं—

(क) कहानी कहने-सुनने वाले वक्ता-श्रोता के रूप मे,

(ख) कथा की गति को अग्रसर करने वाले सदेशवाहक या प्रेम-संघटक के रूप मे,

(ग) कथा के रहस्यो को खोलने वाले अनपराद्ध भेदिया के रूप मे।[135]

कुशललाभ के साहित्य में शुक अपने उक्त वर्णित द्वितीय रूप मे सहायक हुआ है। 'ढोला मारवणी चौपई' मे ढोला के पूगल-गमन के बाद मालवणी ने अपना विरह-सदेश शुक के साथ ही ढोला के पास भेजा है।[136] मदनमंजरी भी अपना प्रणय निवेदन-पत्र शुक के साथ ही भीमसेन के पास भेजती है।[137]

१७. दोहद कामना—दोहद-कामना से तात्पर्य गर्भवती स्त्री की अभिलाषाओं

से है। पेंजर ने 'दोहृद' शब्द का तात्पर्य दो हृदय अर्थात् ऐसी नारी जिसके दो हृदय हो और जिसकी दो इच्छाएँ हों—एक अपनी और दूसरी बालक की, से माना है।[१३८] यह अर्थ राजस्थानी में गर्भवती स्त्री के लिए प्रयुक्त 'दो जीवां' शब्द के अनुरूप है। ऐसी मान्यता है कि गर्भवती स्त्रियों की अनेक इच्छाएँ होती हैं, जिनकी पूर्ति करना पति के लिए आवश्यक है। ये इच्छाएँ कई बार असामान्य होती हैं। अतः पति को कष्ट मय स्थिति में देखना ही इस रूढ़ि का उत्स है। डॉ० ब्लूम फील्ड ने गर्भवती नारी की अभिलाषा (दोहद कामना) सम्बन्धी रूढ़ि के ६ रूप प्रस्तुत किए हैं—

(क) दोहद अभिप्राय में नारी या तो स्वयं अपने पति को घायल करती है या उसकी यह मनोवृत्ति होती है कि पति संकट-ग्रस्त हो;

(ख) दूसरे रूप में नारी अपने पति को कुछ साहसिक कार्य सम्पन्न करने, असाधारण दक्षता दिखाने को प्रोत्साहित करती है;

(ग) दोहद में पवित्र नारी पवित्र भावनाओ से युक्त पवित्र कार्य सम्पन्न करने के लिए लालायित रहती है;

(घ) दोहद का चौथा रूप किसी आख्यान में कृत्रिम घटना के रूप में प्रयुक्त होता है, जो आख्यान की मुख्य घटना को प्रभावित नही करता;

(ङ) दोहद में गर्भवती नारी किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अथवा अपनी कोई अभिलाषा की पूर्ति के लिए लालायित रहती है;

(च) दोहद अभिप्राय के छठे रूप में गर्भवती नारी को बड़ी चतुरतापूर्ण कार्य से यह विश्वास दिलाया जाता है कि उसकी अभिलाषा पूर्ण की जा रही हैं।[१३९]

इनमें से पाँचवें रूप का उल्लेख कुशललाभ की 'भीमसेन हंसराज चौपई' में हुआ है। मदनमजरी सौत की आशका से अपने पति से अमर फल प्राप्त करने का प्रस्ताव करती है। कनकवती की माता व्यंतरी हंसिनी से अमर फल प्राप्त करके उसकी अभिलाषा को पूरा करती है।

१८. नायिका द्वारा नायक का अवरोध—इस रूढि के अनुसार आगत विरह-व्यथा से बचने के लिए नायिका नायक को अनेक प्रलोभन तथा यात्रा के अनेक सकटों का ब्यौरा प्रस्तुत कर नायक का प्रस्थान स्थगित करवाती है। निजन्धरी कथाओं मे नायक को भय दिखाकर भी इस रूढ़ि की पूर्ति की है। कुशललाभ रचित 'जिनपालित जिनरक्षित सन्धि गाथा' इस रूप का प्रमाण है। यहाँ व्यतरी दोनों सेठ पुत्रो को अपना विकराल रूप दिखाकर उन्हे मार्ग मे रोकती है।[१४०] इसके विपरीत 'स्थूलिभद्र छत्तीसी'[१४१] में कोशा अपनी चित्रशाला की सजावट एव वर्षा-ऋतु की मादकता का लालच देकर स्थूलिभद्र के संन्यासी रूप का अवरोध करती है। 'ढोला मारवणी चौपई' में मालवणी ढोला का अवरोध किले के विभिन्न दिशा-द्वारों पर पहरे लगा कर करती है।

१९. चौंसठ योगिनियों सम्बन्धी रूढ़ि—इस रूढि का प्रयोग कवियों ने मूलतः युद्ध भूमि के बीभत्स वातावरण को बताने के लिए किया है। कुशललाभ के साहित्य में भी मुख्य रूप से युद्ध-प्रसग सिद्धियों की पूर्तिवश इस रूढ़ि का प्रयोग हुआ है। 'तेजसार रास चौपई' में ६४ योगिनियों द्वारा गंगदत्त ओझा की पत्नी व्यंतरी अपनी सिद्धि प्राप्त

करना चाहती है।[१४२] जबकि 'महामाई दुर्गा सातसी'[१४३] आदि ग्रन्थों में इस रूढ़ि का उपयोग युद्धमय वातावरण की सृष्टि के लिये किया गया है।

विध्वंसक कार्यों की सिद्धि की भाँति ही कल्याण की प्राप्ति के लिए भी देवी-सम्बन्धी रूढ़ि का प्रयोग अनन्त काल से साहित्य में उपलब्ध है। 'मार्कण्डेय पुराण' में असुरों के अत्याचार पर सभी देवताओं द्वारा देवी की स्तुति करने का उल्लेख है।[१४४] कुशललाभ ने इसका विस्तृत विचेचन 'महामाई दुर्गा सातसी' में किया है। विष्णु पुराण में रावण से विजयी होने की इच्छा से राम ने शक्ति की उपासना एक हजार आठ नील कमलों द्वारा की है। कुशललाभ के काव्य में देवी सम्बन्धी यह रूढ़ि लोक कथाओं के माध्यम से आई है। कवि ने इस सन्दर्भ मे देवी को हिंगुलाज, हरसिद्धि, मरुदेवी, जैन माता आदि नामो से पुकारा है। देवी का सिद्धात्मक रूप कुशललाभ की माधवानल कामकदला चौपई, भीमसेन हसराज चौपई, शत्रुंजय यात्रा स्तवन आदि रचनाओं मे भी प्रयुक्त हुआ है।

२०. मार्ग में नायक अथवा पात्र को सरोवर, महल, योगी का मिलना और उनका श्रावक बनना—यह मूलतः जैन निजन्धरी कथाओं की रूढ़ि है। स्टिथ थॉमसन के अनुमार इसे हम 'चरित्र की परीक्षा' सम्बन्धी शीर्षक मे स्थान दे सकते हैं। इस रूढ़ि का प्रयोग कवि की तेजसार रास चौपई, अगड़दत्त रास, भीमसेन हसराज चौपई, जिनपालित जिनरक्षित सन्धि गाथा आदि कृतियों में हुआ है। इनमें नायक ने पहले अपने पिता को किसी मुनि के पास दीक्षित किया है, तत्पश्चात् स्वयं ने वैराग्य की दीक्षा ली है। इसका मूल कारण भारतीय सामन्तीय समाज मे प्रचलित उत्तराधिकार-प्रथा का सरक्षण कहा जा सकता है।

२१. वन विशेष अथवा दिशा विशेष में जाने का निषेध—इस रूढि का मूल वर्जित कक्ष या फल है।[१४५] इसके अनुसार नायक अथवा नायिका वर्जित कक्ष मे या स्थल पर जाते है और वहाँ या तो किसी के प्रेम मे पड़ जाते है या किसी संकट में फँस जाते है। कुशललाभ की रचना 'जिनपालित जिनरक्षित सन्धि गाथा' मे वर्णन है कि जिनपालित और जिनरक्षित 'दक्षिण वन खण्ड' की ओर न जाएँ।[१४६] किन्तु एक दिन दोनो भाई साहस करके वहाँ पहुँचते है। जहाँ वे बीभत्स वातावरण को देखकर अत्यन्त दुखी होते हैं। कवि की 'भीमसेन हंसराज चौपई' मे भी वानर कुमार हंस को सिंह के भय से वन में नही जाने देता।[१४७]

२२. इन्द्र महोत्सव की रूढ़ि—भारतीयों का उनके देवी-देवताओं, पर्व-त्योहारों के प्रति अटूट आस्था रही है। इसी आस्था की परिचायक यह रूढि है। कुशललाभ की माधवानल कामकंदला चौपई, भीमसेन हंसराज चौपई, शत्रुंजय यात्रा स्तवन, नवकार छन्द, गौडी पार्श्वनाथ छन्द आदि रचनाओ में इस रूढि का उपयोग हुआ है। 'माधवानल कामकदला चौपई'[१४८] एवं 'भीमसेन हंसराज चौपई'[१४९] में इस अवसर पर नृत्यादि के आयोजन का उल्लेख है तथा शत्रुंजय यात्रा स्तवर में इन्द्र के महत्त्व की ओर सकेत हुआ है—

'सहु संघ समुच्यइ तिहां पहिरी इंद्रमाल।'

इन कथानक रूढ़ियों के अतिरिक्त कुशललाभ के साहित्य में निम्नलिखित कथानक रूढ़ियों का भी प्रयोग हुआ है—

नायक के स्पर्श से पाषाण रूप नायिका का उद्धार एवं प्रेम स्फुरण (माध० काम० चौ०); अंग स्फुरण (ढो० मा० चौ०, भी० हं० चौ०, पिंगलशिरोमणि); पक्षियों का दाईं ओर से बोलना अथवा दर्शन (भी० हं० चौ०, श्री पार्श्व० स्त०, श्री पूज्यवाहण गीत); सांकेतिक भाषा (ढो० मा० चौ०); कन्या का दूर देश में विवाह के अवरोध की रूढ़ि (ढो० मा० चौ०, भी० हं० चौ०); पर पुरुष सहोदर (तेज० रा० चौ०); सिद्धि की अवरोधक रूढ़ियाँ (माध० काम० चौ०, ढो० मा० चौ०, भी० हं० चौ०); संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ कोई न देखता हो (तेज० रा० चौ०, अग० रास); इष्ट वर की प्राप्ति के लिए शिव गौरी पूजन (ढो० मा० चौ०, भी० हं० चौ०); रूप-गुण-श्रवण जन्य आकर्षण (ढो० मा० चौ०, माध० काम० चौ०); सम्भोग क्रीड़ा से पूर्व सखियों का सहयोग (ढो० मा० चौ०), जल केलि एवं रमण की रूढ़ि (ढो० मा० चौ०, भी० हं० चौ०); काम क्रीड़ा के उपरान्त प्रहेलिका आयोजन (माध० काम० चौ०); प्राण देने की धमकी (भी० हं० चौ०); नखसिख वर्णन की रूढि (प्रायः सभी रचनाएँ); दूर प्रान्त में प्रज्वलित नागमणि दर्शन (भी० हं० चौ०); राक्षस और नायक युद्ध एवं राक्षसों में सूर्य की ओर देखने की शक्ति का अभाव (ते० रा० चौ०), सात समुद्रों की रूढ़ि (माध० काम० चौ०); पारिवारिक कलह के कारण राजा का सन्यासी बनना (भी० हं० चौ०); स्वप्न में प्रिय दर्शन एवं उपालम्भ (माध० काम० चौ, ढो० मा० चौ०); योगी द्वारा ६८ तीर्थों की यात्रा (भी० हं० चौ०) इत्यादि।

इस प्रकार कथानक रूढ़ियों के माध्यम से कवि ने अपने साहित्य में जहाँ चमत्कार एव सरसता का संचार किया है, वही कथा-प्रवाह को भी पर्याप्त गति दी है। तेजसार रास चौपई, अगड़दत्त रास, भीमसेन हंसराज चौपई, जिनपालित जिनरक्षित सन्धि गाथा आदि लघु कथानक काव्यों मे इन रूढ़ियों द्वारा कथा को विस्तार मिला है। कवि द्वारा प्रयुक्त इन कथानक रूढियों द्वारा तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं, स्थितियों का जहाँ उद्घाटन हुआ है, वही रचनाओं को रोचकता, सरसता, प्रवाह एवं काव्यत्व भी प्राप्त हुआ है।

सन्दर्भ

१. जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १३२-१३३
२. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, स्थूलिभद्र छत्तीसी, ग्रन्थ ४२०६
३. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थ २६५४४६, तेजसार रास चौपई।
४. भण्डारकर प्राच्य विद्या मन्दिर, ग्रन्थ ६०५, अगड़दत्त रास।
५. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थ २७२६६, जिनपालित जिनरक्षित संधि गाथा।
६. अभय जैन ग्रन्थ, बीकानेर, ग्रन्थ छंद ६-११
७. ढोलो मारू एकठा, करे कतूहल केल।

जांणे चंदन रूपड़े, चढ़ीत नागर वेल ।। —डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० ५८०

८. नाद विनोद गीत नाटिक रस, करइ कतूहल केलि ।
उचित दांन याचक नइ आपइ, मन गमता नर मेलि ।।
—एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ग्रन्थ ला० द० १२१७, चौ० ५८

९. आ० का० म०, मौ० ७, पृ० ६३-६६

१०. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० ३२-३३

११. वही, पृ० ८४६

१२. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ० ।

१३. कीर सन्यासी जे परि कही, मदनमंजरी ते संग्रही ।
पूरव भव सनेह प्रमाण, कुमरी ते वर कीयउ प्रमांण ।।
—एल० डी० इस्टी०, अहमदाबाद, ग्रन्थ ला० द० १२१७, चौ० ८४

१४. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ०, चौ० ३४५-३६५

१५. डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ४२७-४४६

१६. सर्प डंक दीधइ षडहड़ी, अगड़दत्त नइ घोलह पड़ी ।
कुमर करइ तव हाहाकार, है है दैव हूउ निरधार ।
—भ० प्रा० वि० मं०, पूना, ग्रन्थ ६०५, अग० रास, चौ० २५१-५२

१७. डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ६०३-६१५

१८. भीम महिपति इस भणइ, न मिलइ जो नारि ।
तउ हूं पावक तनु दहू नरहूं इणि संसार ।। —एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद,
ग्रन्थ ला० द० १२१७, भी० हं० चौ०, चौ० २०८

१९. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० क० चौ०, चौ० ५७६-६०२

२०. वही, चौ० ४०८

२१. अभिलाषश्चिन्तास्मृति गुण कथनो द्वेगसंप्रलापाश्च ।
उन्मादेऽथ व्याधिर्जड़ता मृतिरिति दशात्र कामदशा: ।।
—टीकाकार शालग्राम शास्त्री, अध्याय ३, श्लोक १९०

२२. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम भाग, पृ० ७७९

२३ चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, काव्य प्रकाश, चतुर्थ उल्लास, पृ० १६४

२४. डॉ० रामसागर जैन, हिन्दी जैन भक्ति—काव्य और कवि, पृ० ४१०

२५. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, ग्रन्थ ७७४४, श० या० स्त० ।

२६. एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ग्रन्थ ला० द० १२१७, भी० हं० चौ० ।

२७. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्र० २६५४६, ते० रा० चौ० ।

२८. भ० प्रा० वि० म०, पूना, ग्रन्थांक ६०५, अगड़दत्त रास ।

२९. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्र० २७२६७, जि० जि० सं० गा० ।

३०. स्वं स्वं निमित्तमासाथ शान्ताद्भाव: प्रवर्तते ।
पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते ।।
—गायकवाड़ सीरीज, भाग LXVIII, भरत नाट्य शास्त्रम्, ६।१०८

३१. डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०।
३२. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६, ते० रा० चौ०।
३३. एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ग्रन्थ ला० द० १२१७; भी० हं० चौ०।
३४. अनू० संस्कृ० लाय०, बीकानेर, ग्रन्थ ६८ (ब), म० दु० सा०।
३५. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ०, चौ० ३४९-३५७
३६. वही, चौ० ५९०-५९३
३७. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थांक २६५४६, ते० रा० चौ०।
३८. (क) वही
    (ख) डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०।
३९. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ०।
४०. भ० प्रा० वि० मं०, पूना, ग्रं० ६०५, अग० रास।
४१. (क) आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ०, चौ० १०३
    (ख) रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थ २६५४६, ते० रा० चौ०।
    (ग) वही, ग्रन्थ २७२६७, जि० जि० सं० गा०।
४२. (क) आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ०।
    (ख) ते० रा० चौ०।
    (ग) ढो० मा० चौ०।
    (घ) भी० हं० चौ०।
४३. ते० रा० चौ०।
४४. डॉ० भगवतीलाल शर्मा, ढो० मा० रा दू० में का० सौ० संस्कृ० एवं इति०; पृ० २६३
४५. सं० मोहनलाल दलीचन्द देसाई, आनन्द काव्य महोदधि, मौ० ७, चौ० ३६७-३७०
४६. आ० का० म०, मौ० ७, पृ० ३६, छ० १५२; पृ० १६७, चौ० ५९५-५९६
४७. सप्तसिंधु, अप्रैल १९७८, पृ० २०, छन्द २३
४८. राजस्थान, भाग २, संवत् १९९३, वैण सगाई।
४९. Principle of Literary Criticism, p. 143
५०. चिंतामणि, भाग २, पृ० १५९
५१. डॉ० भोलाशंकर व्यास, प्राकृत पैंगलम्, भाग १, पृ० ७४, गा० ८३
५२. जस्सा पढमहि तीअ, जगणा दीसंति पाअ पाएण।
    चंडालह घररहिआ, दोहा दोसं पआसेइ॥
    —डॉ० भोलाशंकर व्यास, प्राकृत पैंगलम्, भाग १, पृ० ७४, छन्द ८४
५३. शोध-पत्रिका, वर्ष १३, अंक ३, पृ० २७, 'राजस्थानी दोहों के चरणानुसार भेद' नामक लेख।
५४. परम्परा, भाग १३, पिंगलशिरोमणि, पृ० ५३
५५. रानी लक्ष्मी कुमारी चुण्डावत, राजस्थानी दोहा संग्रह (प्रस्तावना)।
५६. हिन्दी नीति-काव्य, पृ० ४०५

५७. डॉ० भोलाशंकर व्यास, प्राकृत पैंगलम्, पृ० ५८, गा० ६४
५८. वही, पृ० ५०, गा० ५२
५९. वही, पृ० ६०, गा० ६६
६०. परम्परा, भाग १३, पिं० शि०, पृ० ४४
६१. प्रो० नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए०, अलंकार पारिजात, पृ० २०१
६२ डिंगल-साहित्य (पद्य), पृ० २३५
६३ भोलाशंकर व्यास द्वारा सम्पादित, पृ० ११६, छन्द १२९
६४. परम्परा, भाग १३, पिं० शि०, पृ० ६४
६५. वही, पृ० ६५
६६. वही, पृ० ३९
६७. रघुनन्दन, हिन्दी छन्द प्रकाश, पृ० ७०
६८. वही, पृ० ७६
६९. परम्परा, भाग १३, पिं० शि०, पृ० ४२
७०. भानु, छन्द प्रभाकर, पृ० १५०
७१. परम्परा, भाग १३, पिं० शि०, पृ० २९
७२. डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, डिंगल-साहित्य, (पद्य), पृ० २४०
७३. वीठू सूजा, राव जैतसी रो छन्द (भूमिका) पृ० १४
७४. परम्परा, भाग १३, पिं० शि०, पृ० ३६
७५. वही, पृ० २६
७६. डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, डिंगल-साहित्य, पृ० २४९
७७. श्री सीताराम लालस, पृ० ५०, छन्द ३४
७८. एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ग्रन्थ ला० द० १२१७, भी० ह० चौ०।
७९. वही, ग्रन्थ ला० द० ९१७, पार्श्व० दश० स्त०।
८०. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थ २७२६७, जि० जि० सं० गा०।
८१. अगरचन्द नाहटा, ऐ० जै० का० सं०, पू० वा० गी०।
८२. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, ग्रन्थ ७७४४, श० या० स्त०।
८३. (क) भीमसेन हसराज चौपई।
(ख) श० या० स्त०।
(ग) पू० वा० गी०।
८४. (क) वही
(ख) भी० हं० चौ०।
८५ पू० वा० गी०।
८६. जि० जि० सं० गा०।
८७. पार्श्व० दश० स्त०।
८८. भी० ह० चौ०।
८९. (क) वही (ख) पू० वा० गी०।

९०. पू० वा० गी०।
९१. श० या० स्त०।
९२. वही
९३. पार्श्व० दश० स्त०
९४. (क) वही (ग) भी० हं० चौ०।
(ख) पू० वा० गी०। (घ) जि० जि० सं० गा०।
९५. लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत विशारद, पृ० २५६
९६. ऐ० जै० का० सं० पृ० ११४, गा० ३५, ४१, ४२
९७. लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत-विशारद, पृ० २५१
९८. जिनपालित जिनरक्षित सधि गाथा
९९. लक्ष्मीनारायण गर्ग, सगीत-विशारद, पृ० २५१, २५८
१००. सीताराम लालस, रघुवरजस प्रकास, पृ० १७९-१८०. छन्द ३५-३७
१०१. सं० मो० द० देसाई—आ० का० म० मौ० ७, पृ० १४-१५, चौ० ५६-६१
१०२. ढोला मारवणी चौपई, चौ० १४९-१५१
१०३. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थाक २६५४६, तेजसार रास चौपई, चौ० ८-११
१०४. एल० डी० इस्टी०, अहमदाबाद, ला० द० ग्र० १२१८, छन्द २५३-२६१
१०५. स० मो० द० देसाई— आ० का० म० मौ० ७, पृ० १५८, चौ० ५५८, पृ० १६८, चौ० ६०३
१०६. डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० २३०
१०७. 'अगडदत्त रलिया मनि थयउ, देतांकांनि मत्र तिणीदीड'
—भण्डारकर प्राच्य विद्या मन्दिर, पूना, ग्रन्थांक, ६०५, चौ० २५८
१०८. एल० डी० इस्टी०, अहमदाबाद, ला० द० ग्र० १२१७, चौ० २३०
१०९. मैक्यूलास, द चाइल्डहुड ऑफ फिक्शन, पृ० १४९, १९०५ ई०
११०. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थांक २६५४६, चौ० १६०-१६३, ३२७-३२८
१११. अनू० सस्कृ० लाय०, बीकानेर ग्रन्थ ६८ (घ), छन्द २७३-२७५; २९८-३१५
११२. मो० द० देसाई—आ० का० म०, मौ० ७—माध० काम० चौ०, पृ० ५, चौ० २३; पृ० २७, चौ० १११
११३. अब ही छोड़ी एकली, करहे करी कलाप।
कह्यो जलोपुं स्यांम को, सुंदर लहुं सराप॥
—डॉ० जावलिया की प्रति, दूहा ४०८
११४. सोमेश्वर, कथासरित्सागर ४६। १५१
११५. जिण दिन ढोलो पंथे वहे, मारू तिण दिन सुहणो लहे।
मिलिउ प्रीतम नीद्र मझारि, मारू माता आगे कहे विचारी॥
—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० ५१६
११६. आ० का० म०, मौ० ७, पृ० ७, चौ० ३०
११७. डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० ५५७

११८. आ० का० म०, मो० ७, माध० काम० चौ०, पृ० ४८, चौ० १९९-२०१

११९. राय रूप देखी गयंद मनि इम विमासइ।
जाती समरण त्यांन जांणि आव्यउ रिषि पासइ ॥
—एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ग्रं० ६७५, गा० २१

१२०. आ० का० म०, मो० ७, पृ० २७, चौ० १११-११२

१२१. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६, चौ० २१५-२२०

१२२. एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ला० द० ग्रं० १२१७, चौ० ४१५

१२३. म० प्रा० वि० मं०, ग्रन्थ ६०२

१२४. स्वामी जी मुझ गर्भ प्रमांण, एक डोहलउ थयउ-असमान।
अमृत फल नउ करूं आहार, तउ मुझ थामइ हर्ष-अपार ॥
—एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, चौ० ३४३

१२५. म० प्रा० वि० मं०, पूना, ६०५, चौ० २७५-२८६

१२६. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थांक २६५४६, चौ० २२-७१

१२७. वही, ग्रन्थांक २२२६६,

१२८. लोक साहित्य विज्ञान, पृ० ३०२, १९६२ ई०

१२९. एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ग्रन्थ ६७५

१३०. भीम महिपति इम भणइ, न मिलइ जो नारि।
तउ हूँ पावक तनु दहु, न रहूं संसारि ॥
—एल० डी० इस्टी०, अहमदाबाद, ग्रन्थ १२१७, दूहा २०८

१३१. म० प्रा० वि० मं०, पूना, ग्र० ६०५, चौ० २५४

१३२. आ० का० म०, मो० ७, माध० काम० चौ०, पृ० १४१, चौ० ४९९

१३३. वही, पृ० १४७, चौ० ५१८

१३४. डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ६१०-१३

१३५. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७५, १९५२ ई०

१३६. पुगल पंथे ढोलो वहे, सूडा ने मालवणी कहे।
जिम-तिम करे नहु पाछो वाल, पंथी ए पडीवनो पाल ॥
—डॉ० जावलिया की प्रति, दूहा ४४७

१३७. एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ग्रं० ला० द० १२१७—भी० हं० चौ०, चौ० १०५-१०८

१३८. On the Dohad are Carving of the Pregnant Women as a motif in Hindu fiction —own of the Story, Vol. I, p. 231-232

१३९. The Dohad or Carving of the Pregnant Women, Town Amer orient Soc. Vol. IX, Part I, p. 1·24, ed. 1920

१४०. किहा जास्यउ रे मानव बापुड़ा, रे इह सेलग किणी माता।
जेष सहित तिन्ह सिर छेदिस्यउजी, जिम कोमल तिणदाता ॥
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थ २२२६६, छन्द ६०

१४१. सप्तसिंधु, मार्च 1978, पृ० 16-35

१४२. तिणि नहुं जी चउसठी योगणी, पंड्याणी बल मांडी घणी।
सप्रभाति दिन अग्यड जिसइ, चउसठी योगिणी आवी तिसै।।
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थ २६५४६, चौ० ६५-६६

१४३. अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, ग्रन्थ ६८ (घ)

१४४. दुर्गा सप्तशती खण्ड

१४५. राजस्थान भारती, दिसंबर १९६६ ई०, पृ० २८, डॉ० सत्येन्द्र का लेख 'राजस्थान के लोक साहित्य पर कुछ दृष्टियाँ'

१४६. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थ २२२६६, चौ० ३९

१४७. इण वन मांहि एक सीह छइ विचट विरूप विकराल रे।
मानवी पेषि मारइ सही, कुमर तूं लघु सुकमाल रे।।४११

१४८. आ० का० म०, मौ० ७, चौ० ५७९

१४९. इन्द्र महोच्छव आव्यउ जिसइ, ते कन्या सिणगारी तिसइ।
अति सुंदर आभरण अनूप, पुत्री नइ पहिराव्या भूप।।
—एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ला० द० ग्रं० १२१७, चौ० ४५३

७

कुशललाभ के साहित्य का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन

(क) भाषा का नामकरण

कुशललाभ के साहित्य में दो प्रकार की भाषाओं के दर्शन होते हैं। प्रथम, शुद्ध डिंगल भाषा और द्वितीय, मध्यकाल में बोली के रूप में प्रचलित लोक भाषा जिसे हम मध्यकाल की बोलचाल की राजस्थानी भाषा कहना उपयुक्त समझते है। प्रथम वर्ग की कृतियाँ 'पिंगलशिरोमणि', महामाई दुर्गा सातसी और जगदम्बा छन्द अथवा भवानी छन्द हैं। शेष रचनाएँ द्वितीय वर्ग की भाषा में रचित हैं। यहाँ यह कहना भी उचित होगा कि 'पिंगलशिरोमणि' आदि कृतियों मे यद्यपि डिंगल का शुद्ध रूप मिलता है, पर वे कृतियाँ तत्कालीन बोलचाल की राजस्थानी भाषा के प्रभाव से अछूती नहीं रह सकी हैं। जैसा कि कहा जा चुका है कि कुशललाभ का अस्तित्व काल वि० स० १५६०-६५ से वि० स० १६५५ है और उनकी रचनाएँ वि० स० १६१६ से वि० स० १६४८ तक की लिखी मिलती है। अतः उसके साहित्य में प्रयुक्त भाषा को वि० स० १६०० से वि० सं० १७०० के बीच की मध्यकालीन राजस्थानी कहना चाहिए।

(ख) भाषा-विश्लेषण

किसी भी भाषा का विश्लेषण उसमे निहित ध्वनियों एव रूप-रचना के आधार पर सम्भव है। चूंकि कुशललाभ का साहित्य लगभग चार सौ वर्ष पुराना है। अतः उस युग मे कौन-कौन-सी ध्वनियाँ प्रचलित थीं, उनका उच्चारण तब किस रूप में हुआ करता था तथा कवि ने उन ध्वनियों को किस रूप में प्रयुक्त किया इत्यादि शंकाओं की उपस्थिति में कुशललाभ की काव्य भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों का विवेचन करना असम्भव ही है। इसलिए विस्तृत रूप मे हम यहाँ कवि की भाषा का अध्ययन रूप तत्त्व की दृष्टि से ही प्रस्तुत करेंगे। इससे पूर्व सामान्य रूप से दिखाई देने वाली ध्वनि-सम्बन्धी विशेषताएँ प्रस्तुत हैं—

(१) मधुरता की सृष्टि के लिए कुशललाभ ने डा, ड़ी, ड़ो; ल, ला, ली आदि प्रत्ययों का प्रयोग संज्ञादि शब्दों के साथ किया है—

हियड़ा—हियड़ा फूटि पसाय कर केता दुःख सहेस।

वातड़ी—केही कीजै वातड़ी, केही कीजै कथ्य।
मिलावड़ो—हुइसी कंत मिलावड़ो, जो कुसलतण नाह।
(मा० का० चौ०, चौ० क्रमश: ३५४, ३५१, ५५१)
दंताल—दंति कहि दंताल, एक दसण लम्बोदर।
(पिंगलशिरोमणि, पृ० १४६)
एकला—सींह सांप कुंजर एकला। (अग० रास०, चौ० २१५)
आगली—रथ आगली बइसारी नारी। (वही, चौ० २१७)

(२) पाद-पूर्ति के लिए ह, ज, य का आगम हुआ है—
पुत्रह—किआ वधावणा पुत्रह तणा। (ढो० मा० चौ०, चौ० १५१)
तूहिज—मनछा रूप तूहिज महामाया। (महा० दुर्गा सातसी, छं० १)
सकतीय—कूडो वर पाइ कुंवर कूड पुजी सु सकतीय।
(पिं० शि०, पृ० ८३)

(३) रेफ या तो र-कार हो गया है अथवा स्थानान्तरित हो गया है—
सरवारथ (सर्वार्थ) – सरवारथ सिद्धइ अछइ।
(तें० रा० चौ०, चौ० ४)
द्रंग (दुर्ग)—ते परिहरी जं द्रंग। (ढो० मा० चौ० ३५४)

(४) 'य' प्राय: 'ज' बन गया है—
मरजाद (मर्यादा)—जिण वेरा सुणि सबद, उदधि मरजाद झमकै।
(पिं० शि०, पृ० ८४)

(५) कहीं-कहीं क, ग 'य' में बदल गए हैं, जैसे—
सयल (सकल)—मुरधर देस मझार सयल धनधान सम्बन्धो।
(ढो० मा० चौ०, चौ० ६)
सायर (सागर)—सायर तट रे सोवनमय द्वारापुरी।
(स्त० पार्श्व० स्त०, छं० ४)

(६) क, स, व ध्वनियां क्रमश: ग, छ, म ध्वनियों में बदल गई हैं—
प्रगट (प्रकट)—मार्कंड महामाया महातम प्रमाणिस प्रगट प्रकार प्राक्रम।
(महा० दुर्गा सातसी, छं० ७)
अपछर (अप्सरा)—हिव अपछर हूं अविहड़ नेह।
(माध० काम० चौ०, चौ० १०६)
मीनती (विनती)—मया करउ मुझ मीनती भार।
(भी० हं० चौ०, चौ० १०६)

(७) हिन्दी में प्रयुक्त 'न' ध्वनि यहां 'ण' रूप में प्रयुक्त हुई है—
णाटक (नाटक)—णाटक कला गीत अभ्यसइ।
(माध० काम० चौ०, चौ० ११३)
कांमणी (कामिनी)—कलहर कूडे कामणी।
(गौड़ी पार्श्व० छं०, छं० १५)

(८) कुछ स्थलों पर महाप्राण ध्वनियों में अल्पप्राण व्यंजनों का लोप हो गया है—

जलहर (जलधर)—जलहर जिम दीपतो।

(ढो० मा० चौ०, चौ०, ६)

आराहइ (आराधइ)—प्रतिमा जिननी जिन परइ, आराहइ एकंत।

(ते० रा० चौ०, चौ० ३)

रूप-तत्त्व

भाषा विशेष के अध्ययन के लिए उस भाषा का रूप तत्त्व' बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। रूप तत्त्व के आधार पर ही भाषा की प्रकृति का निर्णय सम्भव है। इसीलिए वर्तमान में भाषा के निमित्त इसी विधि को उपयुक्त माना जाने लगा है। कुशललाभ की भाषा का अध्ययन भी हम इसी प्रणाली पर प्रस्तुत करेंगे। हिन्दी भाषा के व्याकरण की स्वीकृत शब्दावली, परिभाषाएँ, पद के प्रकार आदि ही राजस्थानी व्याकरण में स्वीकृत हैं। तत्सम्बन्धी नियम भी प्रायः समान है। अतः हम कुशललाभ के साहित्य की भाषा का अध्ययन इन्हीं संज्ञा सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय और उपसर्गादि के विभिन्न रूपों के आधार पर प्रस्तुत करेंगे—

१. संज्ञा के रूप (लिंग, वचन और कारक)

(क) **लिंग-सम्बन्धी निष्कर्ष**—(अ) कुशललाभ के साहित्य में प्रयुक्त संज्ञा शब्दों के अध्ययन से पता लगता है कि आलोच्य कवि की भाषा में प्रायः अ-कारान्त पुंल्लिग और ई-कारान्त स्त्रीलिंग शब्दों की बहुलता है। कतिपय शब्द हैं—

पुंल्लिग संज्ञा शब्द—कासमीर, आणंद, बिबुध, गोविंदचन्द, बालक, कागल पुत्र, प्रीतम, नेत्र, बांण, पान, पीहर, मराल, खंजन इत्यादि।

स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द—सरसती, ब्रह्मपुत्री, नारी, नगरी, भोगविलासिनी, कामणी मारवणी, दीकरी, पिइ्याणी, पटराणी, ठकुराई, अटवी, साड़ी, थंती, अवती आदि।

(आ) स्त्रीलिंग बनाने के लिए आ, ई और नी (णी) प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है, यथा—

आ—प्रत्यय—सुता, श्राविका, वामा, अबला, गणिका, सिला, पुत्रिका, वेश्या, कला, रुद्रा, गाथा, पूजा, कन्या, च्यंता।

ई—प्रत्यय—नदी, हसी, कुमरी, अन्तेउरी, वामादेवी, नगरी, दीकरी।

नी (णी)—प्रत्यय—डूमणी, रमणी, मालवणी, मारवणी, पटराणी, पिइ्याणी, कामिनी (कामणी), भोगविलासिनी।

(इ) पुंल्लिग और स्त्रीलिंग दोनों प्रकार के शब्दों में कवि ने सुविधानुसार ह्रस्व और दीर्घ का प्रयोग किया है—

पुंल्लिग—नरपति > नरपती; स्वामि > स्वामी; भूपति > भूपती।

स्त्रीलिंग—मदनमंजरी > मदनमजरि; नारी > नारि; कुमरी > कुंमरि, कुंवरि।

(ई) उ-कारान्त, ऊ-कारान्त, ओ-कारान्त और औ-कारान्त शब्दों में स्त्रीलिंग शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता। इनसे सम्बन्धित प्रयुक्त कुछ पुल्लिग शब्द हैं—रिपु, तनु, राउ, प्रभु, सत्रु, तरु, प्रीऊ, छोरू, ढोलू, बीड़ो, भमरो, संदेसड़ो, तमासो, ससोह्यो, नाररो, ढोलो, सूडो, कंटालो, मामड़ो, करहो, नरेसरो, कंपो।

(ख) वचन सम्बन्धी निष्कर्ष—(अ) लिंगों की भाँति ही यहाँ भी दो वचनों—एकवचन और बहुवचन का प्रयोग हुआ है। कवि ने कुछ ऐसे बहुवचनों का भी प्रयोग किया है जो एकवचन में भी प्रयुक्त होते हैं, यथा—

समाचार—समाचार सुविस्तरक कह्या। (ढो० मा० चौ०, चौ० ६२)

गज—हय-गय-रथ पायक बहू। (तै० रा० चौ०, चौ० ३२५)

नेत्र—केसर लंकि षीण कटी, कोमल नेत्र कुरंग।

(ढो० मा० चौ०, चौ० २०७)

दीनार—लाख दीनार दिन-दिन प्रति लहइ।

(माध० काम० चौ०, चौ० ६३२)

(आ) समुदाय बोधक बहु वचन शब्दों का भी यहाँ प्रयोग हुआ है—

सेना—चतुरग सेना साथि करी। (तै० रा० चौ०, चौ० ३२५)

कुच—कुच बिच भमरो आव्यो जिसइ। (माध० काम० चौ०, चौ० १६७)

प्रजा—पूछे प्रजा किसो ऐ राव। (ढो० मा० चौ०, चौ० ६७)

(इ) आदर सूचक स्थलों पर एक वचन के साथ बहु वचन की क्रिया का प्रयोग हुआ है—

समोसर्या—साध सहित गुरु तेणइ अवसरि समोसर्या।

(पार्श्व० दश० स्त०, गा० ३८)

खमड—मुझ अपराध खमड तुम्ह स्वामि।

वीसारो—मत वीसारो मन थकी, हुं छउ थांकी दासी।

(माध० काम० चौ०, चौ० २४, ३३७)

रमसो—अज सषी वेदन तुम्ह तणे, रमसो नही कारीण कीर्ण।

(ढो० मा० चौ०, चौ० २६४)

(ई) सर्वनामों एवं विशेषणों में भी ये दोनों वचन मिलते हैं—

(क) सर्वनाम—(अ) एक वचन—हूं, म्हूं, मुज, मोरी, थूं, तू, तुज, ताहरो, थारो, तेह, तिण, तसु, जे, सोइ, जिन इत्यादि।

(आ) बहु वचन—म्हां, म्हे, अम्ह, थें, थांकी, थाको, वे, तेह, ते, जिका, जिनना आदि।

(ख) विशेषण—(अ) एकवचन—रातो, कालो, मोटो, साचो, दयामणो, दुरंगो।

(आ) बहुवचन—राता, काला, मोटा, साचा, दयामणा, दुरंगा।

२. कारक और कारक चिह्न सम्बन्धी निष्कर्ष

कारक चिह्नों का अध्ययन भाषा-विश्लेषण के लिए आवश्यक है। भाषा का सही

निर्णय यही कारक चिह्न अथवा विभक्ति-चिह्न करवाते हैं। कुशललाभ के साहित्य में प्रयुक्त भाषा मध्यकालीन राजस्थानी है। अतः उनके साहित्य मे इसी भाषा के विभक्ति प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। ये प्रत्यय संज्ञा और सर्वनाम दोनों ही के साथ लगे हैं। आठों कारकों का प्रयोग कवि ने अपने काव्य में किया है। इनसे सम्बन्धित निम्नलिखित तथ्य महत्त्वपूर्ण हैं—

१. कर्त्ता और कर्म कारक के कुछ स्थलों पर विभक्ति चिह्नों (प्रत्ययों) का प्रयोग नही मिलता—

(अ) हूँ तुठउ तुज पूरूं आस। (माध० काम० चौ०, चौ० ५०)
(आ) महिपति एक दिवसी मनि रगि। (भी० ह० चौ०, चौ० ३३३)
(इ) मति कहो कोई ढोला भणी। (ढो० मा० चौ०, चौ० १९२)
(ई) अभगसेन तस दीधो नाम। (अग० रास चौ०, चौ० १६)

२. करण एवं अधिकरण कारकों में विभक्ति प्रत्ययों को संयोगात्मक रूप में प्रयुक्त किया गया है—

करण कारक—(अ) राजान्—रंगइ वात करइ राजान्।
(ढो० मा० चौ०, चौ० १८)
(आ) वशत्—जोबन वसत् आवी जिसइ।
(माध० काम० चौ०, चौ० ६४)
अधिकरण कारक—(अ) मन—कुंवरी मने बहु प्रीति।
(अग० रास चौ०, चौ० ९५)
(आ) अन्तर—सुपनंतर पेषइ ते नार।
(ते० रा० चौ०, चौ० ७)

३. कही-कही कारक-विभक्ति प्रत्यय सज्ञा और सर्वनाम दोनों ही के साथ संयुक्त है, जैसे—

सज्ञा—(अ) वामा देवी रंभ समाण। (पार्श्व० दश० स्त० गा० ४२)
(आ) भीमसेन तिणि पुरि भूपाल। (अग० रास चौ०, चौ० ६)
सर्वनाम—(अ) दीठो इणि परि मैं बहु देस। (ढो० मा० चौ०, चौ० २७)
(आ) ते आसीस समोपइ ताम। (भी० हं० चौ०, चौ० ३०२)

१. सवनाम सम्बन्धी विवेचन

कुशललाभ के साहित्य में छहों प्रकार के सर्वनाम अपने भेदोपभेद सहित उपलब्ध हुए हैं। सर्वनामों का सम्बन्ध व्याकरणिक (रूप रचना) कोटियों की दृष्टि से कारकों, वचनों एव पुरुषों से है। कुशललाभ के साहित्य मे सर्वाधिक प्रयुक्त सर्वनाम चिह्न है— हूँ, में, मइ, अम्हे, म्हे, हम, मोहि, मो, अमने, मुझ, अम्ह, मोने, मोरी, माहरइ, अमारो, अम्हा (उत्तम पुरुष सर्वनाम); तम, थुड, थे, तुज, तोनू, ताहरो, तुमरि, तुम्हरो (मध्यम पुरुष सर्वनाम); तई, तिण, तेम, तेह, वे, ताम, ते, तसु, तेहनी (अन्य पुरुष सर्वनाम); सो, सोई, तिण, जो जिणि, जे, जिन, जासु, जाके, जेह (सम्बन्ध वाचक सर्वनाम); इणइ,

इणि, ए, एह, अणी, अेह (निश्चय वाचक सर्वनाम); कोई, का (अनिश्चय वाचक सर्वनाम); कुण, कवण (प्रश्नवाचक सर्वनाम); आप, आपां, आपणी, आपहि, आप-आपणे, निज (निजवाचक सर्वनाम या आदर बोधक सर्वनाम)[१]। विभिन्न कारकों एवं वचनों के साथ इनके प्रयोग से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं—

१. प्रचलित छहों सर्वनामों का प्रयोग कुशललाभ के साहित्य में उपलब्ध है, जिनके रूप राजस्थानी भाषा के ही है।

२. पुरुषवाचक, सम्बन्धवाचक और निश्चयवाचक सर्वनामों के प्रयोग मुख्य रूप से कर्त्ता, कर्म, संप्रदान, सम्बन्ध और अधिकरण कारकों में उपलब्ध हैं। इसके विपरीत अनिश्चयवाचक, प्रश्नवाचक एवं निजवाचक सर्ववामों के रूपों में कारकीय प्रवृत्ति दृष्टिगत नहीं होती—

कर्त्ता कारक में पुरुष वाचक सर्वनामों का प्रयोग

(अ) हूं हूँ परणइ गंग नइ तीर। (माध० काम० चौ, चौ० ७०)
(आ) मइ—असीय सहस वरस मइ पूज्या। (स्त० पार्श्व० स्त० ६७)
(इ) म्हे—मारू म्हे तो मांणस नहीं। (ढो० मा० चौ, चौ० २३१)
(ई) हम—पिंगल हम पहेली परणवीयो। (वही, चौ० ८८)
(उ) में—फोकट पथ करो तुं में कां मरउ। (तै० रास चौ०, चौ० ३०)
(ऊ) थे—वात विणासी थे माहरी। (वही, चौ० ३१६)
(ए) थुड—स्नान करी जल सू थुड सींचइ। (भी० हं० चौ० ४५)
(ऐ) तेह—भूपति प्रति तेह इम भणइ। (वही, चौ० १६)
(ओ) वे—वे तीनइ ऊड्या आकासि। (वही, चौ० ३५८)
(औ) तेम—तेम कुंभ स्थलि हणीयो बाण। (अग० रास, चौ०, चौ० १६७)

कर्म कारक में पुरुषवाचक सर्वनाम

(अ) मोहि—जइ तू घालइ मोहि। (माध० काम० चौ०, ३१७)
(आ) तुज—सिला तुज परणाविस्या। (वही, चौ० ६७)
(इ) अमने—दीठी हुये तो अमने दाषी। (भी० हं० चौ०, २८)
(ई) ताम—ते पटराणी थापी ताम। (वही, चौ० २४५)
(उ) मुझ—तिय तिम मुझ अति चिंता थाय। (तै० रास चौ०, चौ० २७८)
(ऊ) ते—ते सगली मन माहे ग्रही। (वही, चौ० १०५)
(ए) तोनू—जिन तोनू मुख दीधो। (पिं० शि०, पृ० १५५)

सम्प्रदान कारक में पुरुषवाचक सर्वनाम

(अ) मोनें—जिम मोनें राज अविचल थाय। (तै० रा० चौ०, चौ० २६०)
(आ) हूं—हूँ आवियो भणवाने काजि। (अग० रास चौ०, चौ० ४८)

सम्बन्ध कारक में पुरुषवाचक सर्वनाम

(अ) मोरी—खत्री मोरी जाति। (माध० काम० चौ०, चौ० ३८२)
(आ) अम्हा—जिम आणंद अम्हा घर होई। (वही, चौ० ३२१)
(इ) ताहरो—ताहरो विरय मन मुज दहै। (वही, चौ० ८८)
(ई) मो—मो तल ढोलो वही गयो। (ढो० मा० चौ०, चौ० ४४२)
(उ) तुमरि—कुमरि तुमरि अपछर जीसी। (वही, चौ० ४७)
(ऊ) तसु—मालवणी तसु कुमरि नाम। (वही, चौ० २०२)
(ए) मुझ—सुता एह मुझ वल्लभ सही। (भी० हं० चौ०, चौ० ८३)
(ऐ) अम्ह—अम्ह तणइ भाग्य आव्या। (वही, चौ० ४१७)
(ओ) तेहनी—तेहनी कुंअरि प्रभावती। (पार्श्व० दश० स्त०, गा० ४६)
(औ) ताम—रूपवत चिति चमकिउ ताम। (अग० रास चौ०, चौ ४१)

अधिकरण कारक में पुरुषवाचक सर्वनाम

(अ) ते—सभा माहेते अतिहि अनूप। (माध० काम० चौ०, चौ० १५)
(आ) तांम—तिण उपजि उग्र वैराग तांम। (पिं० शि० पृ० ४१)

२. कर्त्ता कारक में सम्बन्ध वाचक सर्वनाम

(अ) सो—सो अतुल देखि कन्या सरूप। (वही)
(आ) सोइ—सोइ अमिता विग्रह मम उदरगत प्रेमभाव प्रभासए। (वही)
(इ) तिण—तिण नवकारे हत्या टली पाम्यो जक्ष प्रतिबोध। (नव० छं०)
(ई) जे—चक्रवती जे पांचमो, सरणागत साधारि। (पू० वा० गी०, गा० २)
(उ) जिणी—मारू जिणी निरषी नही। (ढो० मा० चौ०, चौ० ३२३)
(ऊ) जो—राणी जो रितुवंती। (भी० हं० चौ०, चौ० ४५)

कर्म कारक में सम्बन्ध वाचक सर्वनाम

(अ) सो—इंद्रह वाहण अहि उसण, सो पहिरायु तुज।
(माध० काम० चौ०, चौ० ३०७)
(आ) जिन—संदेसा जिन पाठवो, जिया ता परिहाथ।
(ढो० मा० चौ०, चौ० ३०१)

सम्बन्ध कारक में सम्बन्ध वाचक सर्वनाम

(अ) जासु—प्रतपे जासु प्रताप दान। (वही, चौ० १०)
(आ) जाके—पूरब देस प्रसिद्ध पाडली नगर रिद्धि जाके।
(भी० हं० चौ०, चौ० १)
(इ) जेह—वसंतपुरि सेनापति जेह। (अग० रास, चौ० १०२)

३. एक वचन के रूपों की तुलना में बहुवचन के रूपों का प्रयोग अत्यल्प हुआ है।

४. प्रायः एक ही सर्वनाम के शब्द-रूप अनेक सर्वनामों में और पृथक्-पृथक् कारकों में विद्यमान है।

५. यद्यपि सर्वनामों के प्रयुक्त सभी रूप मध्यकालीन राजस्थानी के हैं, फिर भी उनमें वर्त्तनी की दृष्टि से विभिन्नता का समावेश है। इसका प्रमुख कारण लिपिकारों अथवा रचयिता का वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धियों पर ध्यान न देना है, यथा—

उत्तम पुरुष—मइ, में, मैं, मै, अम्हे, अम्ह, मुज, मुझ।

मध्यम पुरुष—तूं, तुं, तू।

सम्बन्ध वाचक—सोइ, सोय।

निश्चय वाचक—इणिइ, इणै, इणि, अणी।

निज वाचक —आपणो, आपणउ।

विशेषण

प्रत्येक भाषा की रूप रचना में विशेषणों का अपना महत्त्व होता है। विशेषणों के माध्यम से कवि इच्छित उपमानों की सर्जना भी करता है। कुशललाभ की भाषा में भी विशेषणों के प्रायः सभी प्रचलित रूप एवं भेदों का समावेश हुआ है। कवि द्वारा प्रयुक्त विशेषण सायास नहीं है, वे सहज प्रवाह के परिणाम हैं। कुशललाभ के काव्य में प्रयुक्त विशेषणों सम्बन्धी विवरण इस प्रकार है—

१ गुणवाचक विशेषणों में अकारान्त एवं ओ-कारान्त प्रवृत्तियों की बहुलता है। साथ ही विशेषणों के अन्य भेदों की अपेक्षा इनका सर्वाधिक प्रयोग हुआ है—

अ-कारान्त—चतुरग, उग्र, प्रवीन, अमूल, कठोर, रिद्धिवंत, उत्तम, सुजाण, कलावंत आदि।

ओ-कारान्त—दयामणो, मोटो, घणो, दुरगो, जेठो, साचो, कालो इत्यादि।

इन दोनों ही प्रवृत्तियों से सम्बन्धित कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(अ) चतुरंग—चतुरंग कटक एकठो करी। (माध० काम० चौ०, चौ० ४३७)

(आ) उग्र—उपजी उग्र वैराग ताम। (पिं० शि० पृ० ४१)

(इ) सुजाण—तेजसार अम्ह कत सुजाण। (तें० रा० चौ० ३१)

(ई) अमूल—मारू देस अमूल। (ढो० मा० चौ०, चौ० ३७०)

(उ) दुरंगो—देस दुरगो ढोलणा। (वही, चौ० ४६५)

(ऊ) साचो—साचो मित्र माहरो तेह। (अग० रास, चौ० ३१)

(ए) मोटो—मोटो कोई महापराध तस ऊपरि आव्यऊ।

(भी० हं० चौ०, चौ० ६२)

२. संख्यावाचक विशेषणों में आवृत्ति बोधक कोई रूप दृष्टिगत नहीं होता, यथा—

(अ) एक—एक रात्रि प्रोहित दुःख धारी। (माध० काम० चौ०, चौ० ५०)

(आ) चत्र—चत्र कोस सिल च्यार प्रलंब वाहै रावणवप। (पिं० शि० पृ० ८)
(इ) बार कोड—बार कोड सोवन धन तणी। (ढो० मा० चौ०, चौ० ४६)
(ई) पहेली—पिंगल हम पहेली परणावियो। (वही, चौ० ८८)
(उ) चउथइ—चउथइ पहरि चवइ चीवरी। (भी० हं० चौ०, चौ० ४७७)
(ऊ) आधा—आधा बालक गया एकला। (तै० रा० चौ०, चौ० ६८)
(ए) चिहुँ—चिहुँ दिसि सिलाच्यार भारी अतुल।
(पार्श्व० दश० स्त०, गा० ११)

३. कुछ विशेषणों का निर्माण संज्ञा के साथ प्रत्ययों के योग से हुआ है, तो कुछ का सर्वनाम और धातुओं के साथ विशिष्ट प्रत्ययों के योग से, यथा—एकाकी, सुजाण, रिद्धिवंत, अेहनी, तियइ, जिण, दयामणो, सगला इत्यादि।

४. प्रत्ययों की भाँति ही कुछ विशेषण उपसर्गों के संयोग से भी बनाये हुए हैं। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(अ) दुरंगो—देस दुरंगो ढोलणा। (ढो० मा० चौ०, चौ० ४६५)
(आ) अति सुंदरि—अति सुंदरि कुंवरि तसु तणी।
(माध० काम० चौ०, चौ० ३६८)
(इ) प्रवीन—प्रभु तेडि सकल मंत्री प्रवीन। (पिं० शि० पृ० ४१)
(ई) अपार—चँवरी मांडी मंगलच्यार,
ज्यांन मांन वि मील्या अपार। (ढो० मा० चौ०, चौ० १८४)

५. कुछ स्थलों पर विशेषणों में लिंग-प्रवृत्ति का भी परिचय होता है, जैसे—
(अ) सो जल काला नाग जुं, हेला दे दे खाय। (ढो० मा० चौ०, चौ० ४४३)
(आ) सा बाली पेमग्गली, खिण-खिण रयण विहाय। (वही)

६. सार्वनामिक एव परिमाण वाचक विशेषणों की अनेक रूपता दिखाई देती है—

सार्वनामिक—आ, आही, एह, इह, तियड, ति।
परिमाणवाचक—घणा, घणी, घणू, एतलो, इतलउ इत्यादि।

क्रिया

१. कुशललाभ के साहित्य की भाषा मध्यकालीन राजस्थानी है, जो स्वयं मध्यकालीन आर्य भाषाओं की सहयोगिनी है। अतः यहाँ प्रयुक्त क्रियाएँ भी मध्यकालीन आर्य भाषाओं की भाँति ही संयोगात्मक हैं, यथा—

(अ) विक्रमसिंह सूं खेलै घात। (तै० रा० चौ०, चौ० १५)
(आ) रे अज्ञानी धरम हेति कांइ जीव संहारइ।
(पार्श्व० दश० स्त०, गा० ४८)
(इ) कुण ए राय रत्न किम रहे। (तै० रा० चौ०, चौ० ३१२)
(ई) भूपति प्रति तेह इम भणइ। (भी० हं० चौ०, चौ० १६)
(उ) भर्‌या रिध नव निध भंडारि। (ढो० मा० चौ० १४५)

२. कुछ अनुरणात्मक और पुनरुक्त धातुएँ भी क्रियाओं में उपलब्ध होती हैं, जैसे—गहगहइ, डब-डब, झब-झब, झलहलइ, चमचमइ इत्यादि।

३. मूल क्रियाओं के अतिरिक्त निम्नलिखित सहायक क्रियाओं का स्वतन्त्र प्रयोग भी हुआ है—छइ, छू, छैं, अछइ, थयो आदि। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(अ) छैं—नीला षडनी घणा छैं नीर। (माध० काम० चौ०, चौ० १४१)

(आ) अछइ—पाणि ते नगर अछइ परदेस। (भी० ह० चौ०, चौ० ८२)

(इ) थयो—कालो थयो कुमार। (ढो० मा० चौ० १२५)

४. तीनों कालों में क्रिया-रूपों में भिन्नता है। वर्तमान कालिक क्रियाओं का निर्माण मूल क्रियाओं में अइ, ए, अउ, ओ, अत आदि प्रत्ययों के योग से हुआ है, जैसे—

(अ) दीसइ—दीसइ कोई विरलो दुखी। (भी० हं० चौ०, चौ० ८२)

(आ) नमइ—ते वात जाणी मुगध प्राणी नमइ नितु भावइ करी।
(पार्श्व० दश० स्त०, गा० १०)

(इ) करे—थाको करहो करुका करे। (ढो० मा० चौ० ५२३)

(ई) कहिज्यो—कहिज्यो कूंझडीयांह। (वही, चौ० २२७)

(उ) वसै—किम एकली वसै बनै। (ते० रा० चौ० १२३)

(ऊ) निहारत—सुष सैर, महादुष मेर,
समो अपने हूँ निहारत है। (स्थू० भ० छ०, छं० ३६)

५. भूतकालिक क्रियाएँ आ, इ, ई, अउ, इउ, इया, या, यउ, यां, ओ, औ आदि प्रत्ययों के संयोग से बनी हैं, यथा—

(अ) नाठा—सगला नाठा एकण दिसैं। (ते० रा० चौ०, चौ० ६५)

(आ) कहि—सखि प्रते मारवणि कहि। (ढो० मा० चौ० २४०)

(इ) राषी— तिणि कारणि, राषी आवासि। (अग० रास चौ० ३९)

(ई) लबधउ—पणि जेठउ बंधव कमठ कठोर अपार मुझ नारी।
(पार्श्व० दश० स्त०, गा० ६)

(उ) भीजविया—राक्षस पग भीजविया जिसइ। (ते० रा० चौ०, चौ० ४२)

(ऊ) पहिराव्या—पुत्री नइ पहिराव्या भूप। (भी० ह० चौ० ४५३)

(ए) चमकीयु—रूपवत चित चमकीयु ताम। (अग० रास चौ०, चौ० ४१

(ऐ) आव्यु —आव्यु तिहां नरहरि जिणहरि अति उल्लास।
(स्त० पार्श्व० स्त०, गा० ६)

(ओ) आव्यो— तिसइ एक आव्यो अवधूत। (भी० हं० चौ० ६४)

(औ) दीयो—जोगीयउ दइ कुमर नइ दीयो। (ते० रा० चौ० ४७)

६. सभी भविष्यतकालीन क्रियाएँ मूल क्रिया के साथ स, सि, सी, स्यउ, स, सैं, गी आदि प्रत्यय लगाकर बनाई गई है, कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(अ) आविस—दिन प्रति आविस हूँ राति। (माध० काम० चौ० ८९)

(आ) आपेसी—सुता एह मुझ वल्लभ सही,
नव निश्चय तिहा आपेसी नही। (भी० हं० चौ०, चौ० ८६)

(इ) चालीसि—जब हूँ चालीसि आपणइ देसि। (अग० रास, चौ० ५
(ई) करस्यउ—नास्यउ हिव इम करस्यउ जेडि। (ते० रा० चौ०, चौ० ६
(उ) आविसूं इण संकेतइ आविसूं। (भी० हं० चौ०, चौ० ३४
(ऊ) थासैं—कुण थासैं एह मुं भरतार। (ते० रा० चौ० १०
(ए) मीलूंगी—कब हूँ मीलूंगी सज्जनां, लांबी बांह पसाय।
(ढो० मा० चौ०, दू० २२

७. भविष्यत् कालीन बहु वचन क्रियाओं के लिए सां, स्यां प्रत्ययों का प्रयो किया गया है, यथा—

मारसां—मारग सीर ढोलो मारसां। (वही, चौ० ५६
परणाविस्यां—एह सिला तुझ परणाविस्यां। (माध० काम० चौ०, चौ० ६

८. क्रिया के विभिन्न भेदों—सकर्मक, अकर्मक, पूर्वकालिक, प्रेरणार्थक—व भी प्रयोग कुशललाभ के साहित्य मे मिलता है। क्रिया के व्यापार का फल जब उस कर्त्ता पर ही पड़ता है तो वहाँ अकर्मक क्रिया होती है। इसके विपरीत क्रिया-व्यापार व फल जब कर्म पर पड़ता है तो वहाँ क्रिया सकर्मक कहलाएगी, जैसे—

(क) अकर्मक क्रिया

(अ) आवी—मालवणी आवी प्रीउ पासि। (ढो० मा० चौ० ३४
(आ) बिंधियु—अगड़दत्त नउ बिंधियु चित्त। (अग० रास, चौ० ४
(इ) थयो—साम्हो सुखी थयो मयक। (माध० काम० चौ० ८
(ई) वहइ—एकाकी मारगि ते ते वहइ। (ते० रास चौ०, चौ० २

(ख) सकर्मक क्रिया

(अ) विनवइ—वनिता प्रति माधव विनवइ। (माध० काम० चौ० ३२
(आ) पूछीयो—कुण सरवर एक ने पूछीयो। (ढो० मा० चौ०, चौ० ४६
(इ) ऊतारी—रथ हूंती ऊतारी नारी। (ते० रास चौ० २७
(ई) भणवानइ—हूँ आविउ भणवानइ काजि। (अग० रास, चौ० ४

(ग) पूर्वकालिक क्रिया

पूर्वकालिक क्रिया में कार्य की सम्पन्नता का सूचक 'करके' है। इस क्रिया पहले एक क्रिया को करके फिर एक दूसरी क्रिया की जाती है। पहले की जाने वा क्रिया की धातु के साथ 'करके' प्रत्यय जोड़ा जाता है। कुशललाभ के काव्य में 'कर अर्थ मे इ, ई, नइ और ऐ प्रत्ययों का प्रयोग किया गया है—

(अ) जोड़ि—पाणि जोड़ि राय कीयउ प्रणाम। (भी० हं० चौ० ३०
(आ) सभारी—वयर सभारी सीह तिहां धायउ।
(पार्श्व० दश० स्त०, गा० ४
(इ) देखी नइ—मोटउ नगर देखी नइ रह्यउ। (ते० रास चौ०, चौ० २

(ई) चढ़ै—चढ़ै रांम सरचाप उतर दिस द्वारहि आए।
(पिं० शि०, पृ० ७६)

(घ) प्रेरणार्थक क्रिया

प्रेरणार्थक क्रिया में कर्त्ता स्वयं किसी कार्य को न करके अन्य को करने की प्रेरणा देता है। कुशललाभ के साहित्य में इसके निम्नलिखित रूप देखे जा सकते हैं—

(अ) पहुंचाइ—पंथी एक संदेसड़ो प्रीतम लगि पहुंचाइ।
(माध० काम० चौ०, चौ० ४३२)

(आ) पोहचाय— मंगण हाथ संदेसड़ो लग ढोलो पोहचाय।
(ढो० मा० चौ०, चौ० ४५)

(इ) चल—ढोलो गयो न बाहुड़्या, सुआ मनावण चल। (वही, चौ० ४४६)

(ई) सीचइ—स्नान करी जल सूं धुउ सीचइ। (भी० हं० चौ० ४५)

अव्यय सम्बन्धी विवेचन

प्रचलित अव्ययों के भेदों में से क्रिया-विशेषण अव्यय, सम्बन्ध वाचक अव्यय और समुच्चय बोधक अव्यय के भेदोपभेदो के चिह्नों के प्रयोग उपलब्ध हैं। विस्मयादि-बोधक अव्यय का कोई रूप कुशललाभ के साहित्य में नहीं मिलता है। क्रिया-विशेषण अव्ययों के चारों भेदों के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(क) काल वाचक

(अ) कदी – निश्चय कदी न दाखुं छेह। (माध० काम० चौ० ७८)

(आ) अविहड़—अविहड़ मन माधव नो नेह। (वही, चौ० ४३७)

(इ) तदै—तदै हलाणो कुमरि तणो। (ढो० मा० चौ० ८३)

(ई) तत्काल—तरु फूलइ तत्काल। (भी० ह० चौ०, चौ० ५०)

(उ) कदाचित् - चूकइ वात कदाचित् एह। (वही, चौ० १६२)

(ऊ) नितु—आह घरि नितु आणद। (पार्श्व० दश० स्त०, गा० ५)

(ए) हिवै — किजइ निरति हिवै इणि वात। (ते० रास चौ० ६१)

(ऐ) तब—पुत्री पेट थकी तब पड़ी। (वही, चौ० २७३)

(ख) स्थान वाचक

(अ) विच—कुछ विच भमरो आव्यो जिसइ।
(माध काम० चौ०, चौ० १९७)

(आ) ईहां—ईहां आव्या ज कीरत सुणी। (ढो० मा० चौ० २१)

(इ) जिहां—नेसालिया पांचसइ जिहां भणइ। (ते० रास चौ० २१)

(ई) तिहां—भीमसेन तिहां भूपाल। (भी० हं० चौ० १५)

(उ) समीपइ —वादि समीपइ वृक्ष विदेसी। (वही, चौ० ४२)

(ऊ) ऊपरि—राय राणी गज ऊपरि रह्या। (वही, चौ० २७८)
(ए) उहां—उहां घणा छै आभरण। (ढो० मा० चौ० ३५०)
(ऐ) किहां—पुरुष एह किहां थी नीसर्यउ। (ते० रास चौ०, चौ० ८५)

(ग) रीति वाचक

(अ) अनुक्रमि—अनुक्रमि वेश्या जोबन चढ़ी।
(माध० काम० चौ०, चौ० २७)
(आ) जिम-तिम—जिम-तिम कर नइ पाछो बाल्।
(ढो० मा० चौ०, चौ० ४४८)
(इ) विधिवत—विधिवत गुरवर पूज मत्र सुणि सिख हुइ सीधा।
(पिं० शि०, पृ० ८०)
(ई) क्रमि-क्रमि—क्रमि-क्रमि यौवन वय अनुसरइ।
(ते० रास चौ०, चौ० ३६७)
(उ) न – मनि तुहि न कंपइ। (पार्श्व० दश० स्त०, गा० २१)
(ऊ) नही—ब्रह्माणी ए वात, नीयांमन मांनी नहीं।
(महा० दुर्गा सा०, छं० २७)
(ए) नवि – तउ ते नवि दीसेसि भलउ। (अग० रास, चौ० ५४)

इनके अतिरिक्त कवि की रचनाओं मे किम ही, इणि परि, वार-वार, इम, मत, नहु, म, मति इत्यादि रीति वाचक क्रिया-विशेषण चिन्हो के भी सफल प्रयोग प्राप्त हैं।

(घ) परिमाण वाचक

(अ) आधा—आधा बालक गया एकला। (माध० काम० चौ० ६६)
(आ) सवि – सवि सिणगार सजी मारूइ। (ढो० मा० चौ० ५४७)
(इ) बहू—भोजन दान मान बहू दीया। (अग० रास, चौ० २४२)
(ई) घण—गया अनेथि चोर जे घणा। (वही, चौ० २१३)
(उ) सगला—सगला नाठा एकण दिसे। (ते० रास चौ०, चौ० ६६)
(ऊ) अणगल—अणगल राज रिद्धि वर देश। (वही, चौ० ३७०)
(ए) कितलु—कितलु काल गयु वही। (स्त० पार्श्व० स्त०, गा० ४)

सम्बन्ध वाचक अव्यय

(अ) लगि—घणा दीह लगि जोइ वाट। (माध० काम० चौ० ११९)
(आ) मयि—कचण मयि घड रतने जड़ी। (वही, चौ० १८९)
(इ) साथि—साथि सेना अति घणी। (स्त० पार्श्व० स्त०, गा० १)
(ई) संघात—सेजे मालवणी संघात। (ढो० मा० चौ०, चौ० २६१)
(उ) बार—मारू ऊभी कुआ बार। (वही, चौ० ५२६)
(ऊ) जिसौ—भाण जिसौ तप भाल्। (पिं० शि०, पृ० १५१)

(ए) समाणी—वामा देवी रंभ समाणी। (पार्श्वं० दश० स्त० गा० ४२)
(ऐ) समौ—हिव छै तुं अम्ह बधव समो। (ते० रास चौ० २१८)

समुच्चय बोधक अव्यय

(क) संयोजक

(अ) परि—बीजी परि तसु सघला सुख। (माध० काम० चौ० ४७)
(आ) अर—करहा नीर्यो जौ चरै, कंटालो अर फोग।
(ढो० मा० चौ०, चौ० ४)
(इ) क—इम जाणी कुमरी तिह जाइ,
सेवा क भगति करइ मन माइ। (भी० हु० चौ०, चौ० १०३)
(ई) नै—कूदै रमै नै करै कलोल। (ते० रा० चौ० १२२)
(उ) अनइ—एकाकी गज अइन साधु मनि तुहि न कंचइ।
(पार्श्वं० दश० स्त०, गा० २१)

(ख) विभाजक

(अ) कांई—सकति काइं व्यतर शाकिनी,
राक्षस सीकोत्तरी डाकिणी॥ (माध० काम० चौ०, चौ० ७२)
(आ) कि—कि मारवणी सुधी सुणी, कि कइ कोई नवली वत्त।
(ढो० मा० चौ०, चौ० ३४५)
(इ) कइ—जाणिउ एह अमर सुंदरि, कइ अपछरा राज कुंअरी।
(अग० रास, चौ० ४२)
(ई) कै—कै ए नाग लोक नी नारि, कै काइ रूडी राजकुमारी।
(ते० रा० चौ०, चौ० १२३)
(उ) अथवा—भीमसेन राजावर वरं अथवा अगनिदाघ अणु सरू।
(भी० हं० चौ०, चौ० ८५)

(ग) विरोध दर्शक

(अ) पिण—रूद्रा पिण सतीयइ विसेष। (माध० काम० चौ० १४५)
(आ) पणि—पणि ते नगर अछइ परदेसि। (भी० हं० चौ० ८२)

(घ) संकेत सूचक

(अ) तो—तो सही होशै पुत्र संतान। (ढो० मा० चौ०, चौ० १६६)
(आ) जै—कत काजि जै सेवा करइ। (भी० हं० चौ०, चौ० १०२)
(इ) जेह—वसतपुरि सेनापति जेह, सूरसेन नउ नदन एह।
(अग० रास, चौ० ५५)

२. वर्त्तनी की दृष्टि से अव्ययों में अनेक रूपता आ गई है, जैसे—कदी-कदि,

कवे; तवे, तवइ; तिसइ, तिसे, तिसै इत्यादि।

उपसर्ग सम्बन्धी विवेचन

कुशललाभ के साहित्य में निम्नलिखित उपसर्गों का प्रयोग हुआ है—अ, आ, अभि, अणु, अवि, वि, प्र, परि, पर, स, सु, सम, नि, अव, महा, दुर्, उप, कु ये उपसर्ग आलोच्य कवि की काव्य-रचनाओं में कई प्रकार के कार्य करते प्रतीत होते हैं, यथा—

(क) विलोम अर्थवाची

अ—अ+न्याय=अन्याय; अ+चेति=अचेति;
वि—वि+रूप=विरूप।

(ख) उत्कर्ष सूचन

प्र—प्र+लंब=प्रलब; वि—वि+ख्यात=विख्यात;
उत्—उत्+तंग=उत्तंग; सु—सु+जस=सुजस।

(ग) विशेषता द्योतन

प्र—प्र+ताप=प्रताप; वि+चक्षण=विचक्षण;
अभि—अभि+मानी=अभिमानी; नि—नि+अमल=निर्मल।

(घ) हीनता सूचन

कु—कु+माणसां=कुमाणसां; दु—दु+रंगी=दुरंगी;
अ—अ+बला=अबला; दुर—दुर+मती=दुरमती।

प्रत्यय विवेचन

(क) कृदन्त प्रत्यय

अइ—नमइ, भावइ, पूछइ, प्रणमइ, भाषइ, संचरइ, कीजइ आदि।
अउ—अवतर्यउ, आपावउ, धावउ, बइठउ, पहुचउ आदि।
इत—भाषित, सुरभित, उदित, गंधित, हरषित इत्यादि।
अतां—भावतां, जीवतां, पेषतां, आराधतां, उपदेषतां आदि।
अति—रुदंति, बोलंति, षंति, विलपति, दीपंति आदि।
या—पाम्या, आव्या, पठाव्या, संताव्या, ऊतर्या आदि।
आ, आं—अवतरीआ, पामिआ, दीधा, ऊपनीआं, कुरलाइआं आदि।
इउ—भणिउ, प्रणमिउ, बंधिउ, हणिउ, वससिउ आदि।
ओ, यो—उड़तो, पधरावो, पाम्यो, पढावियो, पधार्यो आदि।
वी—नीपजावी, मनावी, केकावी, राजवी, आवी इत्यादि।
ड़ी—पोयोड़ी, संकोड़ी, त्रेवड़ी।

(ख) तद्धित प्रत्यय

वंत—अलवत, गुणवंत, विद्यावंत, त्यागवंत, रूपवंत आदि।
कार—नृत्यकार, सुखकार, अहंकार, धोकार आदि।
हार—मांगिणहार, तारणहार, सिरजणहार।
पति—नरपति, छत्रपति, पृथ्वीपति।
रो—नातरो, ताहरो, माहरो।
णी—संन्यासिणी, डूमणी, नाटकणी, रमणी, रयणी।
ड़ी—अंबाड़ी, देवड़ी, मोजड़ी, गोरड़ी, कांबड़ी आदि।
ली—नवली, सगली, हथेली, संभली आदि।
अक्—वीतक, कोतक, सेवक, वाचक, श्रावक आदि।

इन प्रत्ययों के अतिरिक्त भाषिक दृष्टि से कुशललाभ द्वारा प्रयुक्त निम्नलिखित प्रत्यय रूप भी उल्लेखनीय हैं—कृपाल, भूपाल, अरिवृन्द, अरिहंत, तरुवर, विहगम, भरतार, करतार, हीयड़े, सदेसड़ो, सगपण, पाइक, रखवालू, गणधार, अंधार, सुखवास इत्यादि।

प्रत्यय-प्रयोग की दृष्टि से कुशललाभ के प्रत्यय राजस्थानी की धरोहर है। इनमें सस्कृत से राजस्थानी तक की विकासात्मक प्रवृत्ति लक्षित होती है, जैसे—अवतर्यउ, धावउ, पेषतां, आराधतां, हणिउ, पधरावौ, सिरणजहार, माहरौ, ताहरौ इत्यादि।

विशेषता सूचन के लिए कवि ने वत, अक्, कार आदि प्रत्ययों का प्रयोग किया है तथा ऊनवाचन के लिए ड़ी, ड़े, ड़ो (राजस्थानी) प्रत्ययों का प्रयोग मिलता है।

शब्द-समूह

कवि शब्दों के माध्यम से अपने भावो की अभिव्यक्ति करता है। अतः इस प्रणाली मे जो शब्द उसे भावानुकूल एवं प्रभावोत्पादक दृष्टिगत होते है, वह उन्हे तुरन्त ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार साहित्यिक शब्दावली के साथ ही अन्य भाषाओ के शब्दों को भी कवि को कई बार अपनाना पड़ता है। कुशललाभ के साहित्य में भी इस प्रवृत्ति को पुष्कल रूप में देखा जा सकता है। आलोच्य कवि द्वारा गृहीत शब्दावली का निम्न-लिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है।

(क) संस्कृत शब्दावली

देव, सुमति, भुवन, चतुर, विचक्षण, अभिराम, आवास, शक्र, कुच, रसाल, दुर्बल, गणिका, निद्रा, कलह, चपक, पवन, परिमल, रिपु, गच्छसि, पयोधर, कटक, सुविशाल, नृत्य, वज्र, व्याल, दुदुभि, प्रीत, नृप, वैश्वानर, व्याकुल, प्रहार, नीर, गगोदक, अटवी, सरोवर, करवाल, वनिता इत्यादि।

(ख) अपभ्रंश-शब्दावली

न्यांण, णाटक, मयण, नग्ग, कज्ज, पज्ज, रत्तो, कज्जल, मन्न, सरग्ग [illegible]

कत्थ, मुद्ध, लुद्धी, पुहप, मझारि, वल्लहा, घज्ज, उस्सर, अट्ठो, वन्ना, दीध्धा, सिद्धां, मग्ग, मुत्ती, जुद्ध, मग्गाण, वझं, जद, उझट्टा, पठिज्जै, थट्टां, हुवद्ध, सुण्णि इत्यादि ।

(ग) राजस्थानी शब्दावली

अगीस, अपछर, जोगिंद, परणी, बीज, सराप, पूठइ, वीसरी, नाह, बत्रीस, पूतली, सोहामणी, परगास, वैरावण, पदमासण, दुकाल, सिरहर, मोख, अख्यर, जोबन, थांन, गवाखि, आउध, नीसरै, आसरम, बाजीत्र, मावीत्र, आरिसौ, नीरत, सूडा, आंतरौ, उतपत, सीरजणहार, झाल, भाणेजा, ओलषी, ऊचाला आदि ।

(घ) देशज शब्दावली

घाल्यउ, गरथ, छाना, लूचरी, झुरइ, सेरी, नीठ, धाहड़ी, नैहा, पाज, नातरौ, थंत, नाठउ, ढींकली, दीकरी, आड़ी, फोकट, ललगी, उनाला, षोड़ो, भोकियो, अमूझई आदि ।

(ङ) राजस्थान की पड़ोसी बोलियों की शब्दावली

(अ) गुजराती—कितला, घरना, थई, मूकी, गयुं, ध्राश, एतलू, नगर नो, मोकलइ, माणस, बीजी, मोकल्स्या, पामी, एम, नु, जूवा, हुवइ, जे, ते, मोजडी इत्यादि ।

(आ) ब्रज—पठावई, पेषतां, भाजे, जिम, तिम, इम, आए, सुहाए, चलाए आदि ।

(इ) पंजाबी—तोनू, किथ्थै, गथ्थागथ्थ, चंग आदि ।

(च) विदेशी शब्दावली

दरबार, बगसो, फत (फतह), दांम, अरदास, मुसताक, फतां, दीनार, जुदा-जुदा, नफर, हलाल, महल, फदिआ, फुरमांण, हीकत, नीसांण, षवास, फौज इत्यादि ।

(छ) अनुरणात्मक शब्दावली

झलहलई, गहगहई, महमहइ, धड़हड़ी, विलविलइ, हा-हा, चहल-बहल, कुरलाइया, वलवलती, षड़हड़, हलझल, झब-झब, डब-डब, घमघमंतउ, गड़ड़इ, घंण, घणतण, कउडति, बड़क्कइ, कसमसत इत्यादि ।

(ज) पर्यायवाची शब्दावली

(अ) निरर्थक पुनरावृत्ति—अरथ-गरथ, लस्टपुस्ट, तरल-सरल, जरा-जुफत, दाम-दलेल, ललभल, सांण-दांण, खलभल, माय-ताय, तग चंग आदि ।

(आ) पर्याय—राजा—राउ, राव, राइ, राजान, भूप, नृपति । प्रियतम—नाह, प्रीतम, वालहा, कता, साहब, प्रिय, सज्जणिया, बालम, सज्जन, प्राण आधार ।

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ

(क) **मुहावरे**—'मुहावरे' अरबी शब्द 'मुहाविरे' का रूपान्तर है। इनके द्वारा भाषा की रूढ़ लाक्षणिकता का परिचय मिलता है। कुशललाभ के साहित्य में इनके अनायास प्रयोग ने कवि की भाषा को चुस्ती, मधुरता, प्रौढ़ता, सरसता एवं भावाभिव्यंजकता प्रदान की है। आलोच्य साहित्य में प्रयुक्त मुहावरे-युक्त कतिपय स्थल द्रष्टव्य हैं—

(१) वेलि विछोह्या पानड़ा, दिन-दिन **पीला होइ**।
(माध० काम० चौ०, चौ० ४०८)

(२) जब थी हम तुम्ह बीछड़्या, तब थी **नींद हराम**।
(वही, चौ० ४४३)

(३) **गम गोचर** मन माहे न राषि। (ढो० मा० चौ०, चौ० २८)

(४) **लूण हलाल** करे सु हिव। (वही, चौ० ११४)

(५) या ते मांडी अवली रीत। (वही, चौ० ६२५)

(६) सुणी वात रिण धवल सही, **काल्हो थयो** कुमार। (वही, चौ० १२५)

(७) विक्रमसीह सुं **खेलै घात**। (ते० रा० चौ०, चौ० १५)

(८) हूँ **भामणा लेउं** ताहरा। (वही, चौ० २९३)

(९) मिल्यो पुत्र अधिक धरइ सनेह, **जाणे तूथे वूठा मेह**।
(वही, चौ० ३५२)

(१०) ए सगलो **कर्म नूं दोस**। (वही, चौ० ३५५)

(११) **हूया रामराज्ये** जीतीवी सद्वही। (महा० दु० सा०)

(१२) वीवाह पछइ पहिली विढण **वातां विसवासीस एहुं**। (वही)

(१३) पूतकाज परि हरियउ सोक अनगल लषमी काम संजोग।
(जि० जि० सं० गा०, गा० ६९)

(१४) पषी वचने लागी प्रीत, **चंद्र चकोरी रातो चीत**।
(भी० हं० चौ०, चौ० ८५)

(ख) **लोकोक्तियाँ**—जीवन सत्य से अभिभूत लोक समाज में प्रचलित कथन लोकोक्तियाँ हैं। वस्तुतः ये समाज का नीति शास्त्र है। इसीलिए लोकोक्तियों से समन्वित भाषा जन समाज पर साहित्यिक विचारों की अपेक्षा अधिक प्रभावोत्पादक होती है। इस दृष्टि से लोकोक्ति के दो प्रकार कहे गए है—पहेली और कहावतें। पहेलियाँ बुद्धि-परीक्षा का साधन है। भावों से इनका गहरा सम्बन्ध नही होता। प्रकृत को गोप्य करने की चेष्टा ही इनमें होती है, जो बुद्धि कौशल पर निर्भर करती है।[३] इसके विपरीत कहावतें अनन्तकाल की अंगुली पर सदा जगमगाने वाले रत्न हैं।[४] लोकोक्ति के दोनों ही भेद कुशललाभ के साहित्य मे कुछ अंश तक उभरे हैं। 'माधवानल कामकदला चोपई' में चौपई २५७-३१९ तक प्रहेलिकाओं के श्रेष्ठ रूप दर्शनीय है। इनमें से एक उदाहरण प्रस्तुत है—

कामकंदला उवाच

सुंदरि चौरे संग्रही, सवि लीधा सिणगार।
नाक फूली लीधी नहीं, कहि प्री कवण विचार ।।२७५

माधवोवाच

अहर रंग रत्तो हूओ, मुखि कज्जल रसि वन्न।
जाण्यो गुंजाहल अछइ, तिण न दूकइ वन्न ।। २७६

कुशललाभ की 'ढोला मारवणी चौपई' की अनेक हस्तलिखित प्रतियों में भी अनेक उत्कृष्ट प्रहेलिकाएँ मिलती हैं।

कुशललाभ की रचनाओ मे प्रयुक्त कहावतों से सम्बन्धित कुछ स्थल द्रष्टव्य हैं—

(१) अति गरवइ रावण गजीयो, **अति सरवत सदा वरजीयो।**
(माध० काम० चौ०, चौ० १४७)

(२) **रहइ किम जल बिन माछली,** प्रीत न पालइ प्री पाछली।
(वही, चौ० ३२६)

(३) **साहसवंत न भाषइ दीन,** सभा माहे अणावे वीण। (वही, चौ० १३७)

(४) ऐती वेला मे मैं किम आवियो, **हीयड़ो फूटी हंस ऊड़ीयो।**
(ढो० मा० चौ०, चौ० ३६१)

(५) नीरत पषे जांणे कुण लोइ, **अणजांणे नर दोस न कोय।**
(वही, चौ० ५५५)

(६) **लोक हासौ न घर हांणि,** कुल कलक होस्यै निरवांणी।
(ते० रा० चौ०, चौ० १८६)

(७) धाई प्रीउ नै पाए पड़ी, **धन वीह वेला धन घड़ी।** (वही, चौ० २३३)

(८) कत काजि जै सेवा करइ, ते कन्या **वंछित वर वरइ।**
(भी० ह० चौ०, चौ० १०२)

(९) लोभइ लागा लालची, ए ऊपनी उगति। (शत्रु० या० स्त०, गा० ४७)

सक्षेप में, कुशललाभ की भाषा १६वी शताब्दी के चतुर्थांश से १७वी शताब्दी के अर्द्धांश में प्रचलित मध्यकालीन राजस्थानी है, जिस पर गुजराती भाषा का प्रभाव है। इस मिश्रित भाषा को अध्यापक बेचरदास दोषी प्रभृति विद्वानो ने 'जूनी गुजराती' कहा है। कवि ने यद्यपि शुद्ध सस्कृत (तत्सम) शब्दावली का प्रयोग किया है, किन्तु उन पर तद्भव प्रवृत्ति भी हावी दिखाई देती है। रूप तत्त्व की दृष्टि से कुशललाभ की भाषा राजस्थानी व्याकरण के अनुरूप है। अधिकाश रचनाओ की प्रतिलिपियो मे वर्त्तनी के रूप 'अइ', 'अउ' ही मिलते है। इससे भी स्पष्ट होता है कि कुशललाभ की भाषा मध्यकालीन राजस्थानी ही है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से कुशललाभ के साहित्य की भाषा का विशिष्ट महत्त्व है।

सन्दर्भ

१. रूप तत्त्व भाषा गठन की लघुतम सार्थक इकाई है, जिसके आगे विश्लेषण करने पर अर्थ नष्ट हो जाता है। एच० ए० ग्लेकसन, एन इंट्रोडक्शन टू डेसक्रेप्टिव लिंग्वि-स्टिक्स, पृ० ५३

२. 'आप' शब्द का प्रयोग निजवाचक एवं आदर सूचक दोनों रूपों में किया जाता है। जब कोई अन्य व्यक्ति संबोधन करता है तो 'आप' आदर सूचक सर्वनाम होता है और जब स्वयं के लिए इसका उपयोग किया जाता है तो वह निजवाचक सर्वनाम कहलाता है।

३. डॉ० सत्येन्द्र, ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ५२०

४. साहित्य, वर्ष ६, अंक १, पृ० २३

८

कुशललाभ की रचनाओं में वर्णित लोकतत्त्व का अध्ययन

परम्परा के प्रवाह में मानव-समाज की अभिव्यक्ति लोकतत्व है। कुशललाभ के साहित्य में भी ऐसी अनेक अभिव्यक्तियाँ मुखरित हुई है, जो तत्कालीन समाज के पारम्परिक रीति-रिवाजों, रहन-सहन, आस्था और विश्वास, लोक रीति और नीति आदि का चित्रण प्रस्तुत करती हैं। इस अध्याय में हम कुशललाभ की रचनाओ मे चित्रित इन्ही तत्वों के सकुल सस्कृति का अध्ययन करेंगे।

(क) सामाजिक जीवन

१. वर्ण-व्यवस्था

वर्ण-व्यवस्था भारतीय समाज की मेरूदण्ड रही है। १९वी शताब्दी के अन्त तक इसका हमारे सांस्कृतिक सगठन मे विशेष महत्त्व रहा है, किन्तु वर्तमान परिस्थितियो मे यह व्यवस्था प्रायः निर्बल बन चुकी है। प्राचीन भारतीय समाज मे ये चार वर्ण थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। कुशललाभ के काव्य मे इनमे से सर्वाधिक चित्रण क्षत्रिय वर्ण का हुआ है। शेष वर्णों का वर्णन यथा-प्रसग ही किया गया है।

"क्षत्रियस्य परोधर्मः प्रजानामेव पालनम्" शुक्राचार्य के इन शब्दों के अनुसार जिसका प्रजा का रक्षण करना ही प्रधान कर्म है, जो शूर और पराक्रमी है तथा दुष्टों का दमन करने में समर्थ है, वही क्षत्रिय है।[1] कुशललाभ की प्रायः सभी रचनाओ मे ऐसे ही क्षत्रिय का चित्रण हुआ है। राजा विक्रमादित्य का कर्त्तव्य, तेजसार, अगड़दत्त और भीमसेन की शूरवीरता तथा ढोला का साहस आदि प्रसगों मे इन नायकों का क्षत्रियत्व ही सन्निहित है।

कुशललाभ ने ब्राह्मण की श्रेष्ठता और दीनता दोनो ही को चित्रित किया है। माधवानल कामकदला चौपई मे बाह्मण अपराधी होते हुए भी अबाध्य माना गया है।[2] क्योंकि उसे समाज मे श्रेष्ठ समझा जाता था, जिसकी सरलता एव शीतलता का परिचय मारवणी के इन शब्दों में मिलता है—

बाबा विप्र म मोकले, जाकी सीतल जात।
मेल्हे घर का मांगता, विरह जगावे राति।।२७३[3]

इसी श्रेष्ठ वर्ण की दीनता का वर्णन कवि ने 'तेजसार रास चौपई'[४] में किया है। बहुत सम्भव है कि ब्राह्मण की इस दीनता का प्रमुख कारण उक्त वर्णित उसका सारल्य एवं शील ही हो जिसे राज्याश्रय ने और अधिक प्रश्रय दिया हो।

श्री पूज्यवाहण गीत,[५] शत्रुंजय यात्रा-स्तवन,[६] जिनपालित-जिनरक्षित संधि गाथा,[७] स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन[८] आदि रचनाओं में वैश्य-समाज के भक्ति-भाव का परिचय मिलता है। इसके अतिरिक्त 'ढोला-मारवणी चौपई'[९] का सौदागर, 'तेजसार रास चौपई'[१०] का श्रावक परिवार भी इसी वैश्य वर्ण की ओर संकेत करते हैं।

शूद्र का धर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ण की निन्दा रहित सेवा करना है।[११] आलोच्य काव्य में इनकी सामाजिक अवस्था का प्रत्यक्ष चित्रण नहीं हुआ है, पर भाट-भोजिक,[१२] मंगता,[१३] दम्माम[१४] आदि जातियों के रूप मे इस ओर अवश्य संकेत मिलते हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि इस समाज में शूद्र वर्ण भी विद्यमान था।

२. जाति-प्रथा

वैदिक युग की यही वर्ण-व्यवस्था कालान्तर में विभिन्न जातियों में परिवर्तित हो गई। परिणाम स्वरूप जातियों के विकास के साथ-साथ उनमें ऊँच-नीच, छूआ-छूत की भावनाएँ भी पल्लवित हुई और अनेक छोटी-बडी जातियों का उद्‌भव हुआ। कुशललाभ के काव्य मे मुख्यत· पुरोहित,[१५] कुम्हार (प्रजापति)[१६], चारण,[१७] खवास,[१८] रेबारी,[१९] जोगी, भाट, भोजिक, महात्मा,[२०] राजपूत[२१] दम्माम आदि प्रचलित जातियों का उल्लेख हुआ है। इनके अतिरिक्त प्रसगवश दैवयोनि से व्युत्पन्न पौराणिक जातियों से भी यह समाज परिचित था। ये जातियाँ है—किन्नर, गन्धर्व, प्रजापति आदि।

३. आश्रम-व्यवस्था

जीवन के चार प्रमुख पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति के लिए ऋषियों ने समस्त समाज को इन चार आश्रमों में विभाजित किया—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। कुशललाभ की रचनाओ के अध्ययनोपरान्त यह भी स्पष्ट होता है कि तत्कालीन राजस्थानी समाज में भी आश्रम-व्यवस्था का प्रचलन था। 'तेजसार रास चौपई' में उल्लेख है कि तेजसार ने अपने पुत्रों को राज-काज सौपकर तथा गुरु से दीक्षित होकर सन्यास ग्रहण किया।[२२] भीमसेन हंसराज चौपई में भी भीमसेन[२३] और हसराज[२४] भी क्रमशः अपने पुत्रों को राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कर जैन गुरु से दीक्षा ग्रहण कर संन्यासाश्रम में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार कुशललाभ के साहित्य में संन्यासाश्रम की प्रविष्टि जैनाचारो के अनुकूल है।

४. पारिवारिक जीवन

परिवार समाज की सार्वभौमिक संस्था है, जो नपे-तुले यौन सम्बन्धों पर आधारित है।[२५] राजस्थानी समाज में परिवार की ऐसी सनातनी संस्था सदा से महत्त्वपूर्ण रही है। कुशललाभ के साहित्य में उस युग के पारिवारिक जीवन का भी अवलोकन किया

जा सकता है। माधवानल कामकंदला चौपई, ढोला मारवणी चौपई, जिनपालित जिन-रक्षित सन्धि गाथा, पार्श्वनाथ दशभव यात्रा स्तवन, अगड़दत्त रास, तेजसार रास चौपई आदि ग्रन्थों में यद्यपि पितृ-सत्तात्मक परिवार प्रणाली ही मिलती है किन्तु इनमें पिता का व्यवहार निरंकुश नहीं है। परिवार में पिता गृह-स्वामी के पद पर प्रतिष्ठित था। प्रत्येक समस्या का समाधान वह परिवार के सदस्यों के सौहार्द्र द्वारा करता था।

इस परिवार में माता-पिता का आदर एवं आज्ञा-पालन करना सन्तान का परम कर्त्तव्य था। इसी भावना से तेजसार अपने पिता की आज्ञा प्रधान द्वारा प्राप्त कर बाराणसी जाता है[२६] तो अपने पिता का आदेश प्राप्त कर जिनपालित एवं जिनरक्षित भी व्यापार हेतु विदेश को प्रस्थान करते हैं।[२७] पुत्रों की भाँति पुत्र-वधुओं का भी अपने सास ससुर का आज्ञा पालन करना अनिवार्य था 'ढोला-मारवणी चौपई' मे सास की अवहेलना करने पर ही मालवणी को इतना कष्ट सहना पड़ा। साथ ही नवागन्तुक वधुओं द्वारा चरण-स्पर्श पर सास-श्वसुर एवं ननदों द्वारा ग्राम, आभूषणादि भेंट स्वरूप देने की भी इस समाज मे परम्परा थी।[२८]

पारिवारिक जीवन में पुत्र का बड़ा महत्त्व था। पुत्रोत्पत्ति जहाँ पैतृक ऋण से उऋण करती थी वहीं पिता के लिए मोक्ष प्राप्ति का कारण भी मानी जाती थी। अतः पुत्र की प्राप्ति के लिए अनेक मनौतियाँ की जाती थी। मनौतियो पर भी पुत्र प्राप्त न होने पर या तो पुत्र गोद लिया जाता था अथवा पुरुष अपना दूसरा विवाह करता था। 'तेजसार रास चौपई' मे अवन्तीपुर का राजा पुत्र प्राप्ति क लिए विविध देवताओं को पूजता है[२९] और अन्त में उसके निधन पर उसके भागिनेय समरसेन को गोद लेकर राजगद्दी पर बिठाया जाता है।[३०] 'ढोला-मारवणी चौपई' मे भी राजा नल को पुत्र-प्राप्ति मनौतियाँ द्वारा ही होती है। वह पुष्कर यात्रा इसी के परिणाम स्वरूप करता है।[३१] 'माधवानल कामकदला चौपई' मे पुरोहित शंकरदास पुत्र की अभिलाषा से ही ३२ विवाह करता है।[३२]

कुशललाभ की रचनाओ मे चित्रित पारिवारिक जीवन में मित्रता का भी विशेष स्थान है। मित्र अपने प्राणो को सकट मे डाल कर भी विपत्ति-ग्रस्त मित्र की सहायता करता है। 'माधघानल कामकदला चौपई' में आगिआ वेताल ने अपने प्राणों को सकट में डालकर अपने मित्र विक्रमादित्य की सहायता पाताल लोक से अमृत लाकर की।[३३] इसी भाँति 'ढोला-मारवणी चौपई' की 'डूमणी' भी गीत गाकर अपने पीहर की सखी मारवणी के सुहाग एवं स्त्रीत्व की रक्षा करती है।[३४]

५. संस्कार

गर्भाधान, पुसवनि, सीमन्तोनयन, विष्णुबलि, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चोल, उपनयन, वेदव्रत, चतुष्टय, समावर्तन, केशान्त, विवाह एवं दाह आदि भारतीय समाज के प्रमुख षोडष संस्कार हैं। ये दो दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं—
१. मानव की शुद्धि एव पवित्रता के लिए तथा, २. मानव की उत्सव-प्रियता।

कुशललाभ के साहित्य मे उक्त सस्कारों में से गर्भाधान, जन्मोत्सव, नामकरण,

और विवाह संस्कारों का ही यत्र-तत्र चित्रण हुआ है। कवि के काल तक आते-आते समाज से इन संस्कारों में से अधिकांश संस्कारों का महत्व या तो समाप्त हो चुका था या वे परिवार मे गुप्त रूप से ही सम्पन्न कर लिए जाते थे। अतः कवि ने उन्हीं संस्कारों को अपनी रचनाओं मे विशेष स्थान दिया है, जिनको व्यक्ति के जीवन के प्रकट रूप से अलग नहीं किया जा सकता।

ढोला मारवणी चौपई मे ढोला के जन्मोत्सव को अत्यन्त धूम-धाम से मनाये जाने का उल्लेख है।[३५] इसी प्रकार 'तेजसार रास चौपई' में तेजसार के जन्म पर अनेक महोत्सव मनाये गए हैं।[३६] माधवानल कामकंदला चौपई,[३७] ढोला मारवणी चौपई[३८] एव तेजसार रास चौपई[३९] कृतियों मे पुत्रों के नामकरण संस्कार की ओर कवि ने संकेत तो दिया है किन्तु विधिवत् उत्सव द्वारा उनके संपादन का उल्लेख कवि ने नहीं किया है।

उक्त वर्णित संस्कारों में विवाह का प्रमुख स्थान है। विवाह द्वारा ही गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो देव-कार्यों को करने का एव सन्तानोत्पत्ति करने का व्यक्ति को अधिकार प्राप्त होता है।[४०] कुशललाभ के साहित्य मे भी विवाह का यही उद्देश्य परिलक्षित होता है। कवि की रचना 'माधवानल कामकंदला चौपई' मे विवाह का उद्देश्य सन्तान की प्राप्ति, ऐश्वर्य-विलासों की प्राप्ति एव राज्यलाभ के पुण्य का परिणाम माना गया है—

> **च्यार पुत्र जाया संतान, प्रगट्या मंदिर नवे निधान।।**
> **विविध विषय सुख भोगवई, राज रिद्धि मंडाण**
> **कुशललाभ इणि परि कहइ, अे सही पुण्य प्रमाण।।[४१]**

इसके विपरीत कवि ने विवाह को धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति का साधन भी माना है। 'ढोला-मारवणी चौपई' मे मारवणी से अपने विवाह की सूचना प्राप्त कर ढोला द्वारा मारवणी की प्राप्ति,[४२] तोते द्वारा मदनमजरी के कष्ट की सूचना प्राप्त कर भीमसेन का उसके साथ विवाह करना[४३] तथा तेजसार द्वारा विजयश्री की योगी से रक्षा कर उसके साथ विवाह[४४] धर्म के प्रति आग्रह है, जिसके माध्यम से काम और मोक्ष की प्राप्ति भी होती है। 'अगड़दत्त रास'[४५] के अगड़दत्त और मदनमजरी के विवाह, 'तेजसार रास चौपई' मे वीरसेन की प्रथम पत्नी की मृत्यु के उपरान्त उसका द्वितीय विवाह तथा ऊमरा-सूमरा द्वारा मारवणी की प्राप्ति के प्रयत्नों में काम ही प्रमुख उद्देश्य रहा है।

(अ) विवाह के प्रकार

हिन्दू समाज मे विवाह एक धार्मिक संस्कार है, जिसकी पूर्ति धर्म-सूत्र एवं स्मृतियों के अनुसार आठ प्रकार से की जाती है। हिन्दू-विवाह के ये ८ प्रकार हैं—ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष, दैव, गांधर्व, असुरी, राक्षसी एवं पैशाच।[४६] कुशललाभ की रचनाओं में प्राजापत्य, गांधर्व एवं राक्षसी विवाह के ही दर्शन होते हैं। प्राजापत्य-विवाह प्रणाली मे वर एव वधु के माता-पिता द्वारा पूरी छान-बीन के पश्चात् सम्बन्ध तय किया जाता है। गांधर्व एव राक्षसी विवाह मे वर कन्या पर आसक्त होकर उसका अपहरण करता है और बाद में विधिवत् उससे विवाह करता है।

'ढोला-मारवणी चौपई' में ढोला का मारवणी एवं मालवणी के साथ विवाह प्राजापत्य-प्रणाली का है। ढोला के दोनों ही विवाहों में वर एवं वधू-पक्ष के परिवार द्वारा पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के उपरान्त ही विवाह सम्पादित हुआ है। 'माधवानल कामकंदला चौपई' में माधव और कंदला के विवाह का प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से प्राजापत्य ही है। तेजसार रास चौपई में तेजसार का अनेक व्यंतरियों पर आसक्त होकर उनसे विवाह, 'भीमसेन हसराज चौपई' मे मदनमजरी के निवेदन पर भीमसेन के द्वारा अपहरण कर उसके साथ विवाह कर लेना तथा 'अगड़दत्त रास' में अगड़दत्त और मदनमंजरी का विवाह गांधर्व-विवाह-प्रणाली की ओर संकेत करते हैं। सरक्षकों की आज्ञा एव उन्ही के द्वारा विधिवत् किया जाने के कारण एणामुखी का तेजसार के साथ विवाह एवं चंपानगरी की राजकुमारी का अगड़दत्त के साथ विवाह प्राजापत्य विवाह ही है।

(ब) विवाह की आयु

मनु ३० वर्ष की आयु वाले पुरुष को १२ वर्ष की कन्या से विवाह करने की स्वीकृति देते है।[४७] 'याज्ञवल्क्य स्मृति' मे कहा गया है कि रजोदर्शन से पूर्व कन्या का विवाह हो जाना चाहिए। अन्यथा प्रत्येक रजोदर्शन पर माता-पिता को गर्भ नष्ट करने का पाप लगता है।[४८] कुशललाभ के काव्य मे मारू के अलावा सभी नायिकाएँ युवतियाँ हैं। यद्यपि 'ढोला-मारवणी चौपई' के अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि विवाह बाल्यावस्था में ५ वर्ष से कम आयु के बालक-बालिकाओं का हो जाता था, पर उनका आपसी सम्पर्क अथवा गौना यौवन-प्राप्ति पर ही होता था। ढोला और मारू की आयु विवाह के समय क्रमश: तीन और डेढ वर्ष की ही थी।[४९] मारू के माता-पिता को गौना कराने की चिन्ता उसके युवती हो जाने पर ही हुई। मारू के माता-पिता की आयु विवाह के समय क्रमश: १६ और १२ वर्ष की थी।[५०] 'माधवानल कामकंदला चौपई' में शिला-रूप अप्सरा जयन्ती से विवाह के समय माधव की आयु बारह वर्ष की थी।[५१] जयन्ती भी अपनी शाप प्राप्ति के समय की वय में मानव रूप धारण कर प्रकट हुई। यह अवस्था उनके यौवन की ही थी। अगड़दत्त रास, तेजसार रास चौपई एवं भीमसेन हंसराज चौपई की नायिकाएँ भी पूर्ण युवतियाँ हैं। इन सभी से यह स्पष्ट होता है कि कुशललाभ के साहित्य मे चित्रित समाज मे बाल-विवाह एव युवा-विवाह दोनों ही प्रचलित थे। विवाह की कोई निश्चित निर्धारित आयु नही थी।

(स) बहु पत्नी विवाह की प्रथा

कुशललाभ के साहित्य के अध्ययनोपरांत यह निष्कर्ष भी निकलता है कि उसमें चित्रित समाज में बहु पत्नी विवाह का भी प्रचलन था। इसके प्रमुख दो कारण थे। प्रथमत: कामवासना और राजनीतिक सहायकों की वृद्धि की भावना तथा द्वितीय प्रथम रानी से पुत्र-जन्म का अभाव। 'तेजसार रास चौपई' में तेजसार का आठ व्यंतरियों के साथ विवाह, 'भीमसेन हसराज चोपई' में भीमसेन का मदनमंजरी एवं कनकमंजरी के साथ विवाह प्रथम वर्ग के उदाहरण हैं तथा पुरोहित शंकरदास का बत्तीस स्त्रियों के साथ

विवाह करना[५२] द्वितीय वर्ग का उदाहरण।

(व) वर-चयन की पद्धति

हिन्दू समाज में कन्याओं के वर-चयन में प्रमुख भाग उनके माता-पिता अथवा अन्य बुजुर्गों का ही होता है। कुशललाभ की रचनाओं में भी यही परम्परा मिलती है। 'ढोला-मारवणी चौपई' में राजा नल अपने पुत्र ढोला के लिए मारवणी के पिता पिंगल से बातचीत करते हैं।[५३] 'भीमसेन हंसराज चौपई' में भी मदनमंजरी के माता-पिता योगी के प्रस्ताव पर विस्तृत चर्चा करते हैं।[५४] इसके अतिरिक्त कुशललाभ के साहित्य में विवाह-सम्बन्ध ब्राह्मण, नाई (खवास), भाट प्रधान आदि के द्वारा सूचना भिजवाकर भी तय हुए हैं। 'ढोला-मारवणी चौपई' में जहाँ भाऊ भाट और जैसल ख़वास की सहायता से पिंगल और ऊमा देवड़ी का विवाह-सम्बन्ध स्थापित हुआ है, वहीं राजा नल ने अपने प्रधान को भीमसेन के पास भिजवाकर ढोला का मारवणी के साथ विवाह-सम्बन्ध तय किया है।[५५]

इस समाज में कन्याएँ स्वयं भी वर-चयन करती थीं। 'तेजसार रास चौपई' की व्यंतरी एणामुखी ने अपने वर रूप में तेजसार का प्रस्ताव अपनी माता के समक्ष रखा और उसकी माता ने स्वय तेजसार से निवेदन कर उसकी इच्छानुसार उसका विवाह राजकुमार तेजसार के साथ किया।[५६] इसी भाँति 'अगड़दत्त रास' में चम्पापुरी का राजा भी अपनी पुत्री की इच्छानुसार उसका विवाह अगड़दत्त के साथ करता है।[५७] 'ढोला-मारवणी चौपई' में मारू द्वारा अपने पिता के समक्ष पुरोहित की अपेक्षा याचकों को भिजवाने का प्रस्ताव भी इसी ओर सकेत करता है।[५८]

(य) अन्तर्जातीय विवाह

'तेजसार रास चौपई' का कुमार तेजसार क्षत्रियवंशी है किन्तु एणावती, विजयश्री आदि आठ व्यंतरियों के साथ वह अपना विवाह करता है। अगडदत्त स्वयं क्षत्रिय है, पर चम्पानगरी के नगर सेठ सगर की पुत्री मदनमंजरी के साथ विवाह करता है जो जाति से वैश्य है। 'महामाई दुर्गा सातसी' मे ब्रह्माणी विषकन्या-रूप में शुम्भ नामक राक्षस के साथ विवाह करती है।[५९] 'माधवानल कामकदला चौपई' में विक्रमादित्य द्वारा समझाने पर भी माधव कामकंदला को श्रेष्ठ नारी मानता है।[६०] इन प्रमाणों के आधार पर यह कहना उपयुक्त होगा कि कुशललाभ की रचनाओं में चित्रित समाज में अन्तर्जातीय विवाह का भी प्रचलन था।

(र) बारात का वर्णन

'ढोला-मारवणी चौपई' में राजा पिंगल की बरात[६१] एव 'भीमसेन हंसराज चौपई' में हसराज की बारात[६२] के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि इस समाज में बारात को अनेक साधनों से सजाया जाता था। चतुरंगिनी सेना, चारण-भाटों, याचकों एव सम्बन्धित बड़े-बड़े राजाओं का लबाजमा बारात की शोभा थी। बारात के चारों ओर

अनेक वाद्ययन्त्र बजते चलते थे।

(ल) विवाह सम्बन्धी रीति-रिवाज

(अ) सुहागरात—विवाहोपरान्त पति-पत्नी का जिस रात प्रथम संयोग होता है, उसे सुहागरात कहा जाता है। यह प्रथा प्रायः सभी समाजों में आज भी प्रचलित है। 'ढोला-मारवणी चौपई' में ऐसे स्थल दो स्थान पर आए हैं। प्रथम स्थल ऊमा देवड़ी एवं पिंगल राय की सुहागरात का है तथा अन्य ढोला और मारवणी के संयोग के क्षणों का। ऊमा देवड़ी का प्रिय-मिलन द्रष्टव्य है—

सुन्दरी सोल सिंगार सझि, सेज पधारी संझ।
प्राण नाथ (र) प्रीतम मिली, करि सिणगार सज॥[६३]

मारवणी को संयोग हेतु उसकी सखियाँ उसका शृंगार कर प्रियतम के समागमनार्थ भेजती हैं, जहाँ ढोला उसके सौंदर्य को देखकर स्तम्भित हो जाता है—

सषी चलावे घर गई, प्रिय मीलियो एकन्त।
हंसता ढोला चमकीयो, बीज लिषी के दंत॥[६४]

(आ) लग्न-प्रथा—इस समाज में लग्न का भी विशेष महत्त्व था। लग्न से अर्थ है विवाह-तिथि का निर्णय। 'ढोला-मारवणी चौपई' में उल्लेख है कि विवाह-सम्बन्ध तय होने पर ऊमा देवड़ी के शुभ लग्न निकलवाए गए और तब ढोला पाणि ग्रहण के लिए रवाना हुआ।[६५] इसी भाँति मारवणी के भी लग्न निर्णय पर ढोला की बारात आती है।[६६] 'तेजसार रास चौपई' मे भी यह परम्परा अनेक स्थलो पर मिलती है।

(इ) पाणिग्रहण—मण्डप मे बैठने से पूर्व कन्या को स्नान कराना अनिवार्य था[६७] तथा अग्नि की साक्षी में पति-पत्नी के हाथो मे मेंहदी रखकर हथलेवा जोड़ा जाता था, जिसमें कन्या के सम्बन्धी एवं माता-पिता अनेक धन-धान्य वस्त्राभूषण, हाथी-घोडे, दास-दासी एवं गाँव भेंट करते थे।[६८]

(ई) दहेज-प्रथा—समाज मे दहेज-प्रथा का भी प्रचलन था। यह लड़की के विवाह अथवा गौने के समय दिया जाता था। सामन्ती समाज में दहेज मे दासियाँ भी दी जाती थी। 'ढोला-मारवणी चौपई' मे झाली रानी अपनी पुत्री को एक दीपधारिणी सहित विदा करती है।[६९] तो मालवणी का पिता उसे ५०० हाथी, ५०० नगर, २७ लाख गाँव, चार हजार सैनिक घोड़े एव धन-धान्य दहेज मे देता है[७०] और मारवणी भी अपने दहेज मे अतुल भण्डार प्राप्त करती है, जिसे भाऊ भाट नलवरगढ़ लाता है।[७१] ऐसा ही सुसज्जित दहेज हसराज की पत्नी रूपमती को उसके माता-पिता देते हैं।[७२]

(उ) वर-वधू का स्वागत एवं मुंह दिखाई—विवाह के पश्चात् वर-वधू के लौटने पर वर पक्ष के नगरवासी सीमा पर ही उनका स्वागत करते थे। आरम्भ में वर-वधू को नगर के बाहर कुए अथवा बगीचे में ठहराया जाता था। तत्पश्चात् शुभ मुहुर्त में गृह-प्रवेश करवाया जाता था।[७३] इस रीति को राजस्थानी समाज मे 'सामैं-लेणो' कहते हैं।

वर-वधू के गृह-प्रवेश के उपरान्त बहु की मुंह दिखाई होती थी, जिसमें सम्बन्धी नव-वधू को अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ भेट देते थे। राजसिक परिवारों मे सास-श्वसुर अपनी नव-वधू को इस अवसर पर अनेक गाँव एव हाथी-घोड़े भी भेंट करते थे। 'ढोला-मारवणी चौपई' में इस अवसर पर मारू द्वारा चरण-स्पर्श करने पर उसके श्वसुर दस बड़े गाँव एव सास स्वर्ण-शृंगार के प्रसाधन प्रदान करती है।[७४]

समाज में नारी का स्थान

कुशललाभ की अनेक रचनाएँ तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति का दिग्दर्शन भी कराती है। इस समाज की स्त्रियो में स्वकीय प्रेम की प्रगाढ़ता थी। 'माधवानल कामकदला चौपई' मे अपने सच्चे प्रेम की रक्षा के लिए कामकंदला को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है। 'ढोला-मारवणी चौपई' में मारू को जब से अपने विवाह की प्रतीति होती है, तभी से वह ढोला को प्राप्त करने का प्रयत्न आरम्भ कर देती है तो मालवणी भी अपने प्रेम की रक्षार्थ मारू के सदेशवाहकों को ढोला तक पहुँचने ही नहीं देती।[७५] विजयश्री जब मुनि-मण्डली से अपने विवाह की चर्चा सुनती है तो वह तुरन्त अपने भावी वर तेजसार की खोज मे कथित जगल की ओर निकल पड़ती है।[७६] 'भीमसेन हसराज चौपई' की मदनमजरी भी भीमसेन के साथ अपने विवाह का निर्णय कर लेने के पश्चात् अपने पिता की आज्ञा की भी अवहेलना करने लगती है।[७७]

मातृत्व के प्रति मोह एव वात्सल्य की भावना भी इस समाज की नारी में परिलक्षित होती है। मारवणी की माता ऊमा देवड़ी जब उसके विरह की कथा सुनती है तो वह तुरन्त ढोला को बुलाने की प्रार्थना अपने पति पिगल से करती है।[७८] स्वयं ऊमा देवड़ी की माता भी अपनी सन्तान के सुखी जीवन की कामना हेतु ही रिणधवल की अपेक्षा पिगल राय के साथ अपनी पुत्री का विवाह करना चाहती थी। एणामुखी की माता भी अपनी पुत्री की भावना को जीवित रखने के लिए ही तेजसार की खोज करती हुई उसके पास पहुँचती है[७९] और पुत्री का विवाह उसके साथ कर सुख का अनुभव करती है।

लड़की के विवाह के अवसर पर स्त्रियों को दासी रूप मे देना तत्कालीन समाज मे स्त्रियों की दुर्दशा का द्योतक है। ऊमा देवडी की माता उसकी विदाई पर उसके साथ एक दीपधारिणी दासी रूप मे भेंट करती है[८०] तो मारवणी को दहेज में ५० दासियाँ दी जाती है।[८१] डावडी अथवा दासी देने की यह प्रथा आज भी बड़े-बड़े ठाकुर-घरानों में देखी जा सकती है। इसी कुप्रथा के समानान्तर नारी-अपहरण की प्रथा भी इस समाज में प्रचलित थी। 'ढोला-मारवणी चौपई' मे ऊमरा-सूमरा के षड्यंत्र में इसी प्रथा की ओर संकेत हुआ है।

'ढोला-मारवणी चौपई'[८२] के योगिनी-ढोला-सवाद तथा 'अगड़दत्त रास'[८३] के विद्याधर-अगड़दत्त-सवाद प्रसग से इस बात का भी पता चलता है कि तत्कालीन समाज मे सती प्रथा का प्रचलन था। पति की मृत्यु पर स्त्री का उसके साथ जल मरना सतीत्व का प्रतीक था किन्तु पत्नी के साथ पति का जलना अनिवार्य न था। यदि ऐसा कभी हो भी जाता तो उसे परम्परा विरुद्ध माना जाता था।

७. वेश्या-वृत्ति

भारत प्राचीन काल से ही वेश्या वृत्ति का प्रमुख केन्द्र रहा है। यहाँ आरम्भ से ही वेश्याएँ राज्याश्रित थीं। जातकों में इन्हें 'जनपद-कल्याणी' नाम से अभिहित किया गया है। बुद्ध के अनुसार वेश्याओं को भी पंचशील-व्रत-पालन की अनुमति थी। महावीर स्वामी ने भी वेश्याओं को धर्म में दीक्षित होने का अधिकार दिया।[८४] कौटिल्य ने भी सर्वांगपूर्ण शासन के लिए वेश्या का अस्तित्व स्वीकार किया है। किन्तु उनके लिए शील धर्म के पालन की चर्चा नहीं की है।[८५] यही परम्परा विक्रमादित्य के समय में भी प्रचलित थी। उसके नगर में ६ सहस्र वेश्याओं के निवास का उल्लेख भी मिलता है।[८६] 'माधवानल कामकंदला चौपई' की नायिका कामकदला भी एक वेश्या पुत्री है और कामसेन राजा की राजनर्तकी के रूप में उसकी प्रतिष्ठा है। कामकदला का माधव के साथ प्रेम होने पर जिस प्रेम-निष्ठा, त्याग, समर्पण और शीलधर्म का परिचय दिया कि उससे प्रभावित होकर राजा विक्रमादित्य ने भी उसको माधव को दिलवाने के लिए प्रयत्न किए और उसमें वह सफल भी हुआ। कामकंदला के चरित्र के शील की श्रेष्ठता का उल्लेख कवि ने इन शब्दो में किया है—

उत्तम कुल जे अवतरइ, पालइ उत्तम रीति।
अचिरज केहउ चित्तनउ, जउ वासइ वारू भीति।।
अेक वेस्या कुल ऊपनी भर जोवन घण लीण।
तोही निरतो पालीयो,, कामकंदला सील।।[८७]

८. आचार-विचार एवं शिष्टाचार

कुशललाभ की रचनाओ में चित्रित समाज के प्रमुख आचार-विचार एवं शिष्टाचार निम्नलिखित थे—

(अ) वधू द्वारा सास-श्वसुर, ननद आदि का आदर— माधवानल कामकदला चौपई, ढोला-मारवणी चौपई एव भीमसेन हसराज चौपई से स्पष्ट होता है कि इनमे चित्रित सामन्ती-समाज में सास-श्वसुर की आज्ञा का पालन एवं चरण-स्पर्श करना वधुओं का कर्तव्य था। 'भीमसेन हसराज चौपई' की हसिनी इसी भावनावश अपने सास-श्वसुर मदनमजरी और भीमसेन के चरण-स्पर्श करती है।[८८]

इन शिष्टाचार की अवहेलना पर वधू को सास के कोप का भाजन बनना पड़ता था। मालवणी को ढोला का वियोग दिलवाने का कारण मालवणी द्वारा सास के वचनों की अवहेलना करना ही है,[८९] जबकि माधवानल कामकदला चौपई की कामकदला अपनी सास के चरणस्पर्श कर अनेक आशीर्वाद प्राप्त कर लेती।[९०]

(आ) बधावा देने की प्रथा—बधावा से तात्पर्य बधाइयों से है। किसी भी शुभ कार्य अथवा अवसर पर आपस मे बधाइयाँ समर्पित करना समाज अपना कर्तव्य समझता है। कुशललाभ के साहित्य मे भी इसे शिष्टाचार का अग माना गया है। 'ढोला-मारवणी चौपई' में मारवणी के जन्म पर उसके माता-पिता समस्त नगर में 'बधावा'

करते हैं।[९१] इसके पश्चात् जब ढोला मारवणी की प्राप्ति के लिए पिंगलगढ़ पहुँचता है तब भी मारू की सखियाँ पिंगल राय के पास बधाइयाँ देने हेतु एक सेवक को भिजवाती है और राजा ढोला को बधाई स्वरूप एक घोड़ा भेंट करता है।[९२] 'तेजसार रास चौपई' में भी श्रीमती अपने पति तेजसार की कुशलता का समाचार लेकर अपने निवास पर आती है और अन्य चार बहनों को बधाइयाँ देती है।[९३] 'स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन' मे भी भक्तजनों का तीर्थ स्थल पर पहुँचकर परस्पर बधाइयाँ देने का उल्लेख हुआ है।[९४] 'महामाई दुर्गा सातसी' में विजयोपरान्त सभी देवताओं द्वारा मोतियों से भरे थालों से देवी को बधाइयाँ देने का उल्लेख है।

यथा—

देवी एम दो मज्ज दांणव दलीया।
महूच्छव्व मांडे सुरां साथ मिलियां।
पाड़ें वंत्य निकंटक कीधी प्रजू थी।
हूया राम राजे जीती वी सहृद्दी।
आ हिव वस्यू हवां तेण आणंद आवइ।
बाह्यणी भरे थाल मोती बधावइ॥ (छन्द ३५५)

(इ) **लाख पसाव**—कला-प्रिय राजा पसाव द्वारा अपने राज्य के कलाकारों को सम्मानित करता था तथा शुभ अवसरो एवं कार्य की पूर्णता पर भी पसाव देने की परम्परा इस समाज में थी। 'माधवानल कामकदला चौपई' मे माधव की कला पर प्रसन्न होकर कामसेन उसका विविध आभूषणों एवं पच पसाव द्वारा सत्कार करता है।[९५] इसी भाँति 'ढोला-मारवणी चौपई' में ढोला के साथ मारू के सम्बन्ध की स्वीकृति पर पिंगल नल को पसाव देकर सम्मानित करता है।[९६] 'तेजसार रास चौपई' मे भी इस शिष्टाचार का उल्लेख हुआ है। यहाँ राजा समरसेन अपनी विमाता (मामी) के वधिकों के साहस एवं आज्ञापालन से प्रसन्न होकर उन्हे 'लाख पसाव' से सम्मानित करता है।[९७]

(ई) **भेंट और बक्षीस प्रथा**—तत्कालीन सामन्ती समाज मे अतिथियों, रक्षको, भाटो एव खवासो को भेट एव बक्षीस देना भी शिष्टाचारानुकूल समझा जाता था। तत्कालीन सामन्ती समाज में अतिथियो एवं रक्षकों के सत्कार निमित्त तथा भाटों, खवासों एवं अन्य निम्न वर्ग के व्यक्तियों को उनके साहसिक कार्यों पर भेंट और बक्षीस देना भी शिष्टाचार का प्रमुख अंग था। अतिथि माधव जब विक्रमादित्य से आज्ञा प्राप्त कर अपने घर लौटता है, तब वह माधव को ५०० बड़े गाँव, ७ भूमि और महल तथा जब तक वह वहाँ रहता है तब तक प्रतिदिन एक लाख मोहरे प्राप्त करता है।[९८] मारू के याचकों द्वारा विदा माँगने पर ढोला भी उन्हें विविध भेट देकर विदाई देता है।[९९] इसी भाँति योगी-योगिनी[१००] तथा विद्याधर[१०१] क्रमश: मारवणी एव मदनमंजरी को पुन-र्जीवित कर ढोला और अगड़दत्त द्वारा पुरस्कृत होते है।

९. प्रचलित लोक-विश्वास

लोक-विश्वास जनमानस में युग-युग से प्रतिष्ठित वे विश्वास हैं, जिनका आधार

तर्क न होकर भावना है तथा जो केवल इसी भाव शक्ति के बल पर तर्क के तीरों को कुंठित करते हुए अमर बेल से निर्मूल होकर भी पल्लवित होते रहते हैं।[१०२] कुशललाभ के साहित्य में ऐसे अनेक शकुन एव लोक-विश्वासों का उल्लेख हुआ है। अगों का फुरकना,[१०३] स्वप्न मे वांछित वस्तु का दर्शन,[१०४] छीक[१०५] आदि अनेक शुभ शकुन समझे जाते थे। मन्त्रादि पर भी लोगो का पूर्ण विश्वास था। इसी विश्वास से योगिनी योगी से मारू को पुनर्जीवित करने की प्रार्थना करती है[१०६] तथा अवन्तीपुर की रानी भी योगी द्वारा अभिमन्त्रित फल को प्राप्त कर पुत्र-जन्म की अपेक्षा करती है।[१०७] अधविश्वासों के इस आग्रह पर ही साल्ह कुमार के माता-पिता उसे ढोला नाम से पुकारने लगे।[१०८]

समाज मे रोहिणी एव सूर्य की पूजा का भी प्रचलन था। लोगों का मनौतियों एव जात देने मे भी विश्वास था। पुत्र की प्राप्ति की इच्छा से राजा नल पुष्कर की जात देता है।[१०९] 'तेजसार रास चौपई' मे भी देवी की जात देने का उल्लेख हुआ है।[११०] 'ढोला-मारवणी चौपई' एव 'भीमसेन हसराज चौपई' से यह भी ज्ञात होता है कि गौरी पूजन के कारण कन्याओ को श्रेष्ठ वर की प्राप्ति होती थी। मारवणी को ढोला जैसे श्रेष्ठ वर की प्राप्ति गौरी पूजन का ही परिणाम कहा गया है—

एक कहे तूठो करतार, पूजी गोरू घणे प्रकार।
तोहीज मारवणी ढोले मिली, बीहुं सारीषी जोड़ी जुड़ी ॥[१११]

कुशललाभ के साहित्य मे चित्रित समाज को मोक्ष एव कर्मों के फल पर भी अटूट विश्वास था। कवि की जैन-भक्ति एव जैन चरित सम्बन्धी रचनाएँ मोक्ष प्राप्ति का साधन ही बतलाती है। कवि की कुछ रचनाओ म कर्मवाद को भी प्रश्रय प्राप्त हुआ है। सुदीर्घ विछोह के पश्चात् जब ढोला मारू से मिलता है तो वह इस अन्तराल का कारण अपने पूर्व जन्म के कर्मों को ही बताता है।[११२] माधव भी कामसेन द्वारा निष्कासन की आज्ञा को राजा का दोष न मानकर स्वय के कर्मों का दोष मानता है।[११३] इसी भाँति 'तेजसार रास चौपई' मे जब तेजसार पुन. अपने माता-पिता से मिलता है तो वह इस अन्तराल को अपने कर्मो के दोष रूप मे ही स्वीकारता है।[११४]

इन विश्वास एव आचार-विचारों के अतिरिक्त कुशललाभ की रचनाओं में शुभराज,[११५] पइसारा,[११६] विवाह मे चवरी बनाना[११७] कंकोत्री भेजना,[११८] सामेला[११९] माता द्वारा पुत्र की भामण लेना,[१२०] भाटों द्वारा विरूदावली गान,[१२१] लेख खुदवाने की प्रथा,[१२२] शुभ अवसरों पर वाद्य-यन्त्रो का बजना,[१२३] युद्ध के समय मे सिंधु राग का गान,[१२४] दक्षिणांग से पक्षियों का बोलना,[१२५] वृक्ष पूजन,[१२६] धार्मिक स्थलों पर स्नान से निरोगता[१२७] आदि अनेक प्रथाओं, विश्वास एव आचार-विचारो का अंकन मिलता है।

१०. खान-पान एव रहन-सहन

कुशललाभ की रचनाओ मे वर्णित समाज का रहन-सहन उच्च स्तरीय था। राजा लोग विशाल महलो मे निवास करते थे तथा उनकी रानियो की सेवा मे अनेक दासियाँ रहा करती थीं। दाह-सस्कार के लिए भी राजसिक परिवारों मे अगर एवं चंदन

का प्रयोग किया जाता था।[128] इसके विपरीत तत्कालीन जैन-समाज अपना अधिकांश धन धार्मिक यात्राओं पर व्यय करता था। यह उनके समाज का अनिवार्य रिवाज था।[129] 'तेजसार रास चौपई' मे लिखित 'सतरभक्ष भोजन आहार···' पंक्तियों द्वारा इस समाज की रूचियो का भी पता लगता है।[130] पेयपदार्थों के रूप मे मदिरा का सेवन किया जाता था[131] तथा ताम्बूल का प्रयोग भी यह समाज करता था।[132]

११. वस्त्राभूषण एवं शृंगार-प्रसाधन

कुशललाभ की रचनाओं मे पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो के वस्त्रों की नामावली का ही उल्लेख हुआ है। ये वस्त्र हैं—हीरचीर, सोवन पट, झूल, घाघरा, दिखणी चीर, कचुकी, पटकूल, झीणे वस्त्र इत्यादि। इन वस्त्रो के साथ ही तद्‌युगीन स्त्रियाँ जूतियों का भी उपयोग करती थी, जो इन पंक्तियों से स्पष्ट है—

तंती नाद तंबोल रस, सख सूधो ज्यांह।
आसण तुरी पग मोजड़ी, कीसो देसावर त्यांह॥[133]

कवि की कुछ रचनाओं में प्रचलित षोडष शृगारों मे से उबटन, स्नान, केश-विन्यास, पान, अंजन, अलक्तक, पुष्पहार, बिन्दी (तिलक), आभूषण, गंधलेपन आदि प्रसाधनो का भी उल्लेख मिलता है। उदाहरणार्थ कुछ प्रसाधनों का उल्लेख प्रस्तुत है—

(क) उबटन एवं स्नान

सषी ए ऊगट मांजणा, षीजमत करे अनंत।
मारवणी मंदिर महले, कामणी मीलियो कंत॥[134]

(ख) गंधलेपन, अंजन एवं तंबोल

अंग चंदन केसर घोलि, अधर वंशन रंगिल तंबोल।
अंजन सुं आंजी आंखी, जाणे विकसि कमल पाखड़ी॥[135]

षोडष-शृगार मे आभूषणों का विशिष्ट महत्त्व था। कुशललाभ के साहित्य की नारी रत्नजड़ित बहिरखा, सीस (शीश) फूल, नवसरहार, कंकण, नेउर (नुपुर), चूड़ियाँ, करधनी, सोंहली, नकफूली, कुंडल, मोती, पायल, झांझर,[136] नवसरहार[137] आदि आभूषणों का प्रयोग करती थी।

१२. मनोविनोद एवं बौद्धिक विलास

यों तो कुशललाभ के साहित्य में मनोविनोद-सम्बन्धी साधनों का विस्तार से उल्लेख नही मिलता, किन्तु 'ढोला-मारवणी चौपई' एव 'माधवानल कामकंदला चौपई' से यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में आखेट,[138] देशाटन,[139] जल केलि,[140] नृत्य, सगीत एवं नाटक आदि मनोविनोद एवं मनोरंजनों के साधनों का प्रचलन था। नाटक एवं नृत्य मे स्त्रियाँ भी भाग लेती थीं। समय-समय पर राजा सार्वजनिक मनोरंजन के

लिए नृत्य एवं वीणा वादन से सम्बन्धित कार्यक्रम आयोजित करवाता था। 'माधवानल कामकंदला चौपई' में इन्द्र महोत्सव के अवसर पर कामसेन द्वारा नृत्य के आयोजन का यही उद्देश्य है।[१४१]

इसी रचना[१४२] द्वारा कथा 'भीमसेन हंसराज चौपई'[१४३] द्वारा यह भी ज्ञात होता है कि इस समाज में मनोविनोद के साधन रूप में बौद्धिक-विलास का भी प्रचलन था। बौद्धिक विलास के प्रमुख साधन गाहा, गूढ़ा, कवित्त, रस, गीत, पहेली, नाटक आदि थे।

पहेली बुझोवल एवं समस्या पूर्तियों को नायक-नायिका अपने चातुर्य परीक्षण के रूप में प्रयुक्त करते थे। इसके उदाहरण रूप में माधव एव कामकंदला-वार्तालाप प्रस्तुत किया जा सकता है।[१४४]

(ख) सांस्कृतिक जीवन

१. कलाएँ

कलाएं मानव संस्कृति की उपज है। निसर्ग से युद्ध करते हुए मानव ने श्रेष्ठ सस्कार के रूप में जो सौन्दर्य-बोध प्राप्त किया है, वही सब कला है।[१४५] यह दो प्रकार की कही गई है—१. उपयोगी कला तथा २. ललित कला। कुशललाभ की रचनाओं में ललित कलाओं का ही वर्णन मिलता है, जिन्हें वर्गीकृत रूप में इस प्रकार समझा जा सकता है—

(अ) स्थापत्य—कुशललाभ की प्राय: सभी रचनाओं में गढ (प्रासाद), कोट (परकोटे), मंदिर आदि का अनेक स्थलों पर नामोल्लेख हुआ है। यद्यपि कवि ने इनके स्थापत्य का तनिक भी बिवरण नही दिया है, फिर भी यह अनुमान किया जा सकता है, कि ये प्रासादादि तत्कालीन विकसित स्थापत्यकला के ही परिणाम थे।

(आ) संगीत-नृत्य, नाट्य एवं संगीत—ढोला-मारवणी चौपई, माधवानल कामकदला चौपई एव स्थूलिभद्र छत्तीसी के अध्ययन द्वारा ज्ञात होता है कि इनमें चित्रित समाज मे नृत्य, नाट्य एव सगीत कला का प्रचुर प्रचार था। राजा अनेक पेशेवर कलाकारों को अपने आश्रय मे सादर रखता था। यहाँ डूमणी, वेश्या कामकदला आदि ऐसे ही पेशेवर कलाकार हैं। राजा कलाकारों की विशिष्टता पर उन्हें पुरस्कृत भी करता था। माधव राजमहल के बाहर खड़ा हुआ ही वाद्य बजाने वाले में त्रुटि बता कर राजा से पुरस्कृत होता है।[१४६] कामकदला नृत्य मे इतनी प्रवीण थी कि उसने कुचो पर बैठे भ्रमर को न्यास पवन द्वारा उड़ा कर अपने प्रियतम माधव की परीक्षा कर ली।[१४७]

कुशललाभ की रचनाओं मे तंती, मृदंग,[१४८] पखावज,[१४९] वीणा,[१५०] नीसाण[१५१] (नगारा) आदि वाद्य-यन्त्रों का उल्लेख हुआ है। इनमें से वीणा का अधिक प्रचार था। इसी भाँति नृत्यों में चर्चरी एवं रागों में मारू का विशेष प्रचार था।

(इ) काव्य-कला—कुशललाभ की रचनाओ द्वारा तत्कालीन साहित्यिक परम्परा की ओर भी संकेत मिलता है। गाथा, गीत, गूढोक्ति, कथा, पहेली, काव्य एवं नाटक आदि साहित्यिक विधाएँ लोकप्रिय थीं जो कामकंदला एव हितसागर के इन कथनों द्वारा स्पष्ट है—

(क) कामकंदला इम कहे, अजि अछे बहु रात।
गाहा गूढ़ा कवित्त रस, कहिको नवली बात ।।
गीत विनोद विलास रस, कहिको नवली बात।
कइ निद्रा कइ कलह करि, मूरखि दिवस गमात ।।[१५२]

(ख) नाद विनोद गीत नाटक रस, करइ कतूहल केलि।
उचित दान याचक नइ आपइ, मन गमता नरमेलि ।।[१५३]

२. शिक्षा-प्रणाली

कुशललाभ की रचनाओं में चित्रित समाज में शिक्षा आश्रमों में ही दी जाती थी[१५४] तथा एक गुरु के पास अनेक छात्र पढ़ते थे।[१५५] छात्र भिक्षावृत्ति द्वारा अपना एव अपने गुरु का जीवन-यापन करते थे। अध्ययन के विषय, पद्धति आदि के बारे में यहाँ कोई उल्लेख नहीं मिलता। नारी को ललित कला-सम्बन्धी शिक्षा दी जाती थी, ऐसा कामकंदला,[१५६] मारवणी[१५७] एवं कोश्या[१५८] के संवादों से ज्ञात होता है।

३. नैतिक-स्तर

कवि की रचनाओं का मूल वर्ण्य सामन्ती एवं जैन समाज है। कवि ने इन दोनों ही समाजों में प्रचलित नीति को विभिन्न उक्तियों में अभिव्यक्ति दी है। प्रेम के क्षेत्र में, इन समाजों मे नारी की समर्पण भावना का विशेष महत्त्व था।[१५९] नारी के साथ ही पुरुषों का भी अपनी प्रेमिका के प्रति समर्पण का उदाहरण प्रस्तुत है—

एह गुनह खमज्यो माहरो, मि विजोग्य कीधो ताहरो।
नीरत पखे जांणे कुण लोई, अणजांणे नर दोस न कोई ।।[१६०]

प्रेम-सम्बन्धी नीति के साथ ही सामाजिक एव पारिवारिक नीतियों का चित्रण भी कुशललाभ की रचनाओं में हुआ है। मारवणी की विरह-कथा सुनकर उसके माता-पिता चिन्तित होते हैं[१६१] तो एणावती से अपने विवाह की प्रतिज्ञा सुनकर अपने कर्त्तव्य की पूर्णता के लिए उसकी माता तेजसार की खोज में निकलती है।[१६२] इसके अतिरिक्त समाज में स्त्री, बालक और ब्राह्मण को दण्ड देना अथवा मारना नैतिक स्तर पर निंदनीय था।[१६३] विभिन्न व्रतों का पालन ही जैन-समाज की प्रमुख नीति थी। इनका उल्लेख कवि की जैन विषयक रचनाओं में हुआ है।

४. धर्म-दर्शन एवं विश्वास

आलोच्य कवि की कृतियों के अध्ययन से यह भी विदित होता है कि इनमें चित्रित समाज में धर्म एवं दर्शन की गूढ़ता से कोई परिचित नहीं था। धर्म के बाह्यस्वरूप पर लोगो की दृढ़ आस्थाओ के कारण भाँति-भाँति के अंध-विश्वासों में समस्त जन-समाज जकड़ा हुआ था। कठिनाई के समय बावन वीरों, विद्याधरों, सीकोत्तरियों, भूत-प्रेतों, योगिनियों का स्मरण एवं विभिन्न लोक-देवताओं की पूजा करना ही इस समाज

की सांस्कृतिक भावना थी। लोगों का योगी-योगिनियों के चमत्कारों पर भी अटूट विश्वास था। ढोला-मारवणी चौपई में योगी के चमत्कार पर प्रसन्न होकर ढोला योगिनी को नवसर हार एवं योगी को 'सोवण-सांकला' भेट करता है।[१६४] योगी अपनी सिद्धियों के लिए नर-बलि देते थे।[१६५] प्रसन्न होने पर विद्याधर और योगी सम्बन्धित व्यक्तियों को अनेक चमत्कारिक विद्याएँ देकर उनकी रक्षा करते थे।[१६६]

इन लौकिक एवं तांत्रिक विश्वासों के अतिरिक्त पौराणिक एव सनातनी धार्मिक भावना के प्रति विश्वास भी इस समाज की सस्कृति का प्रमुख अंग था। विरही माधव इसी भावना के आधार पर महाकाल का आश्रय लेकर विरह गाथा लिखता है।[१६७] स्वयं मारू को निरन्तर गौरी-पूजन के प्रतिफल में ही ढोला जैसा सुन्दर वर प्राप्त हो सका।[१६८] 'भीमसेन हसराज चौपई' में मदनमजरी भी त्रिपुरा देवी की स्तुति कर अपने इच्छितवर भीमसेन की प्राप्ति करती है।[१६६]

५. पर्व एवं त्यौहार

किसी भी समाज मे प्रचलित पर्व एव त्यौहार उस समाज की सांस्कृतिक धरोहर होते हैं। कुशललाभ की रचनाएँ प्रमुखत: राजस्थानी एव गुजराती समाज से प्रभावित हैं। अत: यहाँ इसी समाज के प्रचलित पर्व एवं त्यौहारो—होली, दीवाली, दसहरा, रक्षा-बन्धन, सावणी तीज, वसन्तोत्सव, इन्द्र महोत्सव, काली चवदस, युद्ध-पर्व आदि का उल्लेख हुआ है। यद्यपि ये सभी पौराणिक आख्यान सम्बद्ध त्यौहार हैं, पर यहाँ इन्हे स्थानीय रग से रंजित कर मनाये गए है। सावणी तीज राजस्थानी एव गुजराती महिला समाज का सौभाग्य से सम्बन्धित लोक पर्व है। अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करती हुई मारवणी कहती है—

> ते तू ढोला नावियो, श्रावण पहिलो त्रीज।
> बीजलिया बीललाइयां, मुंध भरेसी षीज।।[१७०]

इसी भाँति राजस्थान के वासन्तिक पर्व होली पर मारवणी अपने पति के अभाव में होली की झाल मे कूद कर प्राण-त्याग करने की सोचती हुई कहती है—

> फागुण मास रुली, जो ढोला नावेसी।
> तु बाचर के मिस षेलती, होली झांप मरेस।।[१७१]

(ग) आर्थिक जीवन

जैसा कि कहा जा चुका है कि कुशललाभ की रचनाएँ सामन्त-समाज एवं जैन समाज से सम्बन्धित हैं। इन दोनों ही समाज के कार्य-कलापों एवं व्यय से यह स्पष्ट होता है कि ये समाज आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थे। अपनी आर्थिक दृढ़ता के कारण ही ढोला मारू के भेजे हुए याचकों को मुक्त हस्त से दान देता है[१७२] तो राजा कामसेन माधव के कला-कौशल पर मुग्ध होकर उसे करोड़ो का दान देकर सम्मानित करता है[१७३] और सोम शाह जैसा सेठ एक बहुत बड़ी धार्मिक यात्रा का आयोजन करवाता है।[१७४]

कुशललाभ की रचनाओं मे वर्णित पुष्पावती,[१७५] कामावती,[१७६] उज्जैनी,[१७७] कांति नगरी,[१७८] वाराणसी[१७९] आदि के वर्णनों एव यहाँ के निवासियों के रहन-सहन से भी इस समाज की समृद्धता का परिचय मिलता है।

वैश्य-समाज में अर्थ प्राप्ति का साधन व्यापार था, जिसमे घोड़ों का व्यापार अधिक होता था। ढोला-मारवणी चौपई में उल्लेख है कि घोड़े का सौदागर नरवरगढ़ में घोड़े बेचकर पूंगल की ओर बढ़ा जहाँ वह पूगल नरेश के खवास को ढोला-मारवणी के विवाह की सूचना देता है।[१८०] 'भीमसेन हंसराज चौपई' में भी घोड़े के व्यापारी का उल्लेख हुआ है।[१८१] घोड़े के अतिरिक्त ऊँट, मोती, आभूषण, दक्षिणी चोर आदि के प्रादेशिक व्यापार के प्रचलन की सूचना भी आलोच्य कवि की कृति 'ढोला-मारवणी चौपई' द्वारा मिलती है।

साधारण-समाज राजा-महाराजाओं अथवा धनिकों के पास कुछ पैसा लेकर अपनी सेवाएँ देते थे। इस दृष्टि से कुशललाभ के काव्य में पुरोहित,[१८२] सैनिक वृत्ति,[१८३] चाकर वृत्ति[१८४] का उल्लेख हुआ है।

तत्कालीन समाज में आर्थिक लेन-देन का माध्यम कोड़ी,[१८५] मोहरे[१८६] थीं।

(घ) राजनीतिक जीवन

१. राजा एवं शासन व्यवस्था

तत्कालीन समाज मे अपने-अपने राज्य मे वहाँ का राजा सर्वोच्च था। राज्य की प्रजा एवं ज़मीन पर उसका जन्मसिद्ध अधिकार था। इनका उपयोग वह कैसे करे यह उसी पर निर्भर था। किन्तु राज्य सचालन में वह लोक-रीति एव नीति का ध्यान अवश्य रखता था। राज्य के मुखियाओं की राय भी राजा प्रायः मानते थे। किसी भी व्यक्ति का आदर-अनादर करना उसके लिए बड़ा सहज था। 'माधवानल कामकदला चौपई' मे कामसेन माधव की कला से प्रभावित होकर आरम्भ मे तो पुरस्कृत करता है, किन्तु जब माधव कामकंदला के कौशल पर राजा द्वारा प्रदत्त समस्त धन को कामकंदला पर न्यौछावर कर देता है, तब वह रुष्ट होकर उसे तुरन्त देश निकाला दे देता है।[१८७] 'ढोला-मारवणी चौपई' में ढोला का पिता भी मारवणी के साथ हुए ढोला के विवाह की उसे सूचना न देने का ढिढोंरा पिटवा कर उसका दूसरा विवाह मालवणी के साथ करवा देता है।[१८८] 'तेजसार रास चौपई' का राजा समरसेन स्वार्थ निमित्त ही उसकी मामी की हत्या करवाता है।[१८९]

२. गुप्तचर

कुशललाभ के साहित्य में वर्णित समाज मे विपक्ष की सूचना लाने के लिए तथा अन्य किसी गुप्त तथ्यो की जानकारी प्राप्त करने निमित्त गुप्तचरो का सहयोग लिया जाता था। ये गुप्तचर थे प्रसिद्ध चोर, जुआरी, चारण, खवास, वैश्या, मित्र एवं अन्य कोई विश्वसनीय पात्र। 'माधवानल कामकदला चौपई' मे उल्लेख है कि विक्रमादित्य ने माधव की खोज का कार्य भोग-विलासिनी वेश्या को सौंपा।[१९०] आगिया वेताल,

खापरिया चोर और कबड़ीया जुआरी को भी विक्रमादित्य ने अपने राज्य में इसी कार्य हेतु रख रखा था।[१९१] 'तेजसार रास चौपई' में खवास ने गुप्तचर का काम किया है,[१९२] जबकि ऊमरा-सूमरा को मारू की प्रत्येक सूचना उसके चारण मित्र देते हैं[१९३] और चंपापुरी का राजा चोर की तलाश के लिए अगड़दत्त को नियुक्त करता है।[१९४]

३. न्याय-व्यवस्था

'माधवानल कामकदला चौपई' एवं 'अगड़दत्त रास' के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस समाज मे व्यक्ति को राजा के समक्ष अपनी कठिनाइयों के उद्घाटन की स्वतन्त्रता थी। राजा घटना की जाँच कर अपराधी को अपेक्षित दण्ड देता था। राजा पुष्पसेन के पास माधव के विरुद्ध शिकायत लेकर जब महाजन पहुँचता है तो राजा अपराध को शान्ति पूर्वक सुनता है और अपराध प्रमाणित होने पर उसे दण्ड-स्वरूप देश निकाला देता है।[१९५] इसी भाँति प्रजाजन की फरियाद पर चोर को ढूढ़ निकालने के लिए चंपापुरी का राजा सभा आमन्त्रित करता है और चोर की खोज कर लाने वाले के लिए सवा करोड़ धन के पुरस्कार की घोषणा करता है—

> **राइ पान नउ बीडउ लीउ, सभा सन्मुख जोई बोलीउ।**
> **एह चोर झालेसि जेह, सवा कोड़ि धन लेसि तेह।।**[१९६]

४. सैन्य बल एव युद्ध प्रथा

माधवानल कामकंदला चौपई, ढोला-मारवणी चौपई, अगड़दत्त रास, तेजसार रास चौपई, भीमसेन हसराज चौपई, शत्रुजय यात्रा स्तवन, महामाई दुर्गा सातसी आदि रचनाओं से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन राजाओ के पास बड़ी-बडी सेनाएँ होती थी, जिनके प्रमुख अंग पैदल सैनिक, घोड़े, हाथी एव रथ थे। 'माधवानल कामकदला चौपई' में यद्यपि विक्रमादित्य की सेना के आकार-प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता पर माधव की विदाई पर विक्रमादित्य द्वारा माधव को चार सौ घोड़ों, ६४ हजार हाथी एव अनेक पैदल सैनिकों से सुसज्जित सेना देने का उल्लेख हुआ है जिसे आता देखकर पुष्पावती का राजा गोपीचंद भी भयभीत हो जाता है।[१९७] 'ढोला-मारवणी चौपई' में राजा नल की सैनिक-शक्ति का परिचय निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है—

> **नल राजा नलवरगढ़ रहे, दुरजन दल ने नवि संसहे।**
> **पाइक एक लाख परिवार, अठारे सेन सीस असवार।।**[१९८]

कुशललाभ की रचनाओं में चित्रित समाज में प्रत्यक्ष युद्ध की अपेक्षा षड्यन्त्रकारी युद्ध प्रणाली के ही दर्शन होते हैं।[१९९] प्रत्यक्ष युद्ध केवल महामाई दुर्गा सातसी मे ही हुए हैं।[२००]

(क) प्राकृतिक जीवन

यों तो कुशललाभ के साहित्य में मानव से सम्बन्धित प्राकृतिक तत्वों का समग्र

चित्रण नहीं मिलता, फिर भी उपलब्ध प्राकृतिक जीवन का अध्ययन निम्नांकित तीन बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(क) स्थल

आलोच्य कवि की कृतियों में इतस्ततः नदियों मे क्षिप्रा, गंगा, पर्वतों में आबू (अरावली), सोवनगीर, शत्रुजयगिरि, सिद्धाचल, पुण्डरागिरि, वैताठ्यपर्वत; सरोवरों मे पुष्कर, मान सरोवर, ललित सरोवर, सुख सागर; वन-उपवनों में पश्चिम वन, दक्षिण वन खण्ड, नन्दन-वन एवं नव द्रोण कुए के नामो का उल्लेख हुआ है। कहीं-कहीं सूर्य, पृथ्वी, चन्द्रमा एवं आकाश आदि नक्षत्रों को उपमान स्वरूप ग्रहण किया गया है।

(ख) वनस्पति

कुशललाभ की अनेक रचनाओं में आम्र, कदली, कनेर, चंपा, वट वृक्ष, जाल, आक, चन्दन, केर, खाखरा (शिरीष), खजूर, लवंग, तिल, सेवार, नागरवेल, गुणवेल, कंटाला, फोग, आदि वृक्षों, पौधों एवं फल-पुष्पों का नामोल्लेख हुआ है। इनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कुशललाभ की रचनाओं में चित्रित समाज उक्त वनस्पति से पूर्ण परिचित था।

(ग) प्राणी

कुशललाभ के साहित्य में पालतू पशुओं, अन्य पशुओं एवं पक्षियों की भी एक सुदीर्घ नामावली मिलती है, जिनसे तत्कालीन समाज परिचित था। मोर, क्रौंच, पपीहा, सारस, चकोर-चकोरी, कपोत, हंस, कोयल, तोता, खंजन अदि पक्षियों द्वारा कवि ने प्रेमोद्दीपन, सन्देश-प्रेषण आदि कार्यों की पूर्ति करवायी है।

इन पशु-पक्षियो के अतिरिक्त कतिपय अन्य जलचर (मछली, मैंढक); रेंगने वाले प्राणी (सर्प, पीवणा साँप); कीटो (भ्रमर, टिड्डी, बर्र) का भी उल्लेख हुआ है। मछली,[२०१] मेढक[२०२] एवं भ्रमर प्रेम की दृढ़ता के लिए उपमान रूप मे प्रयुक्त हुए हैं जबकि टिड्डी एव सर्प का प्रयोग विध्वंसक कार्यों के लिए।

इस प्रकार कुशललाभ का समस्त साहित्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न है। वह लोक समाज के अधिक निकट है।

सन्दर्भ

१. पी० वी० काने, धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० ४२४
२. आ० का० म०, मौ० ७, पृ० ५, चौ० २२
३. डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०।
४. पुर पयठांण अनुपम गांम, सोमदत्त बांमण इण नांम।
तेह नै नंदन वल्लभच्चार, ते मिथ्याती अतहि अपार ॥३७३

त्रीजो पुत्र कला गुण हीण, देखंता अति दीसै दीण।
तेहनुं कांई नवि लेखवै, कुणन परणेस्यै एहनै हिवै ।।३७४
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६

५. अ० प० नाहय, ए० जै० का० स०, पृ० ११०-११७
६. अ० जै० ग्रं०, बीकानेर, ग्रं० ७७४४
७. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २७२६६
८. आ० का० म०, मौ० ७, पृ० १८७-१६२
९. डॉ० जावलिया की प्रति।
१०. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्र० २६५४६
११. एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रुषामन सूयया ।।६१
— तुलसीराम स्वामी, मनु स्मृति-भाषानुवाद, प्रथमाध्याय, पृ० ५२-५३
१२. भाट भोजिक गुणीयण घणा, बोलइ सुजस अपार।
मुनिवर षरतरगच्छ ना मिल्या एक सउ बार ।।२६
—अ० जै० ग्रं०. बीकानेर, ग्रं० ७७४४, श० या० स्त०।
१३. मेल्हे घर का मगता, विरह जगावे राति ।।२७३
पछे प्रोहित राषीयो, तेडया मगणहार ।।२७४
— डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०।
१४. घणा अल्लडांघरे दम्माम घाई ।।
—अ० स० ला०, बीकानेर, ग्रं० ६८ (घ), महामाई दुर्गा सातसी।
१५. प्रोहित ढोला तेड़ण भणी, ऐह वात मारवणी सुणी ।।२७१
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०।
१६. छांनां रह्या प्रजापति घरे, ऐतो कह्यौ अम्हारो करेह ।।३१२
ते कुम्हार पर रहे, वेला मिलण तणी नवी लहे ।।३१३ —वही
१७. साल्ह कुमरवात मुझ सुणै, ऐ चारण उमर राया तणो ।।४७७ —वही
१८. साधे जेसलनाम पवास, राय मुकांव्यो मन वेसास ।।४३ —वही
१९. लागी कब करहो कूकीयो, रेबारीण सादपीण यौलषियो ।।५२७ —वही
२०. त्रिणि सयत्रीस महातमा, रिषि बिसय नई वीस ।।२७
—अ० जै० ग्र०, बीकानेर, ग्रं० ७७४४, श० या० स्त०।
२१. सउ असवार सनाहसु, रजपुत सउ दोई ।।२६ —वही
२२. तीन पुत्र थापीया नरेस, अणगल राज रिद्धि वर देश ।।३७०
श्री मुनि सुव्रत स्वामी पासि, चारित्र लीधउ मन उल्हासि।
बघ-बघ तप करइ पारणउं, सूषइ पालइ संयम आपणुं ।।४०१
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६
२३. आव्यउ मनि वैराग्य अपार, सहू अथिर जाणउ ससार।
राजहस नइ थाप्यउ राज कीधा बहु धर्म ना काज ।।५६६
—एल० डी० इस्टीट्यूट आफ इंडालाजी, अहमदाबाद, ग्रं० ला० द० १२१७

२४. युगल पुत्र पहिलउ जयभद्र वीजउ पुत्र नामि बलिभद्र ।
प्रथम पुत्र नइसा थाप्यउ राज, करइ सदा जिन सासन काज ।।६११ —वही

२५. मेकाइवर एण्ड पेज, सोसायटी, पृ०

२६. सांभलि तेजसार अम्ह बात, इहां आव्या मूक्या तुझ तात ।
आठ वरस लगि तुझ विण दुखी, सही कोइ न सकइ ओलखी ।।
× × ×
तेह वात सांभलि गह गह्यउ, पिता मिलवा उछक थयो ।
राज भलाव्यो मुंहता धणी, साथि सेना सोहामणी ।।
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६, ते० रा० चौ०, चौ० ३४४-३४७

२७. अन्न दिवसि वेउ इम जाणइ, धनि ते समुद्रि जाइ धन आणइ ।
मात-पिता पामीआ आदेसइ, पहुता पहुणी चड़ी परदेसइ ।।
—वही, ग्र० २७२६६, जि० जि० सं० गा०, छ० ७

२८. पगे सुसरा नें कीउ प्रणांम, तिहां दीधां मोटा दस गांम ।
सासू प्रणमी कीयो जुहार, दीधा सिहे सोवण सिणगार ।।
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ७०६

२९. दक्षिण देश अवतीपुरी, जयनृपतल्लका अतेउरी ।
ते राजा नै नही सतान, अह निशिचिता मेरू समान ।।
देव देव नी पूजा करै, रांणी पुत्र काजि बहु फिरै ।।
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्र० २६५४६, चौ० २५४-२५५

३०. काले सर्प डस्यौ मृत राय, राजा पखै देश न रहाय ।
पुत्र नही को राजा तणैं, मिलयौ नगर लोक हम मणैं ।।
× × ×
तां लगि भाणेआ नै राज, दीजै तो सीझै ससुकाज ।।
समरसेन भाणेजा नांम, बैठो ग्रही देश पुर गाम ।। —वही, चौ० २५७-२५६

३१. डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० १४६-१५०

३२. आ० का० म०, मौ० ७, पृ० १०, चौ० ४८

३३. वही, पृ० १६८-१६६, चौ० ६०३-६०५

३४. ऊमर छाक्यो मूड़े कहे, ते डूमणी सहु परि लहे ।
ढोला नि मारवणी तणी, पीहर की साथे डूमणी ।।
छाक्या सघला केलर वि करे, मारू गीत नाद मनि धारे ।
तिणि वेला मारू डुमणी, करी सांन मारवणी सुणी ।।
—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० ६५४-६५५

३५. पुत्र जन्म हरख्यो परिवार, राजा मनि आणद अपार ।
घरी घरी उच्छव मंगल घणा, किआ वधावणा पुत्रह तणा ।। —वही, चौ० १५१

३६. पूरे दिन पुत्र जनमीयउ, राजा घणउ महोच्छव कीयउ ।
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६, चौ० १०

३७. आ० का० म०, मौ० ७, पृ० १४, चौ० ५७

३८. माय ताय मन पुषी हाम, साल्ह कुमर तस दीधो नाम।
  मृत वछा माता पि होई, तो ढोलो नांम कहावि सोई ।।
  —डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० १५२

३९. तेजवंत रूपइ अभिरांम, दीधूं तेजसार तस नांम ।।
  —रा० प्र० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६, चौ० १०

४०. तुलसीराम स्वामी, मनु-स्मृति भाषानुवाद, अध्याय २, श्लोक २९, पृ० ६३

४१. आ० का० म०, मौ० ७, पृ० १८१, चौ० ६४९-६५०

४२. डॉ० जावलिया की प्रति।

४३. एल० डी० इंस्टीट्यूट, अहमदाबाद, ग्रं० ला० द० १२१७, भी० हुं० चौ०।

४४. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६

४५. भ० प्रा० वि० म०, पूना, ग्रं० ६०५

४६. तुलसीराम स्वामी, मनु-स्मृति भाषानुवाद, अध्याय ३, श्लोक २७-३४

४७. डॉ० रामगोपाल गोयल, राजस्थानी के प्रेमाख्यान-परम्परा और प्रगति, पृ० ४७३

४८. प० मिहिरचन्द्र, याज्ञवल्क्य स्मृति (भाषा टीका), अध्याय ३, विवाह प्रकरण, पृ० २८, श्लोक ६४

४९. ढोढ वरस की मारूई, त्रीहुं वरस को कंत।
  किहां उवां जवन वही गयो, किम तू जोवन वत ।।
  —डॉ० जावलिया की प्रति, छ० ४८१

५०. सोल वरस तणो वर राय, अति सुकमाल असंभय काम।
  बार बरस तणी देवड़ी, जाणे करीआ जोड़ो जुड़ी ।। —वही, चौ० ७१

५१. आ० का० म०, मौ० ७, पृ० १६, चौ० ६५

५२. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० क० चौ०, पृ० १०, चौ० ४८

५३. विनय करी नल राय वीनवी, एक सगपण जो आपु हुंवि।
  तव आपा हुवी अविहड़ प्रीत, नरपत नाथ धरी ऐ रीत ।।
  पिंगल राजा कीयो पसाव, करी सगपण सतोष्यो राय।
  दीधी मारवणी ढोला मणी, त्रेवड़ हुई विवाह तणी ।।
  —डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० १७६-७७

५४. सहू वात पटराणी सुणी, भेद जणाव्यो राजा भणी।
  राय कहइ रांणी संभलउ, वारू सगपण पणि वेगलउ ।।
  ति राजा छइ अधिक प्रताप, वसुधा घणी घणउ जसथाप।
  पणि ते नगर अछइ परदेश, निज पुत्री वेगलीन देस ।।
  —एल० डी० इंस्टीट्यूट, अहमदाबाद, ग्रं० १२१७, चौ० ८१-८२

५५. भीमसेन भगताविआ, नल राजा प्रधांन।
  नल नदन सु नातरो, मीलीयो मनि बहुमांन ।।
  —डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० १९७

५६. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्र० २६५४६, चौ० २८४-२८७

५७. हिवइ कुमरी माता प्रति भणइ, ए वर मन मानिउ अहम् तणइ।
राजा चिंत्ति भणउ उछाह, कुमरी नउं मांडिउ वीवाह॥
—भ० प्रा० वि० मं०, पूना, ग्रं० ६०५, चौ० १२७

५८. बाबा विप्र म मोकले, जाकी सीतल जात।
मोहहे घर का मंगता, विरह जगावे राति॥
—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० २७३

५९. ब्राह्मणी विस कन्यका, परणइ सिंभ पजूर।
विघन लगन वेला वहइ, श्रीमंगल रिण तूर॥
—अ० सं० ला०, बीकानेर, ग्रं० ६८ (घ), छं० २७५

६०. आ० का० म०, मौ० ७, पृ० १४७, चौ० ५१८
६१. डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० ६३-६६
६२. एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ग्रं० ला० द० १२१७, चौ० ४७१-४७२
६३. डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० १२८
६४. वही, चौ० ५५१
६५. मास दीह लग्न असवार, आयो पुंगल नयर अपार।
करे सजाइ जानह तणी, प्यगल चाल्यो परणेवा भणी॥
—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० ६३

६६. थाप्या लगन मूक्यां परधांन, जुगति पधारी ढोला जानि॥ —वही, चौ० १९८
६७. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० क० चौ०, पृ० १६, चौ० ६८
६८. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं २६५४६, ते० रा० चौ०, चौ० ३०७
६९. झाली ऊमा दे कुंअरी, दीधी साथे दीवाघरी॥
—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० १२१

७०. वही, चौ० २००
७१. दासी तास दीसइं पंचास, मारवणी मनि पुगी आस॥
× × ×
हिवें पुगल हुंति उझणो, भाउ भाट ले आयो घणो।
साथे घणा करहा केकाण, सेज सुषाण ने मंडाणा॥
प्यंगल राजा साथै थई, सीम लगाई वोलावा सही।
सो असवार साथे दीआ, कुसले षेमे नरवर आवीआ॥
—वही, चौ० ७०५, ७०७-७०९

७२. मत महुंगल-महुंगल एक सउ आठ तरल कुरंगम सहसइकार
वल्ल वहिल्ल सउ रथ सुषासण, सोवन मइ भाजन कलस
हीर चीर सोवन शंघासन, आठ सहस्र उत्तम आभरण
दासी-दास बहुत, कुसललाभ वाचक कहइ आप्या अप्रले वित्त॥
—एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ला० द० १२१७,
मी० हुं० चौ० ६०, ५४०-५४१

७३. (क) पइसारो सुमोहरतइ कीउ, अइ अइकार भाट ऊचरै।
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ७०१

(ख) मात पिता साह्मा आवीया, नगरलोक पइसारा कीया।
मिल्यो पुत्र अधिक धरइ सनेह, जाणे दूधे वूठे मेह ॥
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६, चौ० ३५२

(ग) शुभ महूरति पइसारउ कीयु, पिता ग्रास थी त्रि भणु दीयु।
माता प्रणमी मनि आणंद, सेवइ नर हय गय बहू वृंद ॥
—भ० प्रा० वि० मं०, पूना, ग्रं० ६०५, अगड़दत्त रास, चौ० २३१

७४. पगे सुसरा ने कीउ प्रणाम, तिहां दीधा मोटा दस गांम।
सासू प्रणमी कीयो जुहार, दीधा सिहूं सोवण सिणगार ॥
—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० ७०६

७५. प्यंगल दिन प्रति पाठवे, ढोला नीरत न होय।
मालवणी मारे तीहां, प्यंगल पंथिज कोय ॥ —वही, चौ० २५६

७६. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्र० २६५४६, ते० रा० चौ०, चौ० १०१-१०६

७७. एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ग्रं० ला० द० १२१७

७८. आषे उमां देविड़ी, सांभल प्यंगल् राउ।
विरह व्यापि मारवणी, नहीं राषण को दाव ॥
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० २५५-२५६

७९. पुत्री नो मन आंणी करी, तुझ जोवा हुं चिहुं दिशि फिरी ॥
तेजसार तुझ लेवाकाज, चंपानगरी आवी आज ॥
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६, ते० रा० चौ०, चौ० २८५-८६

८०. झाली ऊमा दे कुंअरी, दीधी साथे दीवा धरी ॥
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० १२१

८१. दासी तास दीसइं पचास, मारवणी मनि पुगी आस ॥ —वही, चौ० ७०५

८२. जोगणि ढोलो प्रते ऊचरे, कायरे कायर फोकट मरे।
स्त्री पुठ अस्वी परजले, नारी पुठे पुरष नवी बले ॥
ज्या ते मांडी अवली रीत, वात न बैसे ढोला चीत। —वही, चौ० ६२४-६२५

८३. भ० प्रा० वि० मं०, पूना, ग्र० ६०५, चौ० २५४-२५६

८४. डॉ० रामगोपाल गोयल, राजस्थानी प्रेमाख्यान-परम्परा और प्रगति, पृ० ४६०

८५. अर्थशास्त्र, अधिकार २, पृ० ४३-४४

८६. मो० द० देसाई, आ० का० म०, मो० ७, मा० का० कं० चौ०, पृ० ११३, चौ० ३७२

८७. आ० का० म०, मो० ७, पृ० १८१-१८२, चौ० ६५१-६५२

८८. पंथि रूपि ते परहरी, रचीयउ नारी रूप।
सासू सुसरा पय नमी, सांचउ कहइ सरूप ॥
—एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ग्रं० ला० द० १२१७, छं० ३८२

८९. डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० २६३-२६४

९०. मो० द० देसाई, आ० का० म०, मौ० ७, पृ० १८०, चौ० ६४६

९१. मात-पिता मनि आणंद घणों, जन्म हुयो मारवणी तणों।
कीयो वधावो नगर मंझार, पुत्र तणी परी मंगली च्यार।।
—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० १३४

९२. वही, चौ० ५४१-५४२

९३. इम कहि ते उडी आकासि, आवी षिण एकै आवासि।।
तिहां प्रति मांगे वधामणी, आवो प्रीउ मेलुं तुम भणी।
प्रिय चंपापुरि पालैं राज, तुम्ह तेडण हुं आवी आज।।
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६, चौ० २३९-२४०

९४. सघ आपइ घणा करइ वधामणा, महीयल कीरति नवनवी ए।।
—आ० का० म०, मौ० ७, पृ० १९१, छं० १६

९५. आ० का म०, मौ ७, पृ० ४३, चौ० १८०-१८१

९६. पिंगल राजा कीयो पसाव, करी सगपण संतोष्यो रांव।
दीधी मारवणी ढोला मणी, त्रेवड हुई विवाह तणी।।
—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० १७७

९७. राणी मारी पाछावल्या, आवी ते राजा नैं मिल्या।
कियो तेहने लाख पसाउ, हियैं हुं अविचल हूयो राउ।।
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६, ते० रा० चौ०, चौ० २७४

९८. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ०, पृ० १७७, चौ० ६३२

९९. मया करी ने हिवै महाराज, सीष पसाव करो अम्ह आज।।
वीस तीहां आपिया व्रहास. फदिआ दिया सहस पंचास।
वागा वस्त्र अपूरब वली, संतोष्या पुगी मन रूली।।
भाऊ भाट दीयो तीहां साथ, आप्या अरथ-गरथ तस हाथ।
× × ×
भाऊ भाट ने मंगण हार, सीष मांगै चाल्या तणीवार।।
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ३२५-३२८

१००. वही, चौ० ६२९-३०

१०१. भ० प्रा० वि० मं०, पूना, ग्र० ६०५, अगड़दत्त रास, चौ० २६०-२६१

१०२. शम्भूनाथ सिंह मनोहर, ढोला मारू रा दूहा, पृ० १०३

१०३. (क) डावो नेत्र फरूके जीसे, सहीअर आगे कही ने हुंसे।
मन संतोष ने चीत उल्हसे, आज सषी मेलो हो असे।।
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ५२१

(ख) त्रिय तांम फरूकै वांम तन तिर जटा सीत धीरप तठै।
सोहाग अमै प्रिय तूझ छबि जेत छत्रहुइ सह जठै।।
—परम्परा, भाग १३, पिंगल शिरोमणि, पृ० ८१

(ग) कन्या मांडउ मरण प्रकार, तूं मोटउ जीवि तव वार।
एहवइ ते कन्या ऊचरइ, डावउ नेत्र फुरइ दुष हरइ ।।
—एल० डी० इस्टी०, अहमदाबाद, ग्र० ला० द० १२१७,
मी० हु० चौ०, चौ० १८३

१०४. (क) राजा सुहिणों पाम्यो राति, जांणू जोवुं पहुकर जात।
तेड़ी प्रधांन ने इम उच्चरे, जात्र तणी सजाइ करे ।।
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० १५४

(ख) निशि पर सूती महुल मझारि, सुपनांतर पेषइ ते नारि।
× × ×
तुम्ह कुल माहि दीप समान, हुस्यइ पुत्र सिरि पुण्य निधांन।
सुपन पाठक संतोख्या सहू, मात पिता मन उच्छव बहू ।।
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६, ते० रा० चौ०, चौ० ७-६

१०५. आणण पिय रिण निरखि छोड़त प्राण सुथाई।
पूठ छीक मिल सोक थियो धीरज मन ताई ।।
—परम्परा, भाग १३, पिंगल शिरोमणि, पृ० ८१

१०६. डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ६२६

१०७. तिसै एक फल जोगी दीयो, तास प्रमाण गर्भ तस थयो ।।
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थ २६५४६, ते० रा० चौ०, चौ० २५५

१०८. माय ताय मनि पूगी हाम, साल्ह कुमर तस दीधो नाम।
मृत वछा माता मि होइ, तो ढोलो नाम कहावि सोई ।।
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० १५२

१०९. डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० १५४

११०. आपणी कुल छै ए आचार, निश्चै प्रथम गर्भ नीवारि।
देवी यात्र करी जोइयैं, जिम संतोष होवैं मुझ हीयैं ।।
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थ २६५४६, चौ० २६७

१११. डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ७३३

११२. पेलैं भव पाप मैं कीआ, तो तुझ विण इतरा दिन गया।
सैंमुष वाते करे वाषाण, जीवत जन्म आज सुप्रमाण ।।
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ५५७

११३. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ०, पृ० ५३, चौ० २१९२२०

११४. जई मत्रेइ लागउ पाय, हरषित खोलइ तेड़इ माय।
साचउ तूं सपुत्र माहरो, मुझ नै ए पठीयो पांत रो ।।
तेअसार मन नाणैं रोस, ए सगलो कम्मं नुं दोस ।।
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६, चौ० ४५४-४५५

११५. बारहठ प्यंगल रायातणो, गांम एक आयो प्राहुणो ।।
तीणे ढोली दीठो माहराज, आडे आई कीउ सुभराज।
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ४८२-४८३

११६. आ० का० म०, मो० ७, मा० का० कं० चौ०, पृ० १८०, चौ० ६४६

११७. सुभ वेला सुभदिन सुभ घड़ी, त्रेवड़ी लग्न तणी अतिवार।
चवरी मांडी मंगल च्यार, जांन मांन वि मील्या अपार।।
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० १८४

११८. मांडू सयवर मंडपचंग, महा महोच्छव मन नइ रंगि।
मोटा-मोटा महीपति, भणी कंकोत्री मुक्ति अति घणी।।
—एल० डी० इस्टी०, अहमदाबाद, ग्रन्थ ला० द० १२१७,
भी० हं० चौ०, चौ० ४६८

११९. राजा प्रजा सहु हरखीया, हैवर एक वधावे नें दीयो।
सामेलो मोटे मंडाण, ढोला मीलवा तणी परीयाण।।
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ५४२

१२०. रे जाया नदन माहरा, हूं भामण लेउ ताहरा।
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६, ते० रा० चौ०, चौ० २१९

१२१. देषी भाट भणे विरदाव, रेवत थी ऊतरीउ राय।
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० १९

१२२. अरथ गरथ षरचिया अपार, बालक अछे बेन्हेइ कुमार।
थांभा नाम हूं विस्तरक लीधै, आख्या गवा सहु योलखेइ।। —वही, चौ० १८६

१२३. (क) वही, चौ० ६३६
(ख) वाजइ आज घणा वाजित्र, किसउ महोछव छइ रे मित्र।।
—एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ग्रन्थ ला० द० १२१७,
भी० ह० चौ०, चौ० १४५

१२४. अनू० सं० लाय०, बीकानेर, ग्रन्थ ६८ (घ), म० दु० सा०, छन्द ३२१

१२५. डावउ तीतर दिन ऊगतइ, ताजा सबद करइ दिन छतइ।
× × ×
जिमणी दिसइ बोलंती जाइ, पथिक तणी इच्छा पूराइ।।
—एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ग्रन्थ ला० द० १२१७,
भी० ह० चौ०, चौ० ४७८-४७९

१२६. तरवर पूजन काज सरदह मारूत सुष सांजोग सुहावणउ ए।
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २७२६६, जि० जि० सं० गा०, छन्द ३७

१२७. आ० का० म०, मो० ७, स्त० पा० स्त०, पृ० १ ९१, छन्द १५

१२८. सूड़ा सुगणां पषीआ, म्हांको कहीयो करेज।
दस मुण चंदण नि मुण अगर, मालवणी बालेह।।
—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० ४५०

१२९. (क) शत्रुंजय यात्रा स्तवन।
(ख) श्री पूज्यवाहण गीत एव (ग) गोड़ी पार्श्वनाथ छन्द।

१३०. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थांक २६५४६, चौ० २९०

१३१. साथइ झाझा मद अइराक, मनि द्रोहो ने पीवे छाक ।
ढोला परिघल मदी अति पीइ, बीजा थोड़ी छाक लीइं ॥
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ६५३
१३२. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ०, पृ० १४४, चौ० ५०६
१३३. डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० ३४७
१३४. वही, ढो० मा० चौ०, चौ० ५४८
१३५. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ०, पृ० ४७, चौ० १६४
१३६. वही, पृ० ४६-४७, चौ० १८८-१६३
१३७. (क) ढोलो मनि आणदीउ अपार, जोगण ने थो नवसर हार ।
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ६३०
(ख) नवसरहार कुमरतवदीइ, उत्तम विद्याधर नवि लीइ ॥
—भ० प्रा० वि० म०, पूना, ग्रन्थांक ६०५, अगड़दत्त रास, चौ० २६१
१३८. डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० १६
१३९. (क) वही, चौ० २०-३०
(ख) रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थांक २६५४६, ते० रा० चौ० ।
(ग) अ० जै० ग्र०, बीकानेर, श० या० स्त० ।
१४०. सुंदरी मदन मजरी साथि निर्भय थई बइठा नर नाथ ।
पहिला नंदनवन पेषंति, सरवर तटिजल केलि करंति ॥
—एल० डी० इस्टी०, अहमदाबाद, ग्रं० ला० द० १२१७,
भी० हं० चौ०, चौ० २६५
१४१. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० क० चौ०, पृ० ४२, चौ० १७१-१७२
१४२. वही, पृ० ६२, चौ० २५३-२५४
१४३. नाद विनोद गीत नाटक रस, करइ कतूहल केलि ।
उचित दान याचक नइ आपइ, मन गमता नर मेलि ॥
—एल० डी०इस्टी०, अहमदाबाद, ग्रन्थ ला० द० १२१७, चौ० ५८
१४४. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ०, पृ० ६३-६६
१४५. धीरेन्द्र वर्मा, साहित्यकोश, भाग १, पृ० २२०-२२१, वि० २०२०
१४६. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० क० चौ०, पृ० ४३, चौ० १८०
१४७. वही, पृ० ५०, चौ० २१०-२११
१४८. सझि सिंगार, सर तति वाद, रस तान मांन घनसार मृदग ।
—अ० जै० ग्रं०, बीकानेर, स्थूलिभद्र छत्तीसी, छन्द २६
१४९. बार पखावज बजावण हार, त्रिण्हि त्रिण्हि एकणि दिस चार ।
पूरव सामो ऊभो सही, डावो तासु अगुठो नही ॥
—आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० क० चौ०, पृ० ४३, चौ० १७७
१५०. कर ग्रहि वीण अलापई नाद, सूधा किन्नर मधुर रस नाद ।
—वही, पृ० ३२, चौ० १३८

१५१. नगर मंहि वाज्या नीस्यांण, घणा महोछव निमंडाण।
— डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ६३६

१५२. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० क० चौ०, पृ० ६२, चौ० २५३-५४

१५३. एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ग्रं० ला० द० १२१७—भी० हं० चौ०, चौ० ५८

१५४. (क) तेजसार रास चौपई (ख) अगड़दत्त रास।

१५५. गंगदत्त ओझउ तिहां वराइ, नेसालीया पांचसइ जिहां भणइ
रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थांक २६५४६, ते० रा० चौ०, चौ० २१

१५६. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ०।

१५७. डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०।

१५८. अ० जै० ग्रं०, बीकानेर, स्थूलिभद्र छत्तीसी।

१५९. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ०, पृ० १२०

१६०. डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ५५४

१६१. पिगलराय मनि चिंता घणी, ऐ वात मारवणी सुणी। —वही, चौ० २५६

१६२. पुत्री नो मन जांण करी, तुझ जोवा हुं चिहुं दिशि फिरि।
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्र० २६५४६, ते० रा० चौ०, चौ० २८५

१६३. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० क० चौ०, चौ० २२, २१७

१६४. ढोला मनि आणदीउ अपार, जोगण ने द्यो नवसर हार।
जोगी ने सोवन सांकला, पहिराव्या अति ऊतावला॥
—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० ६३०

१६५. बार जोयण अटवी कंतार, लहिस्यै योगी मंत्र अधार।
ते मारेस्यै विद्या नै कामि, तेजसार आवैस्यै तिण ठांमि॥
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्र० २६५४६, ते० रा० चौ०, चौ० १०३

१६६. (क) रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थ २६५४६, ते० रा० चौ०, चौ० १०३
(ख) भ० प्रा० वि० मं०, पूना, ग्रन्थ ६०५, अगड़दत्त रास।

१६७. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० क० चौ०, चौ० ४६८-६९

१६८. एक कहे तूठो किरतार, पूजो गोरू घणे प्रकार।
तोहिज मारवणी ढोले मिली, बीहु सारीषी जोड़ी जुडी॥
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० ७३३

१६९. जय जय माता जगदीश्वरी, मेंटी भावइ भवनेश्वरी।
हूं हूं तुम्ह सेवक हींगलाज कृपा करी मुझ सारोकाज॥
बइठउ राजा मडप बारि, कीर पधारउ नगर मझारि।
कुमरी पासि जइ नइ कहुउ, वछित जेम वधाइ लहऊ॥
—एल० डी० इस्टी०, अहमदाबाद, ग्र० ला० द० १२१७, चौ० १४२-४३

१७०. डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, चौ० २८९

१७१. वही, चौ० २९१

१७२. बीस तीहां आपिया अहास, फदिआ दिआ सहस पचास।
वागा वस्त्र अपुरब वली, संतोष्या पुगी मन रली ॥ —वही, चौ० ३२६
१७३. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० क० चौ०, चौ० १८०-१८१
१७४, अ० जै० ग्र०, बीकानेर, शत्रुंजय यात्रा स्तवन।
१७५. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० क० चौ०, चौ० ४४-४६
१७६. वही, चौ० १५७-१५६
१७७. वही, चौ० ३७०-३७६
१७८. वही, स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन, छन्द ६
१७९. निरुपम नगरी वणारसी, जोतां इंद्रपुरी हुवइ जिसी।
वीरसेण राजा तिहां धणी, हय गय राज रिधि जस घणी ॥
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रन्थ २६५४६, ते० रा० चौ०, चौ० ५
१८०. डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० २११-२१३
१८१. इण अवसरि आव्या घणा ताजा घणा तुरंग।
सबल साथ सउदागरी, वेचण काजि विहंग ॥
—एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ग्रन्थ ला० द० १२१७, चौ० ३९८
१८२. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ०, चौ० ४६
१८३. एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद, ग्रं० ला० द० १२१७, भी० हं० चौ०, चौ० ४३६, ४४७
१८४. पछे प्रोहित राषीयो, तेड्या मंगणहार।
—डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, छन्द २७४
१८५. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ०, चौ० ६२३, ६३६
१८६. वही, चौ० ६३२
१८७. वही, चौ० २१९
१८८. अणी अवसिर नलवरगढ़ धणी, आलोचे ग्रेवड़ आपणी।
परणी स्त्री तिं मारू तणी, मति कहो कोइ ढोला भणी ॥
—डॉ० जावलिया की प्रति, चौ० १९२
१८९. रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६, चौ० २६६-२७५
१९०. आ० का० म०, मौ० ७, चौ० ४८८, ४९४
१९१. वही, छन्द ३७३-३७४
१९२. साथि मूंक्या च्यारि खवास, जेहना हूंता घणा वेसास ॥
—रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, ग्रं० २६५४६, चौ० २६९
१९३. डॉ० जावलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०।
१९४. भ० प्रा० वि० मं०, पूना, ग्रं० ६०५, अग० रास।
१९५. आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० क० चौ०, चौ० १४३
१९६. भ० प्रा० वि० मं०, पूना, ग्र० ६०५, चौ० ६०
१९७. आ० का० म०, मौ० ७, चौ० ६३६-६३८

१९८. डॉ० आवलिया की प्रति, चौ० १४४

१९९. (क) ढोला मारवणी चौपई।

(ख) तेजसार रास चौपई।

२००. अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, ग्रन्थ ६८ (घ)

२०१. माणस योहि माछिलां, साचा नेह सुजाण।

जू जल थी कीजई जुआं, निश्चइ छंडइ प्राण ॥

—आ० का० म०, मौ० ७, मा० का० कं० चौ०, दूहा ३९७

२०२. दादुर मोर अक घण, बीजलीयां तरवार।

प्रीउ चाले परदेसड़े, हाय-हाय मो मार ॥

—डॉ० आवलिया की प्रति, ढो० मा० चौ०, दूहा ३७९

उपसंहार

कुशललाभ के साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि

कवि-व्यक्तित्व

अनेक जैन आचार्यों ने राजस्थानी साहित्य की सेवा की है। ऐसे ही एक जैन आचार्य हैं—कुशललाभ, जिन्होंने राजस्थानी भाषा और साहित्य की अपूर्व सेवा की। कुशललाभ धर्म से जैन यति थे और जैसलमेर के रावल हरराज के आश्रित। आरम्भ में उन्होंने हरराज के कुतूहलार्थ माधवानल कामकदला चौपई, ढोला मारवणी चौपई जैसी शृंगारपरक कृतियों और शिक्षण के लिए पिंगल-शिरोमणि जैसे छन्द ग्रन्थ का निर्माण किया। हरराज की मृत्यु के पश्चात् उन्होने प्राय: परिव्राजक बन उपाश्रयों मे ही शेष जीवन बिताया। इस काल में उन्होंने जैन चरित काव्यों का प्रणयन किया। इनमें से किसी ग्रन्थ में कवि ने अपने जीवन-वृत्त सम्बन्धी कोई संकेत नहीं दिया है, किन्तु ग्रन्थों में वर्णित कतिपय घटनाओं के आधार पर कुशललाभ का अस्तित्वकाल वि० स० १५६०-१५६५ से वि० सं० १६५५ तक माना जा सकता है। इसी भाँति कुशललाभ की भाषा के आधार पर यह सम्भावना की जा सकती है कि कवि का जन्म गुजरात के निकटवर्ती मारवाड़-प्रान्त मे ही हुआ होगा। कृतियों की पुष्पिकाओं से स्पष्ट होता है कि कुशललाभ खरतरगच्छ सम्प्रदाय के अधिष्ठाता जिनचन्द्र के शिष्य जिनभद्र सूरि की शिष्य-परम्परा में अभय धर्म उपाध्याय के शिष्य थे।

कृतित्व

कुशललाभ ने अपने जीवनकाल में जैन एवं जैनेतर विषयों से सम्बन्धित १८ ग्रन्थों की रचना की। इन्हे विषय-वस्तु की दृष्टि से इन चार भागों मे विभक्त किया जा सकता है—१. प्रेमाख्यानक रचनाएँ, २. जैन-भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ, ३. पौराणिक साहित्य और ४. रीति सम्बन्धी रचनाएँ। कवि की रीति विवेचक रचना है—'पिंगल-शिरोमणि'। यह राजस्थानी भाषा का प्रथम छन्द-विवेचक ग्रन्थ है, जिसमें कवि ने अलंकार, कोश और राजस्थानी भाषा के छन्द विशेष 'गीत' का भी विवेचन किया है। कुशललाभ की यही परम्परा हरिपिंगल प्रबन्ध, रघुवर जस प्रकास, रघुनाथ रूपक गीता रो, कवि कुलबोध आदि छन्द और गीत सम्बन्धी ग्रन्थो के रूप में विकसित हुई। राजस्थानी मे अलंकार-विवेचन की दृष्टि से यह ग्रन्थ अभी भी सर्वप्रथम एव मौलिक है।

कृतियों के आरम्भ व अन्त

इन सभी कृतियों का आरम्भ मंगलाचरण द्वारा किया गया है। ये मंगलाचरण गणपति, सरस्वती, शंकर, विष्णु, महामाई, कामदेव, जिनप्रभु जिनेश्वर, पार्श्वनाथ, गौतम-ऋषि की स्तुति से सम्बन्धित हैं। जैन भक्ति सम्बन्धी रचनाओं मे जंबू द्वीप, शत्रुंजय गिरि आदि का भी परिचय दिया गया है। कवि की इन रचनाओं का अन्त पुष्पिका द्वारा हुआ है, जिनमें कवि ने अपना और अपने गुरु खरतरगच्छीय उपाध्याय अभयधर्म का नामोल्लेख किया है। स्तोत्र-सम्बन्धी एवं देवी भक्ति (पौराणिक आख्यान) सम्बन्धी रचनाओं में यह अन्त कवि ने 'कलस' छन्द के माध्यम से किया है।

कथा-तत्त्व

कवि की अधिकांश प्रेमाख्यानक रचनाओं में आधिकारिक कथा का आरम्भ प्राय: किसी निःसन्तान राजा अथवा पुरोहित द्वारा सन्तान प्राप्ति के प्रयत्न के वर्णन से हुआ है। देवी देवता ऋषि-मुनि के अभिमंत्रित फल अथवा उनके बताए अनुसार पुष्कर की अथवा अन्य पवित्र स्थल की 'जात' देने पर उस राजा के यहाँ पुत्र या पुत्री का जन्म हुआ है। युवा होने पर किसी अपराध में अपने पिता से कहा-सुनी होने पर अथवा राजाज्ञा से नायक को घर छोड़ना पड़ा है। इसी निष्कासन से नायक के वैशिष्ट्य के द्वारा इन रचनाओं मे प्रेमतत्व उभरा है।

कथानक-रूढ़ियाँ

नायक-नायिकाओं में प्रेम का आरम्भ प्रत्यक्ष दर्शन और रूप-गुण-श्रवण द्वारा होता है। नायक-नायिका में प्रेमोद्दीपन एवं उनके संयोग में तोता, मंत्री-पुत्र, भाट, खवास सखियाँ आदि सहायक हुए हैं। इनके द्वारा गुप्त संकेत प्राप्त कर नायक-नायिका देवी के मंदिर में मिले हैं। नायिका को प्राप्त कर जब नायक पुन: अपने निवास को लौटता है तो मार्ग मे उसका प्रतिनायक के साथ युद्ध दिखलाया गया है। नायक विजयी होकर जैसे ही आगे बढ़ता है, नायिका की मृत्यु हो जाती है। इसके पश्चात् नायिका को पुनर्जीवन योगी-योगिनी अथवा विद्याधर द्वारा प्राप्त होता है। कुछ रचनाओं में नायक-नायिका के प्रेम की परीक्षा भी की गई है।

घर लौटने पर सभी प्रेमाख्यानक रचनाओं में नायक के माता-पिता एवं उस नगर की प्रजा नायक का स्वागत करती है। आरम्भ में उन्हे नगर के बाहर ही वाटिका में ठहराया जाता है, तत्पश्चात् शुभ मुहूर्त में बड़ी धूमधाम के साथ उन्हें गृह-प्रवेश करवाया जाता हैं। जैन-कथानक सम्बन्धी रचनाओं में इसके पश्चात् कोई गुरु नायक को धर्म में दीक्षित करता है। तत्पश्चात् नायक अपने बड़े पुत्र को राज्य भार सम्भलाकर सन्यासी बनते चित्रित किया जाता है। जबकि जैनेतर रचनाओं में सुखमय पारिवारिक जीवन के साथ कथा का अन्त है। इस प्रकार जहाँ जैनेतर रचनाओं की कथावस्तु सुखांत है, वहीं जैन-चरित् सम्बन्धी रचनाओं की प्रसादान्त। इस प्रकार इन कथानक रूढ़ियों के माध्यम से कवि ने अपने साहित्य में जहाँ चमत्कार एवं सरसता का संचार किया है,

वहीं कथा प्रवाह को भी पर्याप्त गति दी। इनमें से कुछ कथानक रूढ़ियाँ परम्परित हैं तो कुछ कवि की स्वकल्पित।

अलौकिक-तत्त्व

कवि की प्रायः सभी रचनाओं में रहस्य-रोमांच और अलौकिकता की प्रधानता है। नायक का आकाश में उड़ना, नायक का राक्षसादि अदिव्य शक्तियों के साथ युद्ध, मंत्रित फलों अथवा जात देने पर संतान-प्राप्ति, मृत व्यक्ति का पुनर्जीवित हो जाना, रूप परिवर्तन कर नायक का युद्ध करना आदि कुछ ऐसी ही रोमांचित कर देने वाली अलौकिक घटनाएँ हैं।

इन घटनाओं के अनुरूप ही कुशललाभ ने पात्रों का चयन किया है। इस प्रकार कुशललाभ के समस्त साहित्य में दो प्रकार के पात्र मिलते हैं—१. लौकिक एवं २. अलौकिक। कवि द्वारा ग्रहीत अलौकिक पात्र रोमांचक घटनाओं एव क्रिया-कलापो से सम्बद्ध हैं, जो घटनाक्रम के सफल संयोजन के साथ ही पाठकों तथा श्रोताओं में कुतूहल वृत्ति जागृत करके उनमें रोचकता उत्पन्न करते हैं। अतः हम देखते हैं कि कुशललाभ ने अपने पात्रों की सवेदनशीलता का इतना निखार किया है कि उसमे मानव ही नहीं, मानवेतर सृष्टि भी समाविष्ट हो गई है।

रस-योजना

जैसा कि कहा जा चुका है कि कुशललाभ ने शृंगार, भक्ति, काव्यशास्त्र, चरित्र-आख्यान आदि विविध विषयों को लेकर प्रबन्ध रचनाएँ, लघुगीत, छन्द, स्तोत्र आदि रचनाएँ लिखीं। इनमें प्रधानता शृंगार रस की ही है। शान्त रस तो सहायक एवं उद्देश्य पूर्ति के निमित्त ही प्रयुक्त हुआ है। इनके अतिरिक्त करुण, वात्सल्य, वीर, रौद्र, भयानक आदि रसों का भी यथा-प्रसंग वर्णन हुआ है। इन सभी रसों में तत्सम्बन्धी विभावों, अनुभावों और संचारियों की सरसता भी लक्षित होती है।

कवि का अधिकांश साहित्य वर्णनात्मक है। प्रकृति का यहाँ आलम्बन रूप ही दृष्टिगत होता है। किन्तु कुछ स्थलों पर प्रकृति का उद्दीपन रूप भी प्रस्तुत हुआ है। प्रकृति के इन रूपों के अतिरिक्त कवि ने प्रकृति का प्रयोग रहस्यमय, दार्शनिक, उपदेशात्मक, वस्तु-वर्णन द्वारा पृष्ठभूमि के निर्माण निमित्त भी किया है। प्रकृति का उद्दीपन रूप कवि ने नायक-नायिकाओ के संयोग और वियोग के स्थलों को उद्दीप्त करने के लिए ही किया है।

अलंकार-विधान

कवि ने अपनी काव्य-वस्तु को हृदयंगम कराने के लिए सादृश्य मूलक उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। यह प्रयोग सहज, स्वाभाविक एवं भावोत्कर्षक है। इन अलकारों के अतिरिक्त अनुप्रास, श्लेष, वयण सगाई, विरोधाभास, तद्गुण, तुल्य योगिता, सम्भावना, दृष्टांत, काव्यलिंग, असंगति, विषादन, संदेह, उदाहरण, भ्रांतिमान आदि अलंकारों का प्रयोग भी कुछ स्थलों पर सुन्दर रूप में हुआ है।

छन्द-योजना

कुशललाभ ने अपने काव्य में अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। 'पिंगल-शिरोमणि' नामक रीति विषयक ग्रन्थ में कवि ने १०४ छन्दों का परिचय दिया है। उन्हीं में से कुछ छन्दों में कवि ने अपनी अनुभूति को वाणी दी। विभिन्न काव्य रचनाओं में प्रयुक्त प्रमुख छन्द हैं—दूहा, चौपई, गाहा, सोरठा, त्रोटक, कलस, भुजंगी, नराच, सावझड़उ, सारसी, हणूफाल, लीलावती, बिअक्खरी पद्धड़ी, मोतीदाम, त्रिभंगी, सवैया, हाटकी आदि। इन छन्दों के प्रयोग की प्रधान विशेषता यही है कि अनेक स्थलों पर ये छन्द लक्षण से मेल नहीं खाते। इसके अतिरिक्त तुक के आग्रह से छन्दों के पदान्त हकार, इकार, अकार हो गए हैं। कवि ने छन्दों को जन रुचि के अनुकूल बनाने के लिए तत्कालीन प्रचलित अनेक शास्त्रीय एवं लौकिक राग-रागिनियों एव बंधों को भी ग्रहण किया है। इन रागों के प्रयोग से कवि के परिपक्व संगीत ज्ञान का परिचय भी मिलता है।

इस प्रकार अनुभूति के साथ अभिव्यक्ति का सानुपातिक समन्वय कुशललाभ के साहित्य की अद्वितीय विशेषता है।

भाषा

कुशललाभ के साहित्य का भाषा की दृष्टि से विशेष महत्व है। मूलतः कुशललाभ के साहित्य में दो प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ है। प्रथमतः, शुद्ध डिंगल-भाषा और द्वितीय, मध्यकाल में प्रचलित लोक-भाषा राजस्थानी, जिसे कुछ विद्वानों ने जूनी गुजराती अथवा प्राचीन राजस्थानी नाम भी दिए हैं। कवि की अधिकांश रचनाओं की यही भाषा है। वस्तुत. कुशललाभ लोककवि था। अत: उसकी भाषा का जनता की भाषा होना आवश्यक भी था। इसके अतिरिक्त कुशललाभ विषयानुरूप भाषा का प्रयोग करना जानता था।

कुशललाभ के साहित्य की भाषा राजस्थानी व्याकरण सम्बद्ध एवं विशाल संस्कृत, देशी और विदेशी शब्द-समूहों से युक्त है। स्थान-स्थान पर कवि ने प्रचलित लोकोक्तियों एव मुहावरों का प्रयोग करके अपने साहित्य को सहज तथा स्वाभाविक बनाया है। इनमें गुजराती शब्दों एवं विभक्ति-प्रत्ययों की बहुलता भी देखी गई है। इसका प्रमुख कारण गुजराती और राजस्थानी भाषा का एक ही मूल भाषा शोरसेनी प्राकृत से उद्‌गम तथा मध्यकाल में गुजरात और राजस्थान की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकता का होना है। इस प्रकार कुशललाभ के साहित्य का भाषा विज्ञान की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है।

जातीय-तत्त्व

साहित्य को समाज का सांस्कृतिक इतिहास कहा जाता है। कवि समाज में रहता है। अत: उसका समाज की गतिविधियों एवं परिवर्तनों से प्रभावित होना स्वाभाविक ही है। कुशललाभ के साहित्य में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिगत है। उनके साहित्य में पग-पग पर तद्‌युगीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताएँ परि-

लक्षित होती हैं। साथ ही, कवि ने जिस युग की विषय-वस्तु ली है, उसमे देश-काल और परिस्थितियों का पूर्ण ध्यान रखा है। कुशललाभ की रचनाओं में मध्यकालीन आचार-विचार, रीति-रिवाज, तीज-त्योहार, वेश-भूषा, लोकाचार एवं विश्वासों का सुन्दर चित्रण हुआ है। ये सभी वर्णन सामन्ती एवं जैन-संस्कृति से सम्बन्धित हैं, क्योंकि कुशल-लाभ का साहित्य विशेष रूप से इन दो वर्गों से ही सम्बन्धित था।

कवि की रचनाओं में अलौकिक शक्तियों में आस्था, जादू, टोने, मंत्र-तंत्र में विश्वास, ज्योतिषियों की भविष्यवाणियों में श्रद्धा, स्वप्न-फल और शकुनों में विश्वास रखने की बातों से भी परिचय होता है। पूर्व-कर्म फल में विश्वास, भाग्य के प्रति आग्रह तथा मुनि और साधु-सन्तों की वाणियों में श्रद्धा रखने के उदाहरण भी इन रचनाओं में यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार कुशललाभ बहुज्ञानी पंडित कवि था। मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य में भाषा, शैली एवं विषय की दृष्टि से उसके साहित्य का विशिष्ट महत्त्व है।

●

ग्रन्थ-सूची

१. कुशललाभ की कृतियाँ

(क) हस्तलिखित प्रतियाँ

क्र० सं०	नाम	प्राप्ति स्थल	ग्रन्थांक
१.	माधवानल कामकंदला चौपई	राजस्थान प्राच्य विद्या-मन्दिर, जोधपुर	३९४५, ६०४, ६१५, ६१६, २०६१ (२), २२२२, २२६० (६), ३५३०, ३५५५ (१), ३५६१ (१), ३८६५
	माधवानल कथा	" उदयपुर	७६
	माधवानल कामकंदला चौपई	डॉ० ब्रजमोहन जावलिया का संग्रह, उदयपुर	
	माधवानल कामकंदला चतुष्पदी	एल० डी० इंस्टीट्यूट, अहमदाबाद	ला० द० ६६१
	माधवानल कामकंदला	प्राच्य विद्यामंदिर, बड़ौदा	६५७, १४३३१, १४८६७, १६८१५, १६८१६
	माधवानल कामकंदला नाटक	भारतीय विद्यामन्दिर शोध-संस्थान, बीकानेर	१६१
	माधवानल चौपई	रा० प्रा० वि० प्र० (श्री पूज्य जी संग्रह), बीकानेर	१६४७
	माधवानल कामकंदला चरित्र	अनूप संस्कृत लायब्रेरी बीकानेर	४३, ७६-७८
२.	ढोला-मारवणी चौपई	डॉ० ब्रजमोहन जावलिया का संग्रह, उदयपुर	
	ढोला मारू चौपई	अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर	३७०६, ३७०७, ३७०८, ३७०९

मारू ढोला नी चौपई	रा० प्रा० वि० प्र०, बीकानेर	६४७५ (४), ३५०६, ६४६४, ६५०१ (सचित्र), २०८५
ढोला मारवणी चौपई	अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर	४४, ४५, ४६ (क) ४७, ४८, ४८ (ख)
" "	रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर	५०८४ (१) सचित्र-अपूर्ण, ७७२० (१), ६४३८, ५८६६ (सचित्र), ७७४७, ४६२४ (१३)
" "	" उदयपुर	८६२, ८८४, ३०, ५२६
" "	" (संतोष चंद्रयति), चितौड़गढ़	२३४, ४६६
" "	भण्डारकर प्राच्य विद्या-मन्दिर, पूना	१४४६, १६१७
" "	हेमचन्द्राचार्य ज्ञान मंदिर, पाटण	८६६३
" "	एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद	पु० २११६
" "	प्राच्य विद्यामन्दिर, बड़ौदा	११८६८, १६३०८, १७६८४, १७१६०
३. तेजसार रास चौपई	रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर	२६५४६, ३३१३१, ३३५५८
" "	हेमचन्द्राचार्य ज्ञान भंडार, पाटण	५४७६, ५४८६, ५६७०
" "	प्रा० वि० मं०, बड़ौदा	४७८२, १४६७३
" "	रा० प्रा० वि० प्र०, बीकानेर	२०३६
" "	" चितौड़गढ़	४७
" "	अ० जै० ग्रं०, बीकानेर	३७१२
" "	एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद	१००८
४. अगड़दत्त रास	प्रा० वि० मं०, बड़ौदा	१४२८६
"	भ० प्रा० वि० मं०, पूना	६०५
५. जिनपालित जिनरक्षित संधि गाथा	रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर	२२२६६

क्र०सं०	नाम	प्राप्ति स्थल	ग्रन्थांक
	जिनपालित जिनरक्षित संधि गाथा	महिमा भक्ति भण्डार, बीकानेर	२०२०
६.	पार्श्वनाथ दशभव स्तवन	एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद	६७५, ३४५३
७.	भीमसेन हंसराज चौपई	" "	१२१७
८.	स्थूलिभद्र छत्तीसी	अ० जै० ग्रं० बीकानेर	४२०६
९.	श्री पूज्यवाहण गीत	" "	७६०८, ७६०९
१०.	गौड़ी पार्श्वनाथ छन्द	रा० प्रा० वि० प्र०, जयपुर	६०८३
	" "	" " बीकानेर	६६४१ (८)
	" "	अ० जै० ग्रं०, बीकानेर	८४३०, २४८२, ६१२६, ४३०७ (२)
	" "	प्रा० वि० मं०, बड़ौदा	९७०
	" "	हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान-भडार, पाटण	२०२८
११.	स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन	अ० जै० ग्र०, बीकानेर	८३९७, ८४०९, ८४११, ८४१२, ५०६२, ५२२७
	" "	रा० प्रा० वि० प्र०, बीकानेर	५४५१, ५५००, ६६५४, २१६७, ४२६३
	" "	हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान-भडार, पाटण	५९३८
	" "	एल०डी०इस्टी०, अहमदाबाद	२१५६ पु०
१२.	शत्रुंजय यात्रा स्तवन	अ० जै० ग्रं०, बीकानेर	७७४४
१३.	नवकार छन्द	" "	८२२२, ८२२४
	" "	रा० प्रा० वि० प्र०, बीकानेर	१५४६, ६४६४, ६४९०, ६६११ (३८), ६६९५, ४०६७
	" "	प्र० शो० प्र०, उदयपुर	७५
	" "	हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान-भण्डार, पाटण	६१७०
	" "	एल० डी० इंस्टी०, अहमदाबाद	ला० द० ३४१२
	" "	प्राच्य विद्यामन्दिर, बड़ौदा	१९३०५ (बी)
१४.	महामाई दुर्गा सातसी	अनु० संस्कृ० लाय०, बीकानेर	४८, ६८ (ब)

१५. जगदंब छंद अथवा भवानी छंद	रा० प्रा० वि० प्र०, उदयपुर श्री नाहटा जी से प्राप्त प्रति	६०२
१६. कवित्त-सवैया	अ० जै० ग्रं०, बीकानेर	३२८७०

(ख) प्रकाशित कृतियाँ

क्र० सं०	कृति का नाम	संग्रह का नाम	प्रकाशक	संस्करण
१.	पिंगल-शिरोमणि	परम्परा, भाग १३	राजस्थानी शोध-संस्थान, चौपासनी जोधपुर	
२.	स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन	आनन्द काव्य महोदधि, मौक्तिक ७	सेठ देवचन्दलाल भाई पुस्तक फंड झवेरी बाजार, मुंबई	१९२६ ई०
३.	माधवानल कामकंदला चौपई	"	"	"
४.	" "	माधवानल कामकंदला प्रबन्ध (गायकवाड़ सीरीज XCIII)	प्राच्य विद्यामन्दिर, बड़ौदा	१९४२ ई०
५.	ढोला-मारवणी चौपई	आनंद काव्य महोदधि, मौक्तिक ७	सेठ देवचन्दलाल भाई पुस्तक फंड, झवेरी बाजार, मुंबई	१९२६ ई०
६.	" "	ढोला मारू रा दूहा	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	सं० २०११
७.	श्री पूज्यवाहण गीत	ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह	अगरचन्द भंवरलाल नाहटा, बीकानेर	
८.	नवकार छंद	जैन धर्म सिंधु	निर्णय सागर प्रेस बम्बई	

२. तुलनात्मक अध्ययन विषयक सामग्री

(क) हस्तलिखित प्रतियाँ

१. आलम कृत माधवानल कामकदला	राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जयपुर	७१२२
२. भीम कृत अगड़दत्त रास	" जोधपुर	२७२३३
३. सुमति कृत अगड़दत्त मुनि चौपई	" "	११३४
४. माधव शर्मा कृत माधवानल कथा	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	९१९

(ख) प्रकाशित कृतियाँ

१. आनन्दधर कृत माधवानल आख्यानम्	मा० का० कं० प्रबन्ध (गायकवाड़ सीरीज XCIII)	प्रा० वि० मं०, बड़ौदा	१९४२ ई०
२. गणपति कृत माधवानल कामकंदला दोधक	"	"	"
३. दामोदर कृत माधवानल कथा	"	"	"
४. अज्ञात कवि कृत माधवानल कामकंदला	भारतीय प्रेमाख्यान (डॉ० हरिकांत श्रीवास्तव)	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस	१९५५ ई०
५. ढोला मारू रा दूहा	ढोला मारू रा दूहा	ना० प्रा० स० काशी	सं० २०११
६. मदारी कृत ढोला	ब्रज भारती, वर्ष १२, अंक २-३		
७. ढोला मारू रा दूहा में काव्य सौष्ठव, संस्कृति और इतिहास	डॉ० भगवती लाल शर्मा	अर्जना प्रकाशन, जयपुर	१९७० ई०
८. नेमिचंद रचित उत्तराध्ययन टीका (अगड़दत्त चरित)	प्राकृत जैन कथा साहित्य (जे० सी० जैन)	एल० डी० इंस्टी० अहमदाबाद	१९७१ ई०
९. वसुदेव हिण्डी	" "	"	"
१०. स्थूलिभद्र	आगम के अनमोल रत्न	घासी राम धन राज कोठारी, गाँधी मार्ग, अहमदाबाद-१	१९६८ ई०
११. हलराज कृत स्थूलिभद्र फागु	स्वाध्याय पु० ८, अंक ३	प्रा० वि० मं०, बड़ौदा	
१२. कवि देपाल कृत स्थूलिभद्रकाकादि	स्थूलिभद्रकाकादि	रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर	१९६२ ई०

सन्दर्भ ग्रन्थ

(क) कथा एवं काव्य

क्र०सं०	लेखक/संपादक	पुस्तक का नाम	संस्करण
१.	सं० मुनि हस्तीमल मेवाड़ी	आगम के अनमोल रत्न	१९६८ ई०

२. फतहचन्द महात्मा	पार्श्वनाथ चरित्र एवं पोष दशमी की कथा	
३. वादि राज सूरि	पार्श्वनाथ चरित्र (संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योग)	१९७१ ई०
"		
४. अनु० केदारनाथ शर्मा	कथा सरित्सागर भाग १-२	१९६० ई० १९६१ ई०
५. वी० पी० शर्मा	पृथ्वीराज रासो (लघु संस्करण)	वि० सं० २०१९
६. टीकाकार रघुवंश शास्त्री	तुलसी कृत रामचरित मानस	
७. स० प्रो० नरोत्तमदास शास्त्री	वेलि क्रिसण रुक्मिणी री	१९६५ ई०
८. सं० रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत	राजस्थानी दोहा सग्रह	वि० सं० २०१७
९. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	जायसी ग्रन्थावली	१९७० ई०
१०. सं० नीलम अग्रवाल	गुणाढ्य कृत वृहत्कथा	१९६५ ई०
११. स० सत्यजीत जी वर्मा	माधवानल नाटक	१९६७ ई०
१२. जे० ए० मेक्यूलाश	द चाइल्ड हुड आफ फिक्शन	१९०५ ई०
१३. स्थिथामसन	फाकटेल्स मोटिफ इंडेक्स	
१४. मुरारीदान	बांकीदास ग्रन्थावली, भाग १-३	१९३८ ई०

(ख) आलोचना-साहित्य

१. डॉ० प्रेमसागर जैन	हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि	१९६९ ई०
२. श्री चन्द जैन	जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन	१९७१ ई०
३. डॉ० श्यामशंकर दीक्षित	१३-१४वीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य	१९६९ ई०
४. डॉ० दीनदयाल गुप्त	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय	वि० २००४
५. डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन	कविवर बनारसीदास	१९६६ ई०
६. डॉ० हरिकांत श्रीवास्तव	भारतीय प्रेमाख्यान	१९५५ ई०
७. डॉ० सत्येन्द्र	ब्रजलोक साहित्य	१९५७ ई०
८. "	लोक साहित्य विज्ञान	१९६२ ई०
९. डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव	मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक रूढ़ियाँ	१९६८ ई०
१०. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी साहित्य का आदिकाल	१९५२ ई०
११. डॉ० मनमोहन लाल शर्मा	महाकवि माघ	१९६३ ई०
१२. डॉ० भोलानाथ तिवारी	हिन्दी नीति काव्य	१९६५ ई०
१३. डॉ० हरिवंश कोछड़	अपभ्रंश साहित्य	२०१३ वि०

लेखक	ग्रन्थ	वर्ष
१४. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी	राजस्थानी भाषा और साहित्य (वि० सं० १५००-१६५०)	१९६० ई०
१५. डॉ० मोतीलाल मेनारिया	राजस्थानी भाषा और साहित्य	२०१७ वि०
१६. डॉ० रामगोपाल गोयल	राजस्थानी के प्रेमाख्यान परम्परा और प्रगति	१९६६ ई०
१७ डॉ० नारायण सिंह भाटी	डिंगल गीत साहित्य	१९७१ ई०
१८. प्रो० नरोत्तमदास स्वामी	राजस्थानी साहित्य : एक परिचय	
१९. डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव	डिंगल साहित्य (पद्य)	१९६० ई०
२०. डॉ० गोवर्धन शर्मा	डिंगल साहित्य	१९६५ ई०
२१. डॉ० एजाज हुसैन	उर्दू साहित्य का इतिहास	१९५७ ई०
२२. विश्वेश्वरनाथ रेऊ	अब्स्ट्रेक्ट आफ द स्टोरी एण्ड नोट्स आन पेंटिंग्स आफ ढोला मरवण	

(ग) काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ

लेखक	ग्रन्थ	वर्ष
१. व्याख्याकार भोलाशंकर व्यास	हिन्दी दशरूपक	१९५५ ई०
२. रामचन्द्र मिश्र	(दण्डीकृत) हिन्दी काव्यादर्श	२०१५ वि०
३. गंगदास (चोखंभा प्रकाशन)	छदोमंजरी (हिन्दी टीका)	२०२६ "
४. मम्मट (चोखंभा प्रकाशन)	काव्य प्रकाश (हिन्दी टीका)	१९६५ ई०
५. श्री धरानन्द शास्त्री	हिन्दी वृत्त रत्नाकर	१९६६ ई०
६. टीका० शालग्राम शास्त्री	साहित्य दर्पण	१९६७ ई०
७. म० म० विनय सागर	वृत्त मौक्तिक	१९६५ ई०
८. भरत (गायकवाड़ सीरीज LXVIII)	नाट्य शास्त्र	१९३४ ई०
९. पिंगलाचार्य (निर्णय सागर प्रेस)	पिंगल शास्त्र	१९२७ ई०
१०. स० केदारनाथ भट्ट ,,	सरस्वती कण्ठाभरण	१९२५ ई०
११. सं० एच० डी० वेलणकर	स्वयभू छंद	१९६२ ई०
१२. " "	अज्ञात कवि कृत कवि दर्पण	"
१३. " "	छंद कोश	"
१४. " "	विरहांक कृत वृत्त जाति समुच्चय	"
१५. सं० भोलाशंकर व्यास	प्राकृत पैंगलम्	२०१६ वि०
१६. जोगीदास	हरिपिंगल प्रबन्ध (अप्र०)	
१७. स० सीताराम लालस	रघुवर जस प्रकास	१९६० ई०
१८. स० महताबचन्द्र खारेड़	रघुनाथ रूपक गीत रो	१९३८ ई०
१९. डॉ० नगेन्द्र	अरस्तू का काव्य शास्त्र	२०१४ वि०

२०. प्रो० नरोत्तमदास स्वामी	अलंकार पारिजात	१९६८ ई०
२१. रघुनन्दन शास्त्री	हिन्दी छंद प्रकाश	१९५२ ई०
२२. जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'	छंद प्रभाकर	१९३९ ई०
२३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	चिंतामणि, भाग २	२००६ वि०
२४. आइ० ए० रिचार्ड्स	प्रिंसिपल आफ क्रिटिसिज्म	१९५२ ई०

(घ) भाषा-विज्ञान एवं व्याकरण

१. डॉ० भोलानाथ तिवारी	भाषा विज्ञान	१९६५ ई०
२. बेचरदास जीवराज दोशी	गुजराती भाषा नी उत्क्रान्ति	१९४३ ई०
३. प्रो० नरोत्तमदास स्वामी	संक्षिप्त राजस्थानी व्याकरण	१९५९ ई०
४. पी० एल० टेसिटरी (अनु० नामवर सिंह)	पुरानी राजस्थानी	२०१२ वि०

(ङ) कोषादि ग्रन्थ

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दी साहित्य कोष, भाग १-२	२०२० वि०
२. गंगाराम गर्ग	सक्षिप्त आक्सफोर्ड हिन्दी साहित्य परिचायक	१९६३ ई०
३. वी० एस० आप्टे	द स्टूडेंट्स संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी	१९६९ ई०
४. डॉ० भोलानाथ तिवारी	बृहत पर्यायवाची कोश	१९६२ ई०
५. मन्नालाल अभिमन्यु	हिन्दी अमरकोश	
६. जयशंकर जोशी	हलायुध कोश	१९६७ ई०
७. हेमाचन्द्राचार्य	अभिधान चिंतामणि कोश	२००२ वि०
८. आचार्य विश्वेश्वर	निरुक्तम	२०२० वि०
९. ज० क० पटेल	सिद्ध हेम शब्दानुशासन	
१०. धनपाल	पाइअलच्छी नाममाला	१९७३ सं०
११. नारायण सिंह भाटी	डिंगल कोश (परम्परा भाग १७)	
१२. सं० अगरचन्द नाहटा	उडिंगल नागराज (मरु भारती वर्ष ७, अंक ३)	१९५८ ई०
१३. सं० अगरचन्द भंवरलाल नाहटा	मणिधारी जिनचन्द्र सूरि अष्टम शताब्दी स्मृति ग्रन्थ	१९७१ ई०
१४. टानी	कथा कोश	१८९५ ई०

(च) वेद, पुराण, स्मृति, अर्थशास्त्र आदि

१. प० जयदेव शर्मा	ऋग्वेद सहिता	१९९० वि०
२. "	अग्नि पुराण (कल्याण, वर्ष ४५, सं० १)	

३. आचार्य श्री राम	मार्कण्डेय पुराण	१९६९ ई०
४. "	विष्णु पुराण	"
५. तुलसीराम स्वामी	मनुस्मृति भाषानुवाद	१९१४ ई०
६. पं० मिहिरचन्द्र	याज्ञवल्क्य स्मृति भाषा टीका	१९५१ सं०
७. अनु० गंगाप्रसाद शास्त्री	कौटिल्य का अर्थशास्त्र	२०१० वि०

(छ) इतिहास

१. म० म० विनयसागर	खरतर गच्छ का इतिहास	२०१६ वि०
२. वी० एस० भार्गव	राजस्थान का इतिहास	१९६६ ई०
३. जगदीश सिंह गहलोत	राजपुताने का इतिहास	"
४. डॉ० जी० एन० शर्मा	राजस्थान का इतिहास, भाग १	१९७१ ई०
५. "	सोशल एण्ड कल्चरल हिस्ट्री आफ मेडिवल राजस्थान	"
६. ठाकुर वीरसिंह तंवर	कछवाहों का संक्षिप्त इतिहास	१९५२ ई०
७. पं० हरिदत्त व्यास	जैसलमेर का इतिहास	
८. सं० दुगड़ एवं ओझा	मुहंणोत नैनसी री ख्याति भाग १, २	सं० १९८२ सं० १९९१
९. के० सी० जैन	जैनिज्म इन राजस्थान	१९६३ ई०
१०. अनु० भगवानदास गुप्त	अकबर महान्	१९६७ ई०
११ दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री	गुजरात नो मध्यकालीन राजपूत इतिहास	
१२. रत्नमणि राव भीमराव, बी० ए०	गुजरात नो सांस्कृतिक इतिहास	
१३. पी० वी० काने	धर्मशास्त्र का इतिहास	प्रथम
१४. अनु० हरिवंश राय शर्मा	आइने अकबरी	१९६६ ई०

(ज) समाज शास्त्र

१. मेकाइवर एण्ड पेज	सोसाइटी	१९५५ ई०
२. रवीन्द्र नाथ मुकर्जी	सामाजिक मानव शास्त्र की रूपरेखा	१९७० ई०

(झ) संगीत

१. लक्ष्मी नारायण गर्ग	संगीत विशारद	१९६३ ई०
२. आचार्य उत्तम राय शुक्ल	भारतीय संगीत	१९५८ ई०

४. अन्य सहायक ग्रन्थ

१. अनन्त राम	गुजराती साहित्य भाग १	१९५४ ई०

२. प्रो० ईश्वरलाल र० दवे — गुजराती साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास — १९६३ ई०
३. प्रो० ला० साण्डेसरा — प्राचीन गुजराती व्रत रचना — १९५६ ई०
४. रा० वी० पाठक — गुजराती छंदो
५. कालीदास देव शंकर पड्या — गुजरात ना देशी राज्य — १८८४ ई०
६. मो० द० देसाई — गुर्जर कविओ, भाग १ — १९८८ वि०
७. राहुल सांकृत्यायन, डॉ० कृष्ण देव उपाध्याय — हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, भाग १६ — २०१७ वि०
८. डॉ० रामकुमार वर्मा — हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — १९५४ ई०
९. आ० रामचन्द्र शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास
१०. बनारसीदास जैन — प्राकृत साहित्य का इतिहास
११. एम० कृष्णमाचारियर — हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर — १९३७ ई०
१२. डॉ० भागीरथ मिश्र — हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास — २००५ वि०
१३. गुलाब राय — काव्य के रूप — १९५० ई०
१४. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा — हिन्दी भाषा का इतिहास — १९६२ ई०
१५. कामता प्रसाद गुरु — हिन्दी व्याकरण — २०२७ वि०
१६. डॉ० रामगोपाल — वैदिक व्याकरण — १९६५ ई०
१७. भगवत प्रसाद दुबे — कबीर का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन — १९६९ ई०
१८. देवेन्द्र कुमार जैन — अपभ्रंश भाषा और साहित्य — १९५५ ई०
१९. रामेश्वर दत्त — हितोपदेश — १९६६ ई०
२० चार्ल्स डब्लू० इलियट — फाकलार एण्ड फेबल — १९५६ ई०
२१. व्रज विलास श्रीवास्तव — पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियाँ — १९५५ ई०
२२. भदतानन्द कौसल्यायन — जातक — १९४६ ई०
२३. मंजुलाल मजुमदार — सदय वत्स वीर प्रबन्ध — २०१७ वि० सं०
२४. कन्हैयालाल सहल — राजस्थानी लोक-कथाओ के कुछ मूल अभिप्राय — १९६० ई०
२५. डॉ० के० के० शर्मा — राजस्थानी लोक गाथा का अध्ययन — १९७२ ई०
२६. डॉ० शंकरलाल यादव — हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य — १९६० ई०
२७. डॉ० श्याम मनोहर पांडेय — मध्ययुगीन प्रेमाख्यान
२८. मदन गोपाल गुप्त — मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति — १९६८ ई०
२९. डॉ० कृष्णा उपाध्याय — डिंगल साहित्य में समाज और संस्कृति चित्रण (अप्र०)
३०. आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी — मध्यकालीन धर्म साधना — १९५६ ई०

३१. डॉ० शिवकुमार मिश्र	मंझनकृत मधुमालती	१९६५ ई०
३२. डॉ० देशराज सिंह भाटी	हिन्दी में शब्दालंकार विवेचन	१९६९ ई०
३३. डॉ० ओमप्रकाश शर्मा	रीतिकालीन अलंकार साहित्य का शास्त्रीय अध्ययन	१९६५ ई०
३४. डॉ० पुत्तुलाल शुक्ल	आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना	२०१४ वि०
३५. डॉ० शिवनंदन प्रसाद	मात्रिक छन्दों का विकास	१९५८ ई०
३६. सौभाग्य सिंह शेखावत	राजस्थानी पड़ूत्तर, भाग ५	१९६५ ई०
३७. डॉ० विद्याभूषण विभु	अभिधान अनुशीलन	१९५८ ई०
३८. गोपाल नारायण बहुरा	बाण भट्ट कृत चण्डी शतकम्	१९६८ ई०
३९. पन्यास प्रवर मुनि श्री रमणीक विजय	एकाक्षर नाम कोश संग्रह	१९६४ ई०
४०. डॉ० रामसागर जैन	जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि	१९६१ ई०
४१. वाचस्पति गेरोला	संस्कृत साहित्य का इतिहास	१९६० ई०
४२. डॉ० सरनाम सिंह शर्मा	राजस्थानी साहित्य परम्परा और प्रगति	१९५९ ई०
४३. मुनि जिनविजय	जैन ऐतिहासिक गुर्जर संचय	
४४. जगदीश चन्द्र जैन	जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज	१९६५ ई०
४५. डॉ० नेमीचन्द शास्त्री	संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान	१९७१ ई०
४६. नेमीचन्द जैन	जैन साहित्य	

५. पत्र-पत्रिकाएँ

१. कल्याण	वर्ष ४५, सं० १
२. परम्परा	भाग १३, २५, १६, १७
३. ब्रज-भारती	वर्ष १२, अंक २-३, भाद्र मार्गशीर्ष वि० सं० २०११
४. मरु-भारती	वर्ष ४, अंक २; वर्ष २, अंक २; वर्ष ७, अंक ३
५. राजस्थान-भारती	भाग १, अंक ४; भाग २, अंक १, दिसम्बर १९६९
६. राजस्थान	भाग २, संवत् २९९३
७. राजस्थानी	भाग १
८. वरदा	वर्ष २, अंक ३
९. विशाल भारत	भाग ६१, अंक १
१०. वीर साप्ताहिक	१५ जून, १९४६
११. वैचारिकी	भाग १, अंक १; भाग २, अंक १

१२. शोध-पत्रिका — वर्ष १३, अंक ३; वर्ष १४, अंक १, ३; वर्ष २२, अंक ३
१३. साहित्य — वर्ष ६, अंक १
१४. स्वाध्याय — पु० ८, अंक ३
१५. हिन्दुस्तानी — भाग १६, अंक ४
१६. हिन्दी अनुशीलन — वर्ष ११, अंक ४; भाग ४, अक २

●●●